Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

अप्रैल १९७५

समांतर कहानी विशेषांक : ७

दलित साहित्य (मराठी)

आम आदमी के आसपास: आज की रचनाएं

5/5/75

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुबोध का १०वाँ वर्ष

सुबोध की नई पुस्तकें

सुबोध की २००वीं पुस्तक

१ लाख की पुस्तकें मुफ़्त

निम्नलिखित पुस्तकों में से 25 रु० की पुस्तकें मंगायें। 10 रु० की पुस्तकें बिल्कुल मुफ्त प्राप्त करें। डाक व्यय भी हम करेंगे।

२५ रुपये की पुस्तकें इनमें से चुनें

उपन्यास

वरदान	मुंशी प्रेमचन्द	4.00
मंगला	गुरुदत्त	4.00
जंजाल	,,	4.00
सूखी लकड़ी	,,	3.00
सिलसिला	रामकुमार भ्रमर	3.00
चम्बल का विष	,,	3.00
रंजना	द्वारका प्रसाद	3.00
घेरे के बाहर	,,	4.00
समाधि	पं० मुखराम शर्मा	3.00
लालसा	,,	3.00
प्रेम बन्धन	,,	3.00
लकीरें	,,	3.00
समाधान	,,	3.00
प्रेम पंख	अमृता पांचाली	2.00
अम्बिका	अमृता पांचाली	2.00
अधूरे होंठ	,,	2.00
दहकते अंगारे	,,	2.00
मनचली	सत्येन्द्रशरत्	3.00
बिदाई	पं० आनन्द कुमार	3.00
घाट का पत्थर	गुलशन नन्दा	3.00
प्यार और प्यास	कृष्ण चन्दर	3.00
गुलमर्ग का गुमनाम	,,	3.00
आत्मा	दत्त भारती	4.00
मौत से पहले	,,	4.00
उजड़े घर	,,	3.00
आहट	कुशवाहा कान्त	3.00
कटे पंख	,,	3.00
थपेड़े	,,	3.00
पतन	,,	3.00

जासूसी उपन्यास

गहरे घाव	जोरावर सिंह वर्मा	2.00
पुलिस के कारनामे	,,	2.00
मैं जासूस नहीं हूँ	,,	2.00
सभ्यता के चोर	,,	2.00

प्रेरणाप्रद-जीवनोपयोगी

चिन्तामुक्त कैसे हों	स्वेट मार्डन	2.00
हंसते हंसते कैसे जिए	,,	2.00
जो चाहें सो कैसे पायें	,,	2.00
पथ के प्रदीप	भगवान श्री रजनीश	3.00
शून्य के पार	,,	3.00
प्रभु दर्शन	महात्मा आनन्द स्वामी	5.00
दो रास्ते	,,	5.00
भक्त और भगवान	,,	3.00

१० रुपये उपहार की पुस्तकें इनमें से चुनें

नूरबाई	वृन्दावनलाल वर्मा	2.00
मनुष्य के रूप	यशपाल	2.00
प्रायश्चित की सीमाएं	मानसिंह	2.00
मिस चौधरी	आवारा	2.00
औरत एक चेहरे हजार	परदेशी	2.00
विलायती मेम	शंकर	2.00
यह कंचन सी काया तेरी	उग्र	2.00
पत्थर के आंसू	यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र	2.00
एक रात का नरक	उपेन्द्रनाथ अश्क	1.00
लोपामुद्रा	के० एम० मुन्शी	2.00
सुबोध बुनाई	सुशीला कपूर	4.00
सुबोध पाक विद्या	,,	4.00
रेडियो ट्रांजिस्टर मकैनिक	हयात	4.00
सुबोध ट्रांजिस्टर सर्विसिंग	,,	4.00
सुबोध मोटर मकैनिक	भारत भूषण	4.00

सुबोध पॉकेट बुक्स की पुस्तकें भारत के सभी पुस्तक विक्रेताओं से मिलती हैं कठिनाई हो तो

सुबोध घरेलु लाइब्रेरी योजना

के सदस्य दो रुपये अमानत राशि भेजकर बनें

- प्रति दो मास में १२-०० की पुस्तकें १०-०० में डाकखर्च सहित प्राप्त करें।
- सुबोध साहित्य मासिक पत्रिका निःशुल्क
- पोस्टकार्ड पर इस पृष्ठ पर छपी कोई भी १२-०० की पुस्तकों के नाम हमें लिख भेजें १०-०० की वी० पी० के साथ आपकी अमानत राशि २-०० जोड़कर १२-०० की वी० पी० भेज दी जायगी। फिर हर दो मास में आपको १०-०० की वी०पी० भेजी जाती रहेगी।

सुबोध पॉकेट बुक्स
२-अन्सारी रोड
दरियागंज, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका।

अप्रैल, १९७५

वर्ष : १५; पूर्णांक : १६८

समांतर कहानी विशेषांक-७
दलित साहित्य (मराठी)

कहानियां

अण्णाभाऊ साठे : मकुल मुलाणी : १२
बाबूराव बागूल : मां : २४
अर्जुन डांगले : गारदी : ३२
दया पवार : विटाल : ३६
वामन होवाल : दुमंजिला घर : ४४
नामदेव लक्ष्मण ढसाल : अनादि बंध : ४८
शंकरराव खरात : पत्र : ५२
भास्कर चंदन शिव : पानी : ६०
केशव मेश्राम : पत्तल : ६४
भीमराव शिरवाले : संक्रांति : ८४

भेंट वार्ता :

दया पवार : दादू मारुति इंदुरीकर : १६

विशिष्ट लेख

प्र. श्री. नेरूरकर : दलित साहित्य : प्रक्रिया एवं रूपरेखा : ७४
लघुकथाएं : ४३
घटना कथाएं : २३, ३५, ४२, ४७, ५६, ५७, ६८, ८३, ९१
टिप्पणियां : ५८, ५९
कविताएं : ७०, ७१

स्थायी स्तंभ

पाठकीय : ६, मेरा पन्ना : ८, कबिरा खड़ा बजार में : हरिशंकर परसाई : २१, चंद संतरे और : अनीता औलक : ८०, मीनाकुमारी की डायरी, नज्में : गुलजार : ८८, पहेली हल : ९१, व्यंग्य कल्पना : मदन खंडेलवाल : ९१.

संपादक : कमलेश्वर

- मुख्य उप-संपादक : आनंद प्रकाश सिंह
- उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
- कार्यालय सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के.

यह अंक

सारिका का बहुप्रतीक्षित नया आकार आपके सामने है. इस अंक की सज्जा प्रख्यात चित्रकार जे. पी. सिंघल ने की है. सिंघल का परिचय और वक्तव्य पृष्ठ ३१ पर देखिए. समांतर अंकों में हम जिन चित्रों को प्रकाशित करते रहे हैं उनका संबंध कहानियों से नहीं है. वे चित्र अपने आप में आम आदमी की जिंदगी की कहानियां हैं और उनका उपयोग मात्र सज्जा के लिए किया गया है. सारिका की पूर्णांक संख्या में एक की भूल थी उसे इस अंक से ठीक किया जा रहा है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन में कई खुशियों के पल होते हैं

सरदर्द को आपकी खुशियां बिगाड़ने न दीजिये

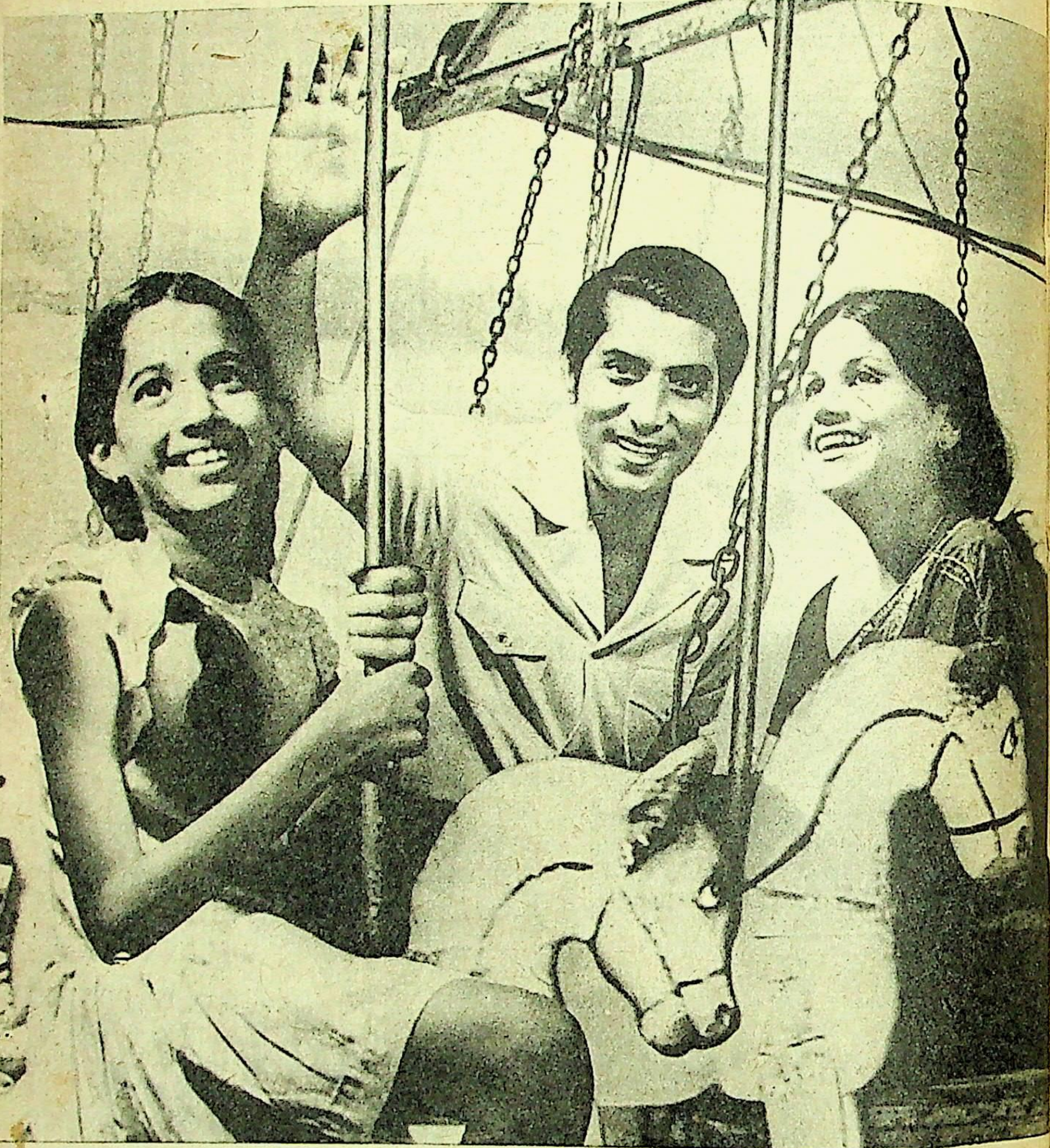

२ ऐस्प्रो लीजिये

माइक्रोफ़ाइन्ड ऐस्प्रो दर्द को जल्दी खींच निकालता है

ASPRO

Nicholas

A.G.62

DC.G.50 (R) HN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस में दुर्गंध जुदाई कराये...

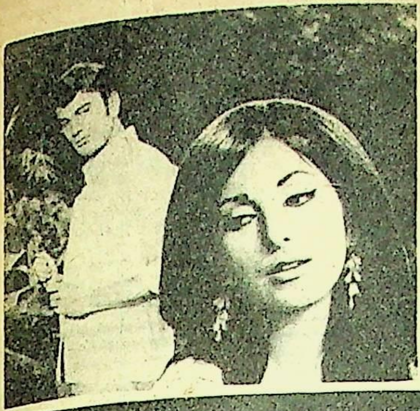

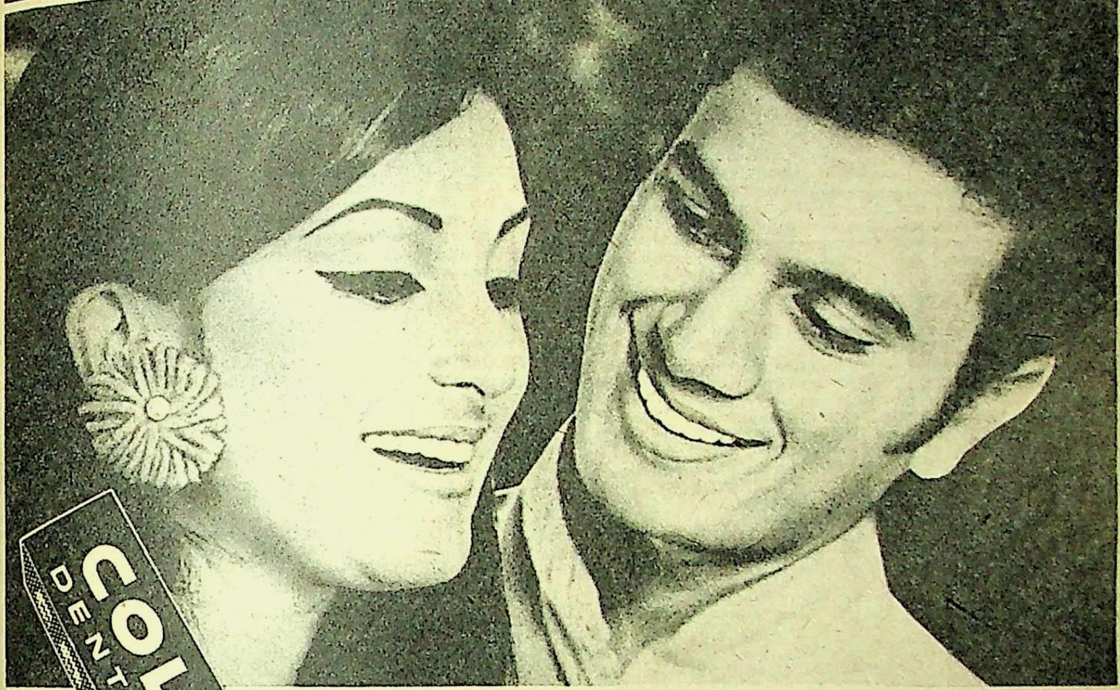

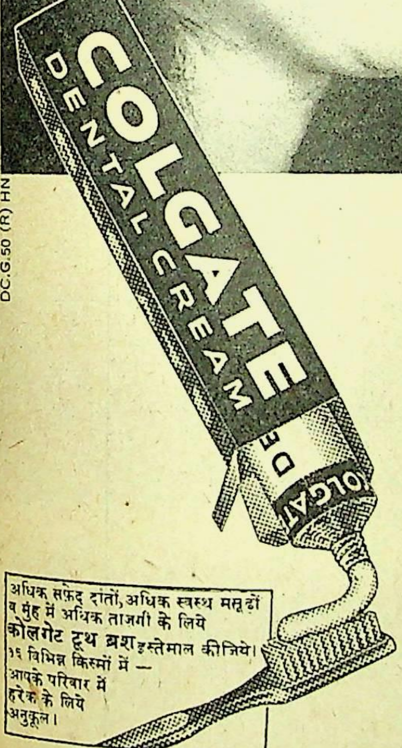

कोलगेट डेन्टल क्रीम से सांस की दुर्गंध रोकिये... दंतक्षय का दिनभर प्रतिकार कीजिये!*

वैज्ञानिक परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि १० में से ७ लोगों के लिए कोलगेट सांस की दुर्गंध को तत्काल ख़त्म कर देता है और खाना खाने के तुरंत बाद कोलगेट विधि से दांत साफ़ करने पर अब पहले से अधिक लोगों का—अधिक दंतक्षय रुक जाता है। दंत-मंजन के सारे इतिहास की यह एक बेमिसाल घटना है। क्योंकि एक ही बार दांत साफ़ करने पर कोलगेट डेन्टल क्रीम मुंह में दुर्गंध और दंतक्षय पैदा करने वाले ८५ प्रतिशत तक कीटाणुओं को दूर कर देता है। इसका पिपरमिंट जैसा स्वाद भी कितना अच्छा है—इसलिए बच्चे भी नियमित रूप से कोलगेट डेन्टल क्रीम से दांत साफ़ करना पसंद करते हैं।

ज़्यादा साफ़ व तरोताज़ा सांस और ज़्यादा सफ़ेद दांतों के लिए...
दुनिया में अधिक लोग दूसरे टूथपेस्टों के बजाय कोलगेट ही ख़रीदते हैं।

अधिक सफ़ेद दांतों, अधिक स्वस्थ मसूड़ों व मुंह में अधिक ताज़गी के लिये
कोलगेट टूथ ब्रश इस्तेमाल कीजिये।
१६ विभिन्न किस्मों में —
आपके परिवार में
हरेक के लिये
अनुकूल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकीय

'**सारिका**' का जनवरी अंक मौजूदा भारतीय परिस्थितियों पर एक करारा व्यंग्य है. '**सजा**' में हृदय लानी ने औसत आदमी के वैचारिक बिखराव, मानसिक विखंडन एवं आर्थिक दारुण्य को जिस मायायिक कुशाग्रता से रूपायित किया है, वह अंतर्मन को झकझोर देता है. अनीता औलक की रचना '**फिर एक बार**' अवदात मानसिकता एवं शैशवोचित संवेदनशीलता का मार्मिक प्रतिरूपण है. '**यह सब अंतहीन**' में प्रभु जोशी ने 'समयगत, जीवनगत और संदर्भगत सत्यों' को अनावृत्त करते हुए इस बात को बड़े ही सहज ढंग से प्रस्तुत किया है कि आधुनिक समाज का अभावग्रस्त नागरिक भूख से इतनी बुरी तरह से टूट चुका है कि वह अपने उदर की संतुष्टि के लिए पवित्र-से-पवित्र रिश्तों को भी गिरवी रख सकता है. इब्राहीम शरीफ की कहानी, '**जमीन का आखिरी टुकड़ा**' कथानक के दृष्टि-बिंदु से चाहे भले ही साधारण हो, परंतु इसके प्रस्तुतीकरण को यथार्थवाद के पुट ने नितांत जीवनपूर्ण बना दिया है. '**घुन**' में ईश्वरचंदर ने जीवनमोह से उपजे अंतर्द्वंद्व को ईमानदारी के साथ चित्रित किया है. '**इजारेदारी**' में अजित पुष्कल ने वचनबद्धता की दयनीय स्थिति से गुजरते हुए भावुक अफसर की किंकर्तव्यविमूढ़ता का वर्णन करने में जिस सपाटबयानी का सहारा लिया है, उसकी पकड़ बहुत ही मजबूत है. '**चूहेदानी**' का विषय कसावपूर्ण होने के साथ-साथ मनोरंजक भी है. '**यंत्र-पुरुष**' वैयक्तिक तनावों का मार्मिक छायांकन है. '**इंतजार**' वर्तमान परिवेश में छटपटाते व्यक्तियों की निरीहता की संवेदनापूर्ण प्रदर्शनी है. '**हरिजन-सेवक**' भ्रष्ट अफसरों एवं रक्तपायी पूंजीपतियों के अत्याचारों में पिसने वाले, गत्यावरोधी एवं पतनोन्मुखी रूढ़ियों में जकड़े हुए, भौतिक की चकाचौंध से अपरिचित उन निम्नवर्गीय ग्रामीणों की दास्तान है, जो कूपमंडूकता, पाखंड, अशिक्षा एवं उत्पीड़न की गिरफ्त से आजादी के २७ वर्षों के बाद भी नहीं छूट सके हैं. भगवतीचरण वर्मा की विशिष्ट कहानी '**जबरा मारे रोने न दे**' चरित्रहीन पुलिसवर्ग एवं कंटकाकीर्ण पत्रकारिता को बड़े ही व्यंग्यात्मक ढंग में चित्रबद्ध करती है. '**मेरा पन्ना**' सवाक् एवं वजनदार है और '**कबिरा खड़ा बजार में**' काफी हद तक सराहनीय.

☐ **सत्येंद्रकुमार रघुवंशी, कानपुर**

सारिका' एक संवेदनशील और चेतनात्मक दस्तावेज है. तुलनात्मक दृष्टि से आजकल के पूरे जीवन में एक फड़कती नस का काम देती है. शायद '**सारिका**' कई बिखरी सोचों को पिरोती, जोड़ती है, और हम सब का दुख-दर्द बांटती है. '**मेरा पन्ना**' खासकर, क्योंकि यह अपने में ही एक ऐलान है कि आस-पास जो कुछ भी हो रहा है, देश, समाज और आम जनता के नाम पर, उस सब की हकीकत को छिपाया नहीं जा सकता.

हां, एक बात और. जनवरी अंक में अनीता औलक की कहानी '**फिर एक बार. . .**' कुछ असंगत-सी लगी. ईमानदार लेखन का जो प्रज्ज्वलन '**चंद सतरें और**' में मिला, वह अद्वितीय है.

☐ **पंडित पांचाल, नयी दिल्ली**

बधाई—ढेर सारी शुभकामनाएं इब्राहीम शरीफ को मेरी तरफ से '**कहानी : इनसानी सोच के समांतर और विपरीत**' के लिए. कहानी खो गयी थी, शरीफ साहब ने कहानी को खोज कर उसके वास्तविक माता-पिता के पास पहुंचाने की कोशिश की है. लेकिन हमें सचेत रहना है कि गलत लोग फिर से कहानी को छीन न ले जायें या कहानी को बहकाने की कोशिश न करें. कहानी को गलत लोगों से बचाने में '**सारिका**' का विशेष हाथ रहा है.

☐ **भवनाथ झा, जमशेदपुर**

पता नहीं क्यों जब से '**सारिका**' पढ़ना शुरू किया है, जीवन का सब कुछ बदला-बदला-सा लगता है—मानव संबंधों के प्रति अपनी तमाम विचारधाराओं को, '**सारिका**' के हर नये अंक के साथ, फिर से जांच-परख कर नया रूप, नया आयाम देने को बाध्य होता रहा हूं.

'**मेरा पन्ना**' बेहद सफल जा रहा है. यह किसी भी इनसान को आंदोलित किये बगैर नहीं रह सकता. यों तो जनवरी माह की हर कहानी जानदार है, फिर भी कुछ कहानियां बेहद पसंद आयीं. जहां इब्राहीम शरीफ ने आम आदमी की जिंदगी के भीतरी हिस्से को दर्शाया है, सुरेश सेठ ने '**यंत्र-पुरुष**' में हुक्मरानों की आला नक्काशी की है. प्रभु जोशी की '**यह सब अंतहीन**' सचमुच मानव-संबंधों के अर्थों पर अपना एक अंतहीन प्रभाव छोड़ जाती है.

☐ **सुरेंद्र भारती, मोतीहारी**

कभी सोचता था कि '**सारिका**' श्रेष्ठजन (एलीट) की पत्रिका है, परंतु कुछ वर्षों से उसका स्वर क्रमशः आग्नेय होता गया है. जनवरी अंक ने अंतर्मन का हर तार झनझना दिया है. पहली बार महसूस किया कि हिंदी कहानी न सिर्फ आज की विरूपता को प्रतिबिंबित करती है, वरन् एक सीमाहीन आक्रोश जगा कर उसे बदलने का नव दिशाबोध भी देती है. '**जमीन का आखिरी टुकड़ा**' उस ग्रामीण निम्नमध्यवर्ग की आर्थिक त्रासदी और शोषण को चित्रित करती है, जिसकी नियति अंततः सर्वहारा-वर्ग के संघर्ष के साथ जुड़ी हुई है. यह संपूर्ण देश एक '**चूहेदानी**' बन गया है. हर आम आदमी की आंख में 'डर, संताप और आशंका' है. हम सब 'आने वाले विभीषिकाओं भरे क्षणों का इंतजार भर' कर सकते हैं, क्योंकि इस देश को एक 'अंधेरी, सीलन और बदबू भरी सुरंग' में घुसा कर ड्राइवर न जाने कहां गायब हो गया है. '**यंत्र-पुरुष**' में बंसीधर मास्टर का लड़का जिनके बीच से उठा था, उन्हीं को रौंदता हुआ नौकरशाह-वर्गीय चरित्र के अनुरूप क्लब की तरफ पीने और बिलियर्ड खेलने के लिए बढ़ जाता है. अभावों के महासागर में तैरता हुआ हर मध्यवर्गीय संवेदनशील व्यक्ति समृद्धि के द्वीपों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को देखने की **'सजा'** भुगत रहा है और उम्मीद लगातार किसी बदचलन औरत की तरह उसका पीछा करती रहती है!' हृदयहीन नौकरशाही की देन **'इंतजार'** ने न जाने कितनों के जीवन में अधःपतन और यातनाओं के नरक की सृष्टि कर दी है. **'हरिजन-सेवक'** में गांधी के मिथ्या उत्तराधिकारियों का यथार्थ चित्र उपस्थित किया गया है. **'यह सब अंतहीन'** का बीभत्स अंत पढ़ कर मन-प्राण में एक अनाम विक्षोभ हहराने लगता है. अजित पुष्कल की **'इजारेदारी'** का कथ्य उस प्रशासनिक व्यवस्था को नंगा कर देता है, जिसमें कानून निरपराध और अशक्त को तो अपनी गिरफ्त में आसानी से जकड़ लेता है, पर वास्तविक अपराधी उसके जाल से मुक्त रह जाता है. **'जुलूस'** का सहयात्री स्वयं को 'वर्षों से जारी एक अवैध अन्याय का शिकार महसूस करता है' पर साथ ही यह भी महसूसता है कि 'भीड़ एक 'नॉन-इश्यू' के पीछे संगठित हो गयी है. समाजवादी क्रांति के गर्भपात में से जिस अमानवीय क्रूर विरूपता का दूसरा नाम फासिस्टवाद जन्म लेता है, उसकी ओर यह कहानी एक इशारा करती है. इस संपूर्ण मरणांतक माहौल के विरुद्ध एक ही उपाय शेष रह गया है और वह यह है कि 'घुन' के पात्र की तरह साहसपूर्वक मृत्यु का वरण किया जाये तथा 'अपने को सड़ा हुआ न मानने की जिद पर अड़ा रहा जाये.'

□ **रमणलाल जैन, डूंगरपुर**

'सारिका' खरीद कर पढ़ने की ख्वाहिश बहुत दिन से थी, मगर हर बार उसे अपने एक मित्र के हाथ में देख कर शर्मिंदा हो जाता कि संयोग से उन दिनों कोई पैसा पास न रहता था. मगर जनवरी, १९७५ अंक खरीद ही लिया. तीन कहानियां विशेष रूप से अच्छी लगीं. **'जमीन का आखिरी टुकड़ा'** (इब्राहीम शरीफ) सशक्त व्यंग्य है. इसका अंत बहुत ही खूब है. **'जबरा मारे रोने न दे'** (भगवतीचरण वर्मा की दसवीं कहानी) इसलिए अच्छी लगी कि मैंने अपने विद्यार्थी-काल में इनका एक उपन्यास—**'वह फिर नहीं आयी'**—पढ़ा था, जिसकी छाप मेरे दिल पर अमिट रही.

'इजारेदारी' (अजित पुष्कल) में मुझे अपना ही किरदार नजर आया. मैं १९५९ से १९६४ तक उत्तर प्रदेश के फूड एंड सिविल सप्लाइज डिपार्टमेंट में मार्केटिंग इंस्पेक्टर रहा और मैंने अजित पुष्कल की ही तरह कानून तोड़ने वालों का नंगापन देखा. बहुत-से सेठ-साहूकारों को मैंने हवालात की हवा खिलायी. गुड़, चावल और अनाज का स्मगलिंग पकड़ने के लिए जान हथेली पर रखी. उस दौरान कुछ जिंदा कहानियां भी लिखीं. लेकिन मैंने यह महसूस किया कि कौवों के घेरे में हंस अकेला क्या-क्या कर सकता है, और फिर मैं उस नौकरी से हट गया.

□ **सैयद अख्तरुल इस्लाम, मेरठ**

'नया वर्ष शुभ हो!' दुष्यंतकुमार की गजल की अंतिम दो पंक्तियों—'अब नयी तहजीब के पेशे-नजर हम, आदमी को भून कर खाने लगे हैं'—से सजा हुआ नये साल का पहला अंक देखा और पढ़ा. आदमी को भून कर खाने वाले ये आदमखोर कौन हैं—इसका परिचय 'समांतर कहानी विशेषांक-४' में छपी कहानियों में स्पष्ट देखने को मिलता है. आम आदमी के आसपास मंडराने वाले ये जहरीले दांतों वाले आदमखोर हर उस आदमी को टुकड़ा-टुकड़ा कर, नोच-नोच कर खा रहे हैं जो यथास्थिति में जीने का अभ्यस्त हो गया है. जनवरी '७५ में प्रकाशित कहानी **'जमीन का आखिरी टुकड़ा'** (इब्राहीम शरीफ) का कारिंदा, **'यंत्र-पुरुष'** (सुरेश सेठ) का देवन बाबू, **'हरिजन-सेवक'** (मधुकर सिंह) का मुखिया, **'जबरा मारे रोने न दे'** (भगवतीचरण वर्मा) का धम्मन सिंह, **'सजा'** (हृदय लानी) का वह गुमनाम साहब—सभी आदमखोर हैं जो नैतिकता की जंजीरें तोड़ कर सरे-आम पागल कुत्ते की तरह लार टपकाये आम आदमी को काटते फिर रहे हैं. लेकिन यह वैज्ञानिक सिद्धांत है कि जो कुत्ता पागल हो कर दूसरे को काटता है, वह स्वयं भी जीवित नहीं रहता है. ठीक यही हश्र इन आदमखोरों का होगा. आज के लेखन का महत्व इसीलिए बढ़ा है कि उसका रचयिता स्वयं उस वर्ग से है, जिसमें रहते हुए इन आदमखोरों से मुक्त होने की इच्छा मन में दबाये हुए वह छटपटा रहा है. आज के लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह झूठा दिलासा दे कर गुमराह नहीं करता, वह नेताओं की भांति झूठे आश्वासनों से निर्धनता मिटाने की डींग नहीं हांकता. वह आदर्शवादी लेखक की तरह अली बाबा चालीस चोर की कहानी गढ़ कर मजमा नहीं जमाता, बल्कि यथास्थिति को सम्यक दृष्टि से देखता हुआ उससे जूझने की शक्ति प्रदान करता है. इससे पहले कि ये आदमखोर अपने नुकीले दांतों, असुर हाथों से हमारी ओर बढ़ें, हमें टुकड़ा-टुकड़ा कर खा जायें, आओ, हम दृढ़ता से अपने परिवेश के सत्य को स्वीकारें और उससे भिड़ते हुए आगे निकलें. क्योंकि हमारी जीवनस्थिति एक-सी है, हमारी परिस्थितियां एक-सी हैं, हमारे हित एक-से हैं. आओ, हम अपनी मानसिकता को कमजोर न बनायें, अपने में सम्यक दृष्टि पैदा करें और उस पागल कुत्ते को मार भगायें.

कमलेश्वर जी ने (**'मेरा पन्ना'**) नये वर्ष की शुभकामनाएं देने की औपचारिकता का विरोध जिन विचारों को ले कर किया है, उनसे मैं भी पूरी तरह सहमत हूं.

□ **हे. कांत कात्यायन, मंडी**

हाय सारिके!

अपने सुकोमल आकार में, मीठी कटार घुमाने से तू अपना चौथा भाग खो बैठेगी. २२०८ वर्ग इंच की कमी दे कर तू मिनी-सलोनी कहलायेगी. हमें लगभग २५ पृष्ठों से हाथ धोना पड़ेगा! ४ से ५ कहानियां कम पढ़ने व छपने को मिलेंगी.

प्रौढ़ा की जगह भले ही तू अल्हड़ दीखने लगे लेकिन इस क्रूर मजाक को हमें ही तो सहन करना है. कर लेंगे. तू किसी रूप में भी रहे, बस दर्शन देती रहे, यही कामना है.

□ **मातादीन खरवार, बंबई.**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज का यथार्थ : समांतर संसार-७

मेरा पन्ना

कितनी कोशिश की है हमने 'आदमी' बनने की! वैदिक काल की सप्त मर्यादाओं से ले कर आज के यथार्थवादी काल की प्रतिबद्धता और संबद्धता की शपथों तक! वैदिक काल में हमने आम आदमी के हित के लिए शपथें खायी थीं--सत्य-निष्ठ, संयत, निर्दोष, भद्र, निष्पाप, उदात्त और उदार होने की!

ब्राह्मण और आरण्यक ग्रंथों में जिस सत्य की कामना की गयी थी, उसे भी व्यक्ति के सदाचरणों के लिए स्रोत के रूप में स्वीकार किया गया था, ताकि 'सत्य' मनुष्य के विरुद्ध न चला जाये (क्योंकि सत्य की धारणा ही सापेक्षता में है, निरपेक्षता में नहीं.)

उपनिषदों ने भी समस्त प्राणियों में 'ईश्वर का अंश विद्यमान है' स्वीकारने के बाद ईश्वर को सर्वव्यापी, शुद्ध, पापहीन, मुक्त और स्वयंभू माना था, ब्रह्मरूप! और सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा, मैत्री, उदारता, आत्म-ज्ञान की अध्यात्मवादी दृष्टि का विकास मनुष्य के लिए ही किया था. अद्वैत आदर्श की प्रतिष्ठा जिन आधारों पर उपनिषदों में हुई थी, उनमें 'इच्छा' का निषेध या संयमन ही प्रमुख था. मोह और शोक से ऊपर उठ कर 'आत्मरूप' होने के लिए! यानी सामाजिक व्यवहार के सद्-नियमों की नींव पर ही व्यक्ति के आध्यात्मिक उदात्तीकरण की सीढ़ी टिकायी गयी थी.

षड्दर्शन (दर्शनशास्त्र) जीव, आत्मा, प्रकृति तथा ब्रह्म की व्याख्या करते हुए भी यम और नियमों को नजरअंदाज नहीं कर देते. वहां भी क्षमा, नम्रता, अक्रोध, दान, दया, मैत्री, मधुरता और कोमलता की मांग मनुष्य के संदर्भ में ही गयी है. . .ब्रह्म के लिए नहीं, बल्कि ब्रह्म (सत्य) की प्राप्ति के लिए!

स्मृतिकारों ने समाज-संरचना का जो चौखटा खड़ा किया और श्रम-विभाजन करके उत्पादक शक्तियों (आध्यात्मिक और लौकिक) को अलग-अलग 'अवसर' और 'स्तर' दिये (जो कालांतर में विषमतामूलक सिद्ध हुए) वे भी, यदि हम स्मृतिकारों की सदाशयता पर विश्वास करें (और उसे कोई साजिश न मानें) तो मनुष्यमूलक ही रहें होंगे, जहां 'जन्मना' स्थिति का नकार और 'कर्मणा' स्थिति का स्वीकार था. स्मृतिकारों को क्यों जरूरत पड़ी कि वे कर्म के आधार पर वर्णों की व्यवस्था करने को तत्पर हुए? शायद इसलिए कि समाज बुरी तरह दूषित हो चुका होगा और लौकिक नियम 'जन्मना' व्यक्तियों द्वारा खंडित किये जा रहे होंगे! विषमता और शोषण का वह दौर जो तत्कालीन समाज में चालू हुआ होगा, उसे संतुलित रूप देने का शायद यह वही लीपा-पोती वाला शांतिमय, विकासवादी रूप रहा होगा, जैसा कि आज फिर अपने देश में होता दिखायी दे रहा है.

स्मृतियुग के इस भूचाल के बाद पुराणों की परिकल्पनाओं, वैष्णव और भागवत धर्मों की मान्यताओं ने फिर मनुष्य के लिए तृष्णा के त्याग, करुणा के वरण और पीड़ा के नाश के लिए भक्ति-द्वार सभी वर्गों के लिए खोलने की शपथ खायी!

और भगवान बुद्ध को कहना पड़ा : 'जब तक विश्व के क्षुद्राति-क्षुद्र प्राणी को दुख से मुक्ति नहीं मिल जाती,' तब तक बोधिसत्व अपनी मुक्ति की कामना नहीं करते! अष्टांगिक मार्ग भी मनुष्य के लिए ली गयी आठ शपथें ही थीं--ज्ञान, संकल्प, वचन, कर्म, आजीविका, व्यायाम (मेहनत), स्मृति (संताप) तथा समाधि (एकाग्रता) के रूप में! इन आठों बौद्ध शपथों को भी वर्णहीन समाज की नींव पर ही खड़ा किया गया था. लौकिक न्याय के बिना आध्यात्मिक निर्वाण की कल्पना नहीं की गयी थी.

जैन दर्शन ने 'चातुर्याम धर्म' को मनुष्य के लिए विवेचित करते हुए 'अनेकांत' की सापेक्षतावादी दृष्टि को मंजूर किया था--कि वस्तु का एक रूप नहीं होता, एक ही वस्तु के अनेक रूप होते हैं--यानी सत्य एकरूपा नहीं है, बहुरूपा है, और उसके सत् या असत् रूप को आदमी की 'अपेक्षा' तय करती है. यानी सत्य निरपेक्ष नहीं है. सत्य समय और मनुष्य सापेक्ष है.

अगर हम वैदिक काल से जैन युग तक आदमी बन गये होते, तो संत कवियों ने 'सर्वात्मवादी' संबोध को शायद कारगर कर लिया होता. . .पर तब संतों को आदमी और आदमी (आदमी और निराकार ब्रह्म) के बीच आ गये भेद को मिटाने के लिए गरीबदास की तरह कहना पड़ा --

> कैसे हिंदू तुरक कहाया,
> सब ही एकै द्वारे आया।
>
> कैसे बाहमन कैसे सूद्र,
> एके हाड़ चाम तम गूद ॥

★ ★

बार-बार, हर दौर में ये शपथें खा कर भी हम आदमी नहीं बन पाये. संत कवियों ने अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ौर के शोषित, प्रताड़ित और विषमता-पीड़ित आम आदमी के लिए जो संघर्ष किया, उसकी मिसाल मिलना मुश्किल है.

लेकिन हुआ क्या?

स्वतंत्र भारत का संविधान फिर एक उदात्त किस्म की 'स्मृति' बन कर इतिहास के चौखटे में जड़ जायेगा. इतनी दया, करुणा, नम्रता, अहिंसा, शांति, क्षमा, उदारता, नीति, समता, अर्हत, अपरिग्रह, अक्रोध, दान, मैत्री, संकल्प, वचन, कर्म और अनेकांत आदि के विराट और उदात्त महामूल्यों की बात करते हुए भी हम इन्हें वास्तव में जीवन-मूल्य क्यों नहीं बना पाये? और अंततः इन्हें सामाजिक संहिता में क्यों शामिल नहीं कर पाये? शुभ की इतनी बड़ी-बड़ी और मानवीय शपथें खा कर भी क्यों मनुष्य को उसका शुभ और सुख नहीं दे पाये?

यहां पर तर्क के लिए कहा जा सकता है कि ये सब पारलौकिक मूल्य थे...आत्मा और ब्रह्म के संदर्भ में! इनका लौकिकता से संबंध नहीं था—जी नहीं, भारतीय मनीषा की विराटता और विशेषता ही यह है कि उसने लौकिक के बिना पारलौकिक की परिकल्पना ही नहीं की है. उसने मनुष्य की आदिम वृत्तियों के शमन और संयमन से बृहत्तर मानव-कल्याण की दृष्टि को विकसित करने की कोशिश की. चिंतनीय यह है कि मानव-कल्याण की इतनी जबरदस्त पैरवी करने वाला देश इतने बड़े अकल्याणकारी यातना-शिविर में क्यों बदल गया?

शायद इसलिए कि इस देश में महान सिद्धांत, धारणाएं और मूल्य तो बनते चले गये, पर उनकी व्यावहारिकता या चलन की जांच-परख कभी नहीं की गयी. क्योंकि भारतीय समाज अपने विभिन्न युगों में सामाजिक नियमों की जरूरतों से चालित न हो कर संरक्षावादी (ट्रस्टीशिप) सिद्धांतों के तहत सही और गलत, जरूरी और गैर-जरूरी का निर्णय करता आया है. यह पुरातन समाज शुरू से ही हर मानवोचित सामाजिक और वैयक्तिक अपेक्षा के लिए संरक्षकों (ट्रस्टीज) को मंजूर करता आया है. आत्मा के संरक्षक, धर्म के संरक्षक, सुख-दुख के संरक्षक, पाप और पुण्य के संरक्षक, भौतिक मूल्यों के संरक्षक और आधिभौतिक शक्तियों के संरक्षक! इन संरक्षकों को यदि पंडा या पुरोहित कह दिया जाये, तो गलत नहीं होगा.

राजनीतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक परिवर्तन का लगातार घोर विरोध इन पुरोहितवादी शक्तियों ने किया. जिस विषचक्र में इन्होंने सदियों से भारतीय समाज और उसकी चौतरफा मुक्ति को कस लिया था, वह नागफांस आज भी पूरी तरह ढीला नहीं हुआ है. मात्र इसीलिए कि मानव-कल्याण की शपथें खाते हुए भी भारतीय चिंतन और साहित्य ने अपनी सामाजिक सापेक्षता और मूल्यों के व्यवहार में लाये जाने के तकाजों पर गिद्ध-दृष्टि नहीं रखी. वे कह कर या चिंतन करके निरपेक्ष होते गये—इस विश्वास के साथ कि सत्य सत्य हो कर रहेगा!

इस सहज विश्वास के साथ कितना बड़ा विश्वासघात किया गया, यह आज सामने है, क्योंकि हम उस आधारभूत आवाज से भी निरपेक्ष हो गये जो कहती रही कि सत्य एकरूपा नहीं है, बहुरूपा है! और उसके सत् या असत् रूप को मनुष्य की अपेक्षा तय करती है!

संतवाणी ने सामाजिक विषमता के स्तर पर इसी मनुष्य-सापेक्ष सत्य को अभिव्यक्ति दी थी. उन्हें भी पुरोहितों और पंडों ने परिवर्तनवादी शक्ति में नहीं बदलने दिया; उन्हें निराकार को समर्पित कर दिया. उनके परिवर्तनकामी मंतव्यों को धीरे से थपथपा कर, उनके निराकार ब्रह्म की साधना को मोटी लाइन खींच कर रेखांकित कर दिया. उसके मनुष्य-सापेक्ष सामाजिक प्रश्नों को दबा कर निरपेक्ष, निराकार साहित्यिकता की गरिमा को धारण कर लिया! साहित्य के प्रश्नों से तटस्थ हो जाने और साहित्य के प्रश्नरहित 'सौंदर्य' को गले लगा लेने की परिपाटी भी साहित्यिक पंडागीरी ही है.

इसीलिए आज का साहित्य तटस्थता और निरपेक्षता को बहुत पीछे छोड़ कर प्रतिबद्धता, और उससे भी आगे बढ़ कर, संपूर्ण संबद्धता की बात करता है और यहीं पर नहीं रुकता— वह मूल्यों के व्यवहार में लाये जाने के तकाजों पर गिद्ध-दृष्टि भी रखता है. उनको कार्यान्वित भी करना चाहता है.

* *

आज का मराठी दलित साहित्य समांतर साहित्य की ही तरह जब सम्यक् परिवर्तन की बात करता है, तो मात्र साहित्य की चिंताओं तक सीमित नहीं रह जाता—क्योंकि दलित साहित्य उन शपथों से आगाह है जो हर युग में ली गयी हैं, पर कार्यान्वित नहीं की गयी हैं. आज दलित साहित्य का यह उन्मेष मात्र साहित्यिक घटना नहीं है. यह ऐतिहासिक घटना है और यह इतिहास का संपूर्ण, वैज्ञानिक और विराट सामाजिक पुनर्मूल्यांकन करना चाहता है!

दलित साहित्य उन निरपेक्षतावादियों, सौंदर्यवादियों और निराशावादियों के लिए भी एक उत्तर है जो यह माने बैठे हैं कि साहित्य की कोई सक्रिय भूमिका अब नहीं रह गयी है. इसी साहित्य ने दलित पैंथर जैसे लड़ाकू सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन को जन्म भी दिया है. (सूचना के लिए इतना कह देना जरूरी होगा कि मराठी अपने देश की जबान है, महाराष्ट्र अपने ही देश का एक राज्य है और दलित साहित्य अपने ही देश के इस राज्य की भाषा मराठी में लिखा जा रहा है.)

कमलेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घावों को छूत लगने का ख़तरा रहता है

नयी

सुरक्षा के लिए

बैन्ड-एड ब्रान्ड पट्टियाँ लगाइए

जिन्हें अब
जल्द घाव भरने के लिए
मर्क्युरोक्रोम
औषधियुक्त किया गया है

बच्चे तो धूल-मिट्टी में खेलते ही रहते हैं। मगर एक जगह धूल मिट्टी का लगना ख़तरनाक है और वह जगह है—खुला घाव सभी छोटे-मोटे कटावों, खरोंचों और रगड़ों के घावों पर बैन्ड-एड* पट्टियाँ लगाइए। अब इन्हें जाँची-परखी एन्टिसेप्टिक, मर्क्युरोक्रोम औषधियुक्त किया गया है— चोट-खायी त्वचा के घावों को जल्द भरने और आराम पहुँचाने में मदद करती है।

आवश्यकता के अनुसार लीजिए : कटाव और खरोंच के लिए स्टैण्डर्ड स्ट्रिप्स। बड़े घावों के लिए लार्ज स्ट्रिप्स। बहुत बड़े घावों के लिए जायन्ट स्ट्रिप्स। फोड़े-फुन्सियों के लिए स्पॉट्स जहाँ पट्टियाँ बाँधी न जा सकें उन घावों के लिए पैचेस। हर प्रकार की स्ट्रिप्स पाँच-पाँच एक साथ मिलती हैं।

सावधानी बरतिए—

नयी बैन्ड-एड पट्टियाँ लगाइए।

A Johnson & Johnson product

*TRADEMARK © J & J '73 घावों की सुरक्षा और उनके इलाज के लिए विश्वसनीय नाम

व्यावसायिक पूछ-ताछ के लिए वितरकों को लिखें :

हसमुख एजेन्सी, गोखले रोड (दक्षिण) बम्बई ४०० ०२८

हसमुखलाल एण्ड कंपनी, गोखले रोड (दक्षिण) बम्बई ४०० ०२८

ठक्कर परषोत्तम हीरजी एण्ड कं. मॉडी सेंटर बेसमेंट, सांताक्रूज़, बम्बई ४०० ०५४

जवाहर मेडिकल एण्ड जेनरल स्टोर्स ९९-१०१ के. एन. रोड, बम्बई ४०० ००९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने कहा था :

हम अपने जीवन की तरफ, अपने कर्तव्यों की तरफ और अपनी सांस्कृतिक की तरफ ध्यान नहीं देते हैं. जरा इनकी तरफ गौर करें तो हमें पता चलेगा कि हमारे जीवन मूल्य और हमारे सांस्कृतिक मूल्य किस प्रकार नष्ट-विनष्ट किये जा रहे हैं. कारण कुछ भी हों, पर यह सच है हम अधःपतन और अवनति के मार्ग पर बढ़ रहे हैं. इसलिए साहित्यकारों का कर्त्तव्य है कि वे तत्परता से और सावधानी पूर्वक इन जीवन मूल्यों और सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा करें, उनमें तेज पैदा करें; उनका विकास करें. तुम्हारे कथा उपन्यास की सीता लक्ष्मण रेखा उलांघने लगी है, दुर्योधन के दरबार में तुम्हारी द्रोपदी के वस्त्र हरण किये जा रहे हैं. दुष्यंत तुम्हारी शकुंतला को पहचान नहीं पा रहा है—वह वनवासिनी हो रही है. इसलिए मुझे साहित्यकारों से अपनी सारी शक्ति लगा कर कहना है कि आप अपने साहित्य निर्माण द्वारा उदात्त जीवन मूल्यों और सांस्कृतिक मूल्यों को विकसित करें. अपने विचार संकुचित और सीमित न रखें, उन्हें विशाल बनाएं. अपनी वाणी को चार दीवारी से बाहर निकलने दें. अपनी लेखनी का प्रकाश अपने आंगन में ही न रोक लें, उसका तेज गांव-गांव के गहन अंधकार को दूर करने के लिए फैलने दें. यह भूल न जायें कि अपने इस देश में उपेक्षितों, दलितों और दुःखियों का अपना अलग संसार है. उनके दुख, उनकी व्यथा समझें और अपनी सृजन शक्ति उनके जीवन को उन्नत करने के लिए होम दें. यही सच्ची मानवता होगी.

● ●

मैंने अपना धर्म परिवर्तित कर लिया है और अब आपके साथ अपने इस कदम पर विचार करना चाहता हूं. धर्म परिवर्तन इतना महत्वपूर्ण विषय है कि उस पर खुल कर चर्चा होनी चाहिए. मैं कई स्थानों पर अपने धर्म परिवर्तन की घोषणाएं कर चुका हूं और अब आपके सामने उपस्थित हुआ हूं.

● ●

पहले तो हम यह देखें कि हमारे अस्पृश्य माने जाने मात्र से हम पर क्या-क्या जुलुम ढाये जाते हैं. हम बच्चों को पढ़ा नहीं सकते, कुओं से पानी नहीं खींच सकते, अपने दूल्हे को घोड़े पर नहीं बैठा सकते. यदि हम अधिकार पूर्वक ऐसा करना चाहते हैं तो हमें मारा-पीटा जाता है. अच्छी पोशाकें पहनने, सोने-चांदी के जेवर पहनने, पानी के लिए तांबे-पीतल के बर्तनों का उपयोग करने, जमीन जायदाद खरीदने, मरे जानवरों को न उठाने, जनेऊ पहनने, जूते-मोजे पहनने, मरे जानवरों का मांस न खाने, हिंदुओं को जुहार न करने, शौच के लिए लोटे में पानी ले जाने आदि का विरोध किया जाता देख कर तो विदेशी भी दांतों तले अंगुली दबा लेते हैं.

● ●

और जिस धर्म में आपको नीच कहा गया है वह उन तथाकथित ऊंचों का सनातन धर्म है—सनातन, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता. यदि आप उसमें परिवर्तन कराना चाहें; उनके बराबर के स्तर पर खड़े होना चाहेंगे तो वे ऐसा नहीं होने देंगे, कलह पैदा कर देंगे. ऐसे कलहपूर्ण दयनीय वातावरण में जीना ही आप उचित समझते हों और उनकी सेवा करना ही अपना धर्म मानते हों तो फिर यहां कैसी भी चर्चा करना बेकार है. परंतु यदि आप इस गुलामी को, इस अपमान की बेड़ी को काट फेंकना चाहते हैं और स्वाभिमानपूर्वक जीना चाहते हैं तो इस समस्या पर विचार करना ही पड़ेगा.

● ●

'जिससे सारी प्रजा का धारण होता है' उसे धर्म कहते हैं. यह व्याख्या मेरी नहीं है. यह व्याख्या है सनातन-धर्म के अग्रणी लोकमान्य तिलक की. पर मैं इसे मानता हूं. जिन सामाजिक मूल्यों और रीतिरिवाजों पर समाज का व्यवहार चलता है वही धर्म है. ये मूल्य और रीतिरिवाज ही वे बंधन हैं जो व्यक्ति को समाज से बांधे रखते हैं. इसलिए धर्म की व्याख्या से अधिक महत्वपूर्ण उन बंधनों को जानना है जो समाज का योग्य संचालन करते हैं.

● ●

सहानुभूति, समता और स्वातंत्र्य व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक हैं, क्या हिंदू धर्म में आपको इनमें से एक भी उपलब्ध है. सहानुभूति के नाम पर तो सर्वत्र शून्य ही नजर आता है. आपको अपना मानना तो दूर आपको बाहरी से भी बाहरी व्यक्ति की नजर से देखा जाता है. आपकी बस्ती और उनकी बस्ती शत्रुओं के पड़ावों के समान मालूम होती है. कोर्ट-कचहरी, पुलिस स्टेशन कहीं भी आप क्यों न जायें आपके साथ अभद्र व्यवहार ही होगा. क्या यह सहानुभूति है? ☐☐☐

दलित साहित्य के ये दोनों अंक (अप्रैल '७५ तथा मई '७५) बाबा साहब अंबेडकर के (१४ अप्रैल) जन्म दिवस के अवसर पर उनकी स्मृति को सादर समर्पित.

In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मकुल मुलाणी ★ अण्णाभाऊ साठे

तेरी मुंडी काटे बगैर मुझे चैन नहीं मिलेगा--मकुल के ये शब्द हाजरा के कानों में गूंज रहे थे. उनका तीखापन उसके कलेजे में चुभ रहा था. उसकी आंखों के सामने भयानक अंधेरा छाया हुआ था. उस अंधेरे में आंखें बलपूर्वक बंद कर वह देख रही थी. मकुल ने उसकी गरदन काट डाली. पुलिस ने आ कर मकुल को कैद कर लिया. कोर्ट में मुकदमा शुरू हो गया है. . .ऐसे अनेक दृश्य उसकी आंखों के सामने घूम रहे थे.

विशाल बंबई नगरी का उपनगर, एक पहाड़ी के पैरों पर सर रखे सो रहा था. मशहूर आगरा रोड उसकी पीठ पर पैर रख बंबई की ओर निकली थी. उस उपनगर में वर्षा में भीगे कौओं के झुंड की तरह मकान थरथरा रहे थे. बीते हुए सभी युगों का अस्तित्व वहां दिखायी दे रहा था. पहाड़ी से आने वाली जंगली हवा उन मकानों को प्यार भरे धक्के दे रही थी. भैंसों के तबेलों की मूत्रभरी गंध घरों में भर रही थी. बिल्कुल एक किनारे पर बनी दो चालें. पैर फिसले हुए आदमी की तरह तिरछी हो गयी थीं. वे दोनों एक-दूसरे पर गिर वाली थीं. हर टूटे हुए दरवाजे की तख्ती पर नगर पालिका का यह हुक्म अंग्रेजी भाषा में खतरे का इशारा दे रहा था : ये चालें (इमारतें) खतरनाक हैं.

लेकिन हर-एक खोली में दो-दो परिवार मौ से रहते थे. मकुल मुलाणी भी वहां अपने दस लोगों का विशाल परिवार ले कर बसा था.

मकुल दरवाजे के पास पड़ा खर्राटे भर रहा था. उसकी विशाल देह पर हजारों मच्छर भिनभि रहे थे. तकिये के पास बैठा एक दुमकटा कुत्ता एक पुरा चुराया हुआ जूता कुतर रहा था. चाल की छत पर बैं एक बिल्ली उसकी खबर ले रही थी कि कुत्ता क्या-क्या लाया है.

कुछ देर पहले मकुल खाना खा कर दरवाजे पड़ा था. उसके मन में अनंत विचारों की सुइयां चु लगीं--अंगारे से अंगारा जलता है, वैसे ही विचार विचार जलने लगे. विचारों के भंवर में वह डूब गय

हमारे महमद और अमीर, इन दो बच्चों को नौ कब मिलेगी? हमारी जवान बेटी हुर्मत तमाखू मां घूमती है, उसकी शादी कब होगी? और तो और, बेटी सकीना महीने में आठ दिन ससुराल रह कर बा सब दिन हमारी छाती पर मूंग दल रही है, उससे क्या क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

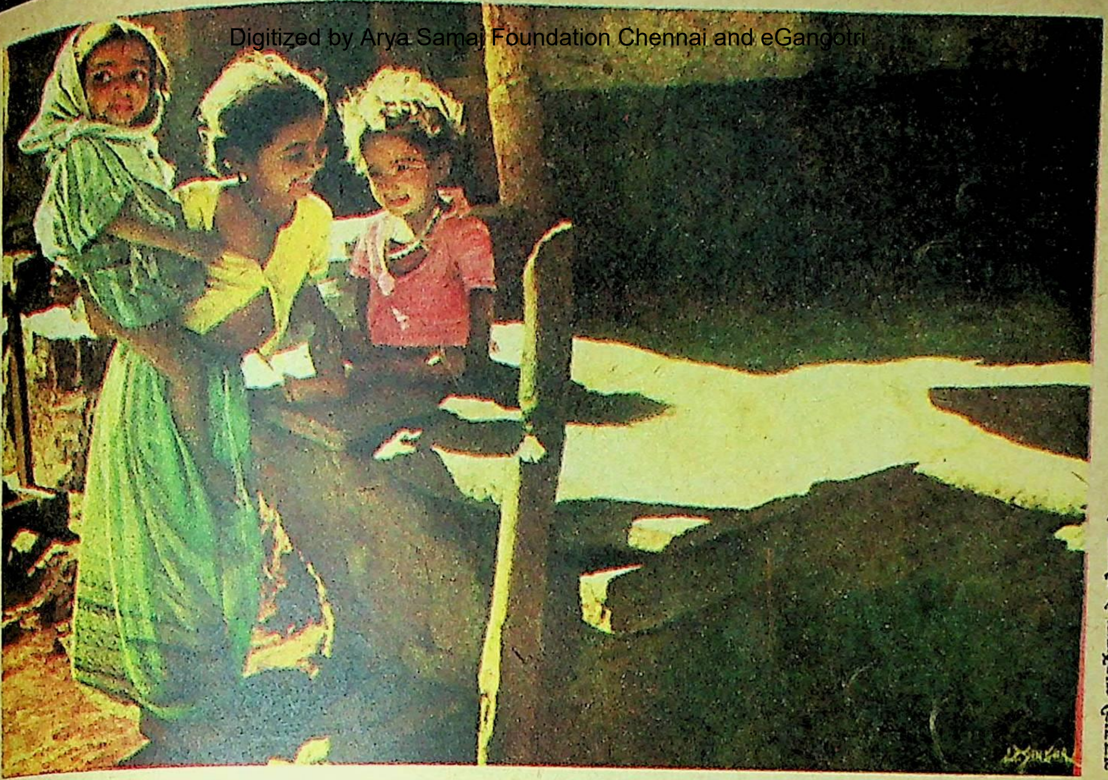

अडवानी आर्टीकान के सौजन्य से

और घोड़े के साथ जिनकी तरह आया जवांई भी हमारे घर को हील रहा है, उसका बंदोबस्त कैसे करे? आज तक जैसे-तैसे मैंने इन दस आदमियों का पेट भरा है. . अब क्या करूं? इन विचारों के धागों से जकड़ा मकुल का मन तड़प रहा था. तब उसकी पत्नी हाजरा बाहर आ गयी थी. उसने धीरे से कहा—सुनते हो!

—हां, बोलो, क्या है! मकुल ने कहा था.

—मैं कहती हूं सकीना को यहीं रहने दो. . .हाजरा ने सलाह दी. लेकिन मकुल चमक गया. . .

—और जवांई के घर कौन रहेगा?

हाजरा ने शांति से कहा—उसे भी यहीं रहने दो!

—और इतने लश्कर का दाना-पानी मैं अकेला कब तक पूरा करूं? मकुल झट से उठ बैठा. उसकी आवाज तेज हो गयी. उसने हाजरा पर तोप दाग दी.—क्या करूं? अपने आपको बेच डालूं? या तुम्हें बेचूं? या तेरी अम्मां को बेचूं? बोल? वह रुका और हाजरा को जोश आया. मां का नाम लेने पर वह भी भड़क उठी. . .—हां-हां. . .मेरी अम्मां का नाम मत लेना नहीं तो. . .

—क्या कर लेगी तू? मकुल ने चढ़ाई शुरू की.

—सीधे मुंह बात कर! अपना बचाव करते हाजरा ने उत्तर दिया और मकुल गुर्राया—अब मैं सीधे मुंह बोलने वाला नहीं!

—यानी मुझे मारोगे? हाजरा ने गरदन को झटका दे कर कहा और मकुल ने उसी अदा से कहा—हां, अब तुझे मारूंगा!

—मारोगे! पहले कभी मारा था? हाजरा ने अपना हाथ मकुल की नाक की ओर करके पूछा और मुट्ठी बांध कर मकुल बोला—आज तक तुझे नहीं मारा, इसका मतलब यह नहीं कि कभी नहीं मारूंगा. और तुझे न मारने की वजह ये हरामजादे बच्चे हैं—एक बच्चा हुआ, कैसे मारूं? तीन हो गये—कैसे मारूं? ऐसा कहते-कहते तुझे नौ बच्चे हो गये और उन्होंने तुझे बचा लिया लेकिन . . .

—लेकिन क्या? अब क्या करोगे? हाजरा बीच में चिल्लायी और मकुल ने भी चिल्ला कर कहा—अब तेरी मुंडी काटे बगैर मुझे चैन नहीं मिलेगा.

मकुल की आंखों में लगी आग हाजरा ने देखी थी. उसकी आवाज उसे निश्चयात्मक लगी थी. उसके मन में डर बैठ गया. वह धीरे से पीछे सरक गयी और अपने बिस्तर पर पड़ी विचार करने लगी. . .कुछ देर पहले का झगड़ा उसके दिमाग में नाच रहा था. वह अपने आपसे पूछ रही थी—यह इतना खूंख्वार कैसे बन गया?

★ ★

कुछ दिन पहले मकुल के घर में हंसी खेल रही थी. दो लड़के नौकरी पर थे, एक रेलवे में और दूसरा बंदरगाह पर. . .काम करके वेतन लाते थे. छोटा नबू बकरी की मुंडियां-हड्डियां बेच कर पेट भर लेता था. मकुल मार्केट में बकरों का मांस बेचता था. महीने में दो वेतन बचते थे. वेतन के दिन दो बहूएं, दो नाती, पत्नी, दो लड़कियां, तीन बच्चे और स्वयं मकुल, दस-बारह लोग सजधज कर सिनेमा जाते थे. नमाज को जाते थे. अच्छे लोग मान कर पड़ोसी भी उनका सम्मान करते थे. लोग कहते—मकुल मुलाणी अच्छा है!

लेकिन वह भयानक दिन भी आया. उस दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अण्णाभाऊ साठे : उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार, लोककवि

महमद और अमीर की नौकरियां छूट गयीं. दो वेतनों का झरना सूख गया. आज नहीं, कल मिलेगी, इस आशा पर कुछ दिन बीत गये. घर की वस्तुएं बिक गयीं. मकुल के परिवार के सामने मुसीबत की चट्टान आ गयी. दो होनहार जवान बेटे बेकार हो कर काम की तलाश में भटकने लगे और अकेला मकुल संसार का हल गरदन पर रखे खींच रहा था. परेशानी से खींच रहा था—लेकिन सब व्यर्थ था. प्रपंच की फटी गुदड़ी फिर से नहीं सिल पाती. उसे ठीक करने के लिए एक रोटी की दो रोटियां होने लगीं. नाममात्र का भात बरतन में पकने लगा. दाल की पतीली पानी से बढ़ने लगी और आधापेट खा कर रहने वाले लोग एक-दूसरे को चकमा देने लगे. दोनों बहुएं चुरा कर खाने लगीं और एक-दूसरे की चुगली हाजरा से करने लगीं. हाजरा उन दोनों को दो-दो दिन सोने नहीं देती और उनकी नींद हराम कर देती. लड़कों को काम न मिलने से मकुल उनसे चिढ़ने लगा. कभी कभी हाथ में आये सभी पैसों से होटल में खाना खा कर घर के सभी लोगों को भूखा छोड़ देता. जिसके हाथ में तीर, वही सेनापति था. उस घर के दो आदमी एक साथ आने पर एक-दूसरे पर गुर्राते थे. एक-दूसरे से द्वेष रखते थे. फिर भी एक कमरे में रहते थे.

★ ★

सुबह हो गयी थी.

वह बंबई की सुहावनी सुबह थी. पैंतीस लाख लोगों को जगाने के लिए वह हुई थी. उसके आगमन से करोड़ों हाथ संपत्ति के पर्वत रचने के लिए सज जाते थे. उन हाथों से राक्षसकाय यंत्र को मानवता के आगे झुकाने के लिए मजदूर नये उत्साह से जागा था. उसके फौलादी पैरों से बंबई के सभी राजमार्ग पुलकित थे. आगरा रोड भी जाग कर बंबई की ओर दौड़ रही थी. वह उपनगर जाग गया था. दूध वाले भैय्ये दौड़-दौड़ कर दूध दे रहे थे. लोग काम के लिए निकल पड़े थे. मकुल जाग पड़ा. उसने मुंह पर पानी फेरा. घर में जा कर चाय का प्याला लिया. गंभीर मुद्रा बना कर, चाय का घूंट ले कर उसने हुक्म देने के स्वर में चेतावनी दी—ए, ए, सालो! आज तुम्हें नौकरी मिलनी चाहिए. यह सुन कर महमद बोला—और अगर नहीं मिली तो...?

—नहीं मिली तो...? मकुल आंखें गड़ा कर चिड़-चिड़े स्वर में बोला—अपने-अपने बीवी-बच्चे संभालो—नहीं तो उन्हें जिंदा गाड़ दो.

—मैं नौकरी करूंगा ही नहीं! अमीर ने झुंझला कर कहा.

—फिर खाओगे क्या? पत्थर! आंखें छोटी कर मकुल ने सवाल किया.

—मैं मार्केट में दूकान शुरू करूंगा, अमीर ने कहा.

—फिर मैं भी वही करूंगा, महमद बोला.

—कुछ भी करो! मकुल चिल्लाया. दूकान डाल कर मटन बेचो या डाके डाल कर जियो—लेकिन जियो... मैं चला.

मकुल मार्केट की ओर चला गया.

★ ★

वह रविवार का दिन था. मार्केट में छह दूकानदार ग्राहकों पर नजर जमाये बैठे थे. उनकी नाक की सीध में लटकने वाली बकरों की टांगें झूम रही थीं. उनके पास छुरे चमचमा रहे थे. हरे रंग की बड़ी-बड़ी मक्खियां भिन्ना रही थीं और चोर बिल्लियां कसाई की आंखें बचा कर उन पर हावी होने का इरादा कर रही थीं. पास ही भुखमरे कुत्ते हड्डियां चबा कर अपने मुंह खून से लथ-पथ कर रहे थे. मकुल अपनी लुंगी कसे, हाथ में छुरा लिये बैठा था. सामने अमीर आने वालों ग्राहकों को बुला रहा था. पड़ोस में महमद तो होश-हवास खो बैठा था. सभी दूकानदार आज जंगली बन गये थे. आने वाले ग्राहकों को अपना-अपना माल थोपने की पूरी-पूरी कोशिश कर रहे थे. ग्राहक के मार्केट में पैर रखते ही 'ए दाऽऽदाऽ' की चिल्लाहट छत को हिला रही थी. ग्राहक भीड़ को देख कर बकरी के बच्चे-सा भागता था. ग्राहक के भागने पर वे छह कसाई एक-दूसरे पर गुर्राते थे. गालियां देते थे.

—ए भोसड़ी के, कायकू चिल्लाते? आरे ओ मामु तो मेरा था!

—अबे भड़वे! मकुल उन सभी से कह रहा था—ओ तो हमारी चाली में रहेत्या है.

उस मार्केट का व्यापार कठिनाई से चल रहा था. छह कसाई लड़-झगड़ कर बिक्री कर रहे थे. मकुल मुलाणी बार-बार अपनी रकम गिन रहा था. उसके सामने सिर्फ सवा रुपया मुंह चिढ़ा रहा था. माथे पर बल डाले उस रुपये की ओर देख कर वह सोचने लगा—आज ग्राहक क्यों नहीं आ रहे? अमीर और महमद की दो दूकानें होने से ही अपना धंधा बैठ गया है. अब अपना क्या होगा? ग्यारह बज गये. अब तक माल नहीं उठा. यह सोच कर मकुल बैठा था.

तभी एक दुबली-पतली क्रिश्चियन बुढ़िया मार्केट में आयी. अंदर आ कर उसने अपना लंबा फ्रॉक ठीक ठाक किया. हाथ की थैली झटक कर तिरछी गरदन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो उसने सभी कसाइयों को देखा और खड़िया की तरह सहमती आगे बढ़ी. तब 'मेरी बुढ़िया' कह कर छह कसाइयों ने एक साथ हांक लगायी. उसी समय बुढ़िया झट से रुक गयी. कछुए की तरह उसने गरदन भीतर खींच ली और आंखें फैला कर उन सबकी ओर देखने लगी. हम अंग्रेजों के वारिस हैं, और ये सब जंगली लोग हैं—यह भाव उसके चेहरे पर आया. वह गुस्से से देखती हुई आगे चलने लगी. तभी एक कसाई चिल्लाया :

—खबरदार, उसे आने दो.वह मेरी बुढ़िया है.उसने हाथ का छुरा सभी पर साधा. तभी मकुल ने उठ कर कहा—ए मादर. . .बुढ़िया मेरी है.

मकुल ने सामने कांटे पर लगी बकरे की टांग हाथ में ले कर उस बुढ़िया को पुकारा—आंटी, देख मैं तेराच इंतजार कर रहा हूं. इतना कह कर बुढ़िया के आगे आने का इंतजार न करते हुए उसने झट से छलांग लगायी और उस बुढ़िया को झपट लिया. एक हाथ में बकरी की टांग और दूसरे हाथ में बुढ़िया की पतली बांह पकड़ कर वह उसे खींचने लगा. तभी महमद दौड़ते हुए आया. उसने बुढ़िया की दूसरी बांह पकड़ी और झटका दिया. पल भर में सभी कसाई बुढ़िया पर टूट पड़े और उसकी मिट्टी पलीद होने लगी.

—मेरी दोनों बांहें अब उखड़ जायेंगी. अब मैं मर जाऊंगी, इन जंगलियों की पकड़ से छूटने वाली नहीं—यह बुढ़िया को यकीन हो गया. वह सूअर के पिल्लों की तरह चिल्लाने लगी.

वे छह कसाई शेरों की तरह दहाड़ते हुए उसे खींच रहे थे. तभी अमीर ने मकुल के गालों पर जोर से मुक्का मारा. मकुल नीचे गिर गया. लेकिन तभी चपलता से उसने बुढ़िया की एक टांग पकड़ ली और बुढ़िया के साथ-साथ मकुल भी खिंचने लगा. अमीर ने मकुल को मारा, यह देख कर महमद को गुस्सा आ गया. उसने हड्डियां तोड़ने वाली लकड़ी का टुकड़ा उठा कर अमीर की पीठ में दे मारा. उसी समय अमीर सामने की दीवार से टकराया उसका सर फट गया. वह खून से तर हो गया. उसने पल भर रुक कर झट से महमद पर हमला किया. उसकी नाक फोड़ डाली. इस लड़ाई में मौका पा कर बुढ़िया जान बचा कर भाग गयी.

भीड़ बढ़ गयी. लोगों ने बीच-बचाव कर इस यादवी लड़ाई को रोका. बाप को मारने के लिए लोग अमीर को दोष देने लगे.

* *

उस भीड़ में अमीर और महमद अपने जख्म पोंछ रहे थे. मकुल मुलाणी गाल पर हाथ धरे बड़बड़ा कर रो रहा था—मुझे मेरे बच्चे ने मारा. मेरी बेइज्जती हो गयी. यह कहते-कहते वह उस भीड़ में कुछ ढूंढ़ रहा था. देखने वाले उसे भी उपदेश दे रहे थे. तभी मकुल ने अपनी गिरी हुई दाढ़ को उंगली में पकड़ा और जोर से चिल्लाया—मेरे बेटे ने मेरी दाढ़ तोड़ दी . . .ये. . .

मकुल एकदम घर की ओर भागा. उसके पीछे-पीछे अमीर और महमद, दोनों दौड़ पड़े. उन लोगों को मुंह दिखाने में उन्हें शर्म आ रही थी.

मार्केट का वह भयानक दंगल देख कर सारी बस्ती थरथरा रही थी. बाप-बेटों की मारा-मारी की खबर चारों ओर फैल गयी थी. यह खबर हाजरा के कानों में भी पड़ी थी. —दोनों ने मिल कर अमीर को मारा, यह चिल्लाते हुए वह दरवाजे पर ही खड़ी थी. बिगड़े हुए बंदर की तरह उसका चेहरा लाल हो गया था. वह मकुल और महमद पर दांत किटकटाते हुए उनका इंतजार कर रही थी.

अमीर की पत्नी ने सास के स्वर में स्वर मिलाया था. बड़ी बेटी मां की सहायता के लिए तैयार हो गयी थी.

और जवांई बाबू ने अपनी पत्नी के समर्थन में हाथ में डंडा उठा लिया और. . .

और दूसरी ओर नबू ने हाथ में टूटी हुई ईंट ले कर बहनोई के सिर का निशाना लगाया. महमद की पत्नी मुकाबला करने लगी थी. हुर्मत कमर कस कर तैयार हो गयी थी. चारों ओर भीड़ जमा हो गयी थी.

मकुल आ गया. उसे देख हाजरा भड़क उठी. —मेरे बच्चे कू क्यूं मार्या? वह चीखी. वह मकुल पर झपट पड़ी. महमद की पत्नी ने उसके बालों को झिंझोड़ कर बहुत दिनों का बदला वसूल लिया. उसी पल सकीना ने भौजाई की पीठ में घूंसा दे मारा. इतने में जवांई बाबू का डंडा मकुल की पीठ पर, नबू की ईंट बहनोई के सिर पर, एक साथ लगे. हाहाकार मच गया. महमद ने आ कर बाप का मोर्चा संभाला. चारों तरफ मारामारी शुरू हो गयी. गटर के गंदे पानी और खून से वे सब लथपथ हो गये. आवेश और द्वेष से वातावरण कांपने लगा. एक ही खून के आदमी एक-दूसरे का खून बहाने लगे. पास-पड़ोस वाले पीछे हट गये. कोई भी आगे आ कर उन्हें शांत नहीं कर सकता था.

अचानक किसी ने कहा—पुलिस आयी! शराब की भट्टी पर छापा मारने वाली पुलिस ने उस दंगल पर छापा मारा. दंगलखोर मकुल मुलाणी के परिवार वालों की गरदनें पकड़ कर उन्हें मोटर की ओर घसीटते हुए उन्होंने दंगा शांत किया. शांति होने पर सभी लोगों ने मोटर के इर्द-गिर्द भीड़ की. तब मकुल मुलाणी और उसका परिवार मोटर में बैठ कर रो रहा था. एक दूसरे के जख्मों को देख कर सब सर पीट रहे थे. मकुल मुलाणी बाहर के लोगों से विनम्रता से कह रहा था—ऐ दादा लोग. . .मैंने आदमीयत छोड़ दी थी. . . मुझे छुड़ाओ—मुझे जेल में मत डालने दो—मैं क्या था और क्या हो गया. . .?

तभी मोटर टरटरायी और मकुल के साथ उसके परिवार को ले कर चली गयी. सभी कहने लगे—सच, मकुल मुलाणी मनुष्य नहीं रहा. □□□

(अनुवाद : रतनलाल सोनग्रा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दादू मारुती इंदूरीकर

● दया पवार

कहा जाता है कि आत्महत्या के लिए उद्यत व्यक्ति भी उनका विनोद सुन ले तो हंसता हुआ घर को लौट जाये. . .ऐसे मराठी रंगमंच के प्रख्यात विदूषक इंदूरीकर की अपनी व्यथा पढ़िए इस भेंटवार्ता में.

लालबाग तमाशा का हनुमान मंदिर. 'गाढ़वाचं लग्न' (गधे का ब्याह) की प्रसिद्धि प्राप्त दादू मारुति इंदुरकरकी मैं खोज में था. सायंकाल ५ बजे का समय. थियेटर के सामने दर्शकों के लिए जो पतरे का घेरा था, अब उजड़ चुका था. संगीत की खिड़की में काम करनेवाली स्त्रियों का दांत घिसना, वेणी लगाना चल रहा है. पास में ही एक पुरुष तवे पर रोटी सेंक रहा है. पूछने पर बताया जाता है कि इंदूरीकर थियेटर में होंगे. मैं थियेटर की ओर चल देता हूं. कुछ-कुछ अंधेरे स्टेज पर नये वर्ग को शिक्षित किया जा रहा है. मास्टर नृत्य करनेवालों को नृत्य का, अभिनय का, निर्देश दे रहे हैं. पैर में चाल नहीं है, चेहरे पर मेकअप नहीं हैं, साथी के पास ढोल, टुनटुनी की लय नहीं. इस कारण बाई का हाव-भाव निर्जीव लग रहा है. परदे के पीछे सात-आठ वर्ष की कोमल लड़की परदे पर के हाव-भाव की नकल कर रही है. एकलव्य के समान उसकी नकल में ही शिक्षण चल रहा है.

मैं फिर से इंदूरीकर के बारे में पूछताछ करता हूं. किसी ने बताया कि हाल में सोये होंगे. रात भर स्टेज पर काम करने वाले कुछ लोग बेंच के नीचे सोये हुए थे. हर एक का चेहरा देखता हुआ मैं आगे बढ़ जाता हूं. इंदूरीकर निद्रावस्था में दिखते हैं. उन्हें निद्रा से जगाया जाये या नहीं, मैं विचार में पड़ जाता हूं. महाराष्ट्र की मराठी रंगभूमि का इतना बड़ा विदूषक, चार्ली चैपलिन और इसके सोने का यह स्थान! मुझे धक्का लगता है. असंख्य रसिकों के मन को आनंदविभोर करनेवाला यह कलाकार. आत्महत्या करने के लिए उद्यत व्यक्ति इंदूरीकर का विनोद सुन ले और हंसता हुआ घर लौट जाये. ऐसा था उनका विनोद. ऐसा कलाकार ऐसी स्थिति में सो रहा है? चित्रपट के माध्यम से माया जमानेवाले दादा कोंडके आठवले. कोंडाक्या का अभिनय अर्थात इंदूरीकर के अभिनय की हूबहू नकल. उन्हीं के समान शरीर का हिलना-डुलना, बोलने की शैली, धोती का पल्ला पकड़ कर चलना— सभी की तो बाबा कोंडके ने इंदूरीकर के तमाशे देख कर नकल की थी. शुरू में वे इंदूरीकर को अपना गुरु मानते थे. कहते हैं कि उन्होंने इन्हें एक हजार रुपयों की गुरुदक्षिणा दी थी. मैं यह सब सोच ही रहा था कि इंदूरीकर की नींद जाती रही. उठकर बैठ गये. वे पूर्वापेक्षा थके हुए लग रहे थे. वेष हमेशा की तरह ही एकदम सादा. घुटनों तक धोती, नेहरू शर्ट, गांधी टोपी, पैरों में कोल्हापुरी चप्पल. चेहरा वैसा ही भोला-भाला. मैं अपना नाम बताता हूं. मैंने सुझाया कि वहां शोर है, हम बाहर होटल में बैठ कर कुछ देर बातें करें.

हम थियेटर के बाहर आकर होटल में बैठ गये. चाय का आर्डर दे दिया. होटल के नौकर इंदूरीकर को आदर भाव से देखते हैं. हमारी गप्प चल रही थी.

—क्यों दादोबा, गधे के ब्याह ने आपको काफी प्रसिद्धि दी न?

गधा, शब्द पर इंदुरकर को हंसी आती है. वे व[ह] प्रसंग सुनाते हैं :

मध्यांतर में शिवसेना प्रमुख बाल ठाकरे के पास जाने का अवसर आया. उन्होंने गधे का ब्याह देखा था; मुझे देखते ही कहने लगे, आते समय संगी गधा नहीं लाये? इस पर इंदूरीकर तत्काल उत्तर देते हैं, साह[ब] शुरू-शुरू में मुझे लोगों ने गधों में पाया था. किंतु अं[त] में गधों ने ही मुझे मनुष्यों में पहुंचा दिया. इस वाक्[य] से ठाकरे खुश हो उठे.

इसी प्रकार वे एक रिपब्लिकन नेता की बात बताते हैं. रिपब्लिकन नेता कोट-टाई वाले थे. अंग्रेजी फटा[फट] फट बोलने वाले, अपनी विद्वता पर गर्व, एक तालुके [में] सभा. उसके समाप्त होते ही गांव की प्रथा के अनुसार सभा में आये हुए लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था की गयी. रास्ते की धूल में ही लोगों की पंगत बैठी. नेता जहां बैठे थे, वहीं इंदूरीकर के लिए भी टाट बिछाया गया. नेता से इंदूरीकर का परिचय कराया गया. सब सुन [लें] ऐसी आवाज में इंदूरीकर ने नेता से कहा—क्यों साहब, बाहर के लोगों को सादा खाना और अपने को मु[र्ग] मसाला, यह कैसी बात है! नेता के चेहरे पर कालिमा छा गयी. सभी कार्यकर्त्ता गौर से सुन रहे थे. इंदूरीकर को नीचा दिखलाने के लिए नेता कहते हैं :

—गाना, कौन-सा गाते हैं?

—पट्ठे बापुराव का!

—क्या ब्राह्मण का गाना गाते हो! उस[के] बदले भाउ फक्कड़ का गाना क्यों नहीं गाते?

—साहब, इसमें बात ऐसी है, दस-बारह वर्ष [का] था, तभी से बापुराव का गाना गाता आ रहा हूं. उ[न] के सामने ढोलक बजायी–'तू एक नदी की नारी' [यह] उन्हीं का गाना है. साहब इस क्षेत्र से अनभिज्ञ. इ[स]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे क्या बोलते?

चाय पी चुके. इसी बीच म्युनिसपलिटी की झाड़ू-वाली इंदूरीकर की बगल में आ बैठती है. इंदूरीकर सहज भाव से अपने कप की आधी चाय उसे दे देते हैं. उनका यह कार्य मुझे बहुत भला लगा. जबानी तौर पर गरीबों से सहानुभूति दिखलाने वाले व्यक्ति की अपेक्षा यह व्यक्ति अधिक सच्चा लगा. मैंने इंटरव्यू की बात की तो उन्होंने कहा कि वे चालीसगांव के कार्य-क्रम में जाने की जल्दी में हैं. पुनः मुलाकात की बात करके मैं उनसे विदा लेता हूं.

★ ★

बचपन में देखे हुए इंदूरीकर की याद आती है. मैं १०-१२ वर्ष का था. तालुके के गांव में गुरुवार के बाजार में इंदूरीकर के साथ शंकर शिवणेकर का तमाशा हुआ करता था. जैसे भी हो, टिकिट के चार आने जमा किया करता. इंदूरीकर का तमाशा याने विनोद का फौवारा. वैसे तमाशा भव्यता लिये हुए नहीं था. सादा तंबू. राजा-रानी के शरीर पर सादी पोशाक. उस माने में उस समय दत्तोबा तांबे खंडेकर नामी तमाशगीर थे. दत्तोबा के तमाशे में तो दर्जन भर नाचनेवालियां थीं, भरापुरा सर्कस लगता था. खंडेकर के तमाशे में ऐति-हासिक नाटक हुआ करते थे. गांव-कस्बे में लोग मंच की साज-सज्जा देखकर दांतों तले उंगली दबा लेते. उस दृष्टि से इंदूरीकर का तमाशा अत्यंत सादा था. हां, एक बार ढोलक की थाप पर जुगलबंदी के बाद मौसी की भूमिका में इंदूरीकर मंच पर आ जाते तो तालियों की गड़गड़ाहट लगा जाती. इंदूरीकर जैसे समर्थ कलाकार सर्कस के विदूषक के समान सारे तमाशे को सिर पर उठाये रहते. जिस प्रकार कसरत करते-करते विदू-षक जान-बूझ कर भूल करता है, वैसा ही कुछ इंदूरीकर भी करते. गले में ढोलक बांध कर मुंह बजाते हुए वे प्रेक्षकों की वाह-वाह पाते हैं. आगे गाना गाते हुए उन्हें लगता कि पीछे वाद्य-वृंद में कुछ कमी है, तो तुरंत पीछे चले जाते. 'जी-जी' करते-करते आगे सिपाही का काम भी करने लगते. बाजी अपने ऊपर उलटने न देकर साथ के सिपाही पर उलट देते. राजा की गैर-हाजिरी में समूचे दरबार को काबू में रखते. तमाशे में राजा प्रजा पर जुल्म करने लगा तो स्वयं पर हंटर की मार सह लेते. सत्य की ओर से लड़नेवाले सैनिक के रूप में और दुष्टों को निर्मूल करने की लड़ाई में वे सामान्य सैनिक के तौर पर अपने उत्तम अभिनय से प्रेक्षकों का हृदय जीत लेते.

उनका उस समय का सुप्रसिद्ध तमाशा था पट्ठे बापुराव लिखित 'मिट्ठाराणीः' इस तमाशे को सैकड़ों बार खेला गया गया. बोलती पगड़ी, मल्हारराव होलकर, भगवान राव पाटील के तमाशे भी वे करते थे किंतु 'मिट्ठाराणी' यह उनका सफलतम तमाशा था. कार्यक्रम के लिए वे कोई भी साधारण स्थान चुन लेते थे. आज सफेदपोश लोगों को इंदूरीकर का नाम मालूम हुआ है किंतु महाराष्ट्र के गांवों-कस्बों के बच्चे-बच्चे की जबान पर उनका नाम पहले से ही चला आ रहा है.

आज तो उन्हें प्रसिद्धि मिल गयी है किंतु उनका भूतकाल बड़े कष्ट में बीता है. जन्म से ही उन्होंने कष्ट उठाया है. पुणे जिले के इंदूरीकर गांव के हैं वे. ब्राह्मण के घर लिखना, कुर्मी के घर खाना और महार के घर गाना. इसके पहले ही कहा जा चुका है कि नाल काटने के साथ ही उनका गाने से संबंध रहा है. उन्होंने काली महार के घर से ढोल और टुनटुनी खूंटी से उतारी. उनके पिता भी तमाशागीर थे. सातवीं कक्षा तक इंदूरीकर की शिक्षा. मास्टर होने का स्वप्न किंतु तमाशा की ओर रुचि. घर की निर्धनता के कारण चार आना रोज पर कांच कारखाने में काम करना पड़ा. इसी बीच दशरथ देवणपाकर का लहू नामक तमाशा उन्होंने अनेक बार देखा. उनके भीतर के कलाकार से चुपचाप नहीं बैठा गया. लावणी और तमाशा वे कंठस्थ करने लगे. बंबई में पीला हाउस के बागड़ीवाला थियेटर में वे भर्ती हो गये. दिन में कारखाने में काम करना, रात को तमाशा करना, इस प्रकार उनका जीवन बीतता गया. १९५५ में शंकर शिवणेकर नामक कलाकर को साथ लेकर उन्होंने अपना दल खड़ा किया. इसी बीच प्रभा शिवणेकर और हनुमंत जैसे अच्छे कलाकार भी दल में शामिल हो गये. किंतु प्रारंभ के कुछ वर्ष कष्टसाध्य सिद्ध हुए. मेल-ठेले में नाममात्र की प्रवेश फीस पर तमाशा करना. ऐसे ही एक मेला में सातारा जिलान्तर्गत (पाली स्थान) में लगा.

पागलों ने उनका तंबू जला दिया. वे पुनः बेकार हो गये. पाई-पाई, पैसा-पैसा जमा करके उन्होंने पुनः एक दल खड़ा किया. १९६२ में सांगली में संपन्न हुए महाराष्ट्र तमाशा महोत्सव में उन्हें प्रथम पुरस्कार मिला. आज इनके 'गधे का ब्याह', पहले सांवला कुंमार नाम से खेले गये, तमाशे को जो प्रसिद्धि मिल रही है, वह पहले नहीं मिल सकी. इस तमाशे का वास्त-विक उद्देश्य क्या है, इसका पता लगाने के लिए मैं इंदूरीकर से पुनः भेंट करता हूं.

एक दिन संध्या समय मैं पुनः थियेटर जाता हूं. साथ में आस्वारे नामक मित्र हैं. वहां पूछने पर पता चलता है कि उनका रवींद्र थियेटर में कार्यक्रम चल रहा है, आधे घंटे में आयेंगे. सुनकर हम आसपास ही चक्कर लगाते हैं. आस्वारे ने 'गधे का ब्याह' नहीं देखा था. मैं उनको कथानक बताने लगता हूं. कष्ट का काम करने वाले सीधे-सादे कुंभार की आशा-आकांक्षा का दर्शन 'गधे के ब्याह' में है.

मिट्टी का काम करके कुंभार थका हुआ है, घर पर पत्नी की खरी-खोटी सुननी पड़ती है. यह सब छोड़-छाड़कर कहीं निकल भागने की उसकी इच्छा होती है. ऐसे में स्वर्ग से आये हुए इंद्र के गुरु से उसकी भेंट हो जाती है. वह उसे स्वर्ग में इंद्र से भेंट कराने ले जाता है. वहां सांवला कुंभार की भूमिका में इंदूरीकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमाल कर देते हैं. सीधे इंद्र से तंबाकू का बीडा मांगते हैं जिसे इंद्र अपमानजनक समझते हैं. इस पर इंदुरीकर कहते हैं–अरे नीच, इतना बड़ा राजा है तू, किंतु तंबाकू का बीड़ा तक नहीं तेरे पास? मेरे घर चल! बोर भर कर तंबाकू रखी हुई है. धनी लोगों के कितने ही 'मैनर्स' उन्हें हास्यास्पद लगते हैं. दरबार में नृत्य चल रहा है. आगे बैठा हुआ एक यक्ष, एक नर्तकी का हाथ पकड़ लेता है–दरबार के रंग में भंग हो जाता है. इस पर पुनः इंदूरीकर आक्रोश में बोल उठते हैं—ऐसे कैसे हो तुम देवता? हम लोग इस प्रकार का व्यवहार नहीं करते. स्वर्ग के देवता रंडीबाज हैं. इस अनेक अर्थों में क्रांतिकारी लोकनाटक में यक्ष को शाप दिया जाता है. यक्ष को गधे का जन्म लेना होता है.. पुनः शाप मिलता है कि राज-कन्या के साथ ब्याह कर के ही तुझे मनुष्य रूप पुनः मिलेगा. सांवला कुंभार पृथ्वी पर आता है तो अपने गधों में एक की वृद्धि देखता है. कुंभार के घर की बरात जब राजा की बाड़ी में जाती है, तब प्रेक्षकों को समाज की विषमता के विदारक दर्शन होते हैं. गरीब लोगों का ब्याह ऐसा ही होता है क्या? नगर के अनेक लोगों ने मुझ से यह प्रश्न किया है. तब इस तमाशे द्वारा कला को वास्तविक मुखर स्वर मिलता है. प्रेक्षक थियेटर को आसमान पर उठा लेते हैं.

ऐसा ही एक अन्य विनोदी प्रसंग है. सांवला की पत्नी हाथ में लकड़ी लेकर उसे घर चलने की जल्दी करवाती है. उस दिन सांवला की पत्नी बिस्तर नहीं बिछाती. हर रोज मैं ही क्यों बिछाऊं? यह उसका

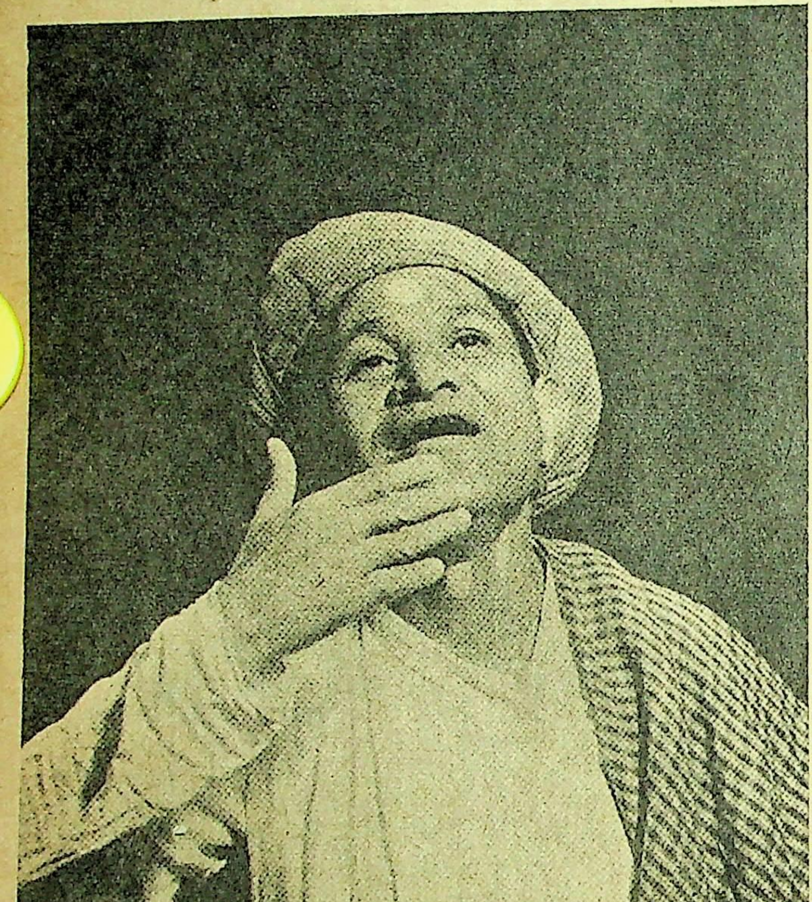

दादू मारुति इंदुरीकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लभूत प्रश्न है. इस पर इंदुरीकर कहते हैं—चलो, आज तो तुम्हें ही गर्ज है, इस पर प्रेक्षकों का हास्य-विस्फोट. स्फोट खत्म होते न होते इंदूरीकर थोड़ा पोज ले कर प्रेक्षकों की ओर देखते हैं और कहते हैं—आपकी भी बारी आ रही होगी. किंतु यहां सच कौन कहेगा? इस पर फिर हास्य का फौवारा. ऐसे अनेक छोटे-छोटे प्रसंगों से वे जीवन के परत खोलते चलते हैं. सावला कुंभार की पत्नी की भूमिका में जो जान वे डाल देते हैं, वह देखते ही बनती है!

★ ★

तमाशे के बारे में हमारी बातचीत चल ही रही थी कि खेल खत्म होने पर टैक्सी से इंदूरीकर आ जाते हैं. कार्यक्रम की थकान उनके चेहरे पर दिखलाई पड़ती है.

टैक्सी में से संदूक अकेले ही उठाने के कारण वे हांफने लगते हैं. तार पर कूद लगाने वाला विदूषक और लोगों के सामने थाली फिराने वाला व्यक्ति एक ही है, ऐसा चित्र मुझे स्पष्ट दिखलाई पड़ता है. हमारे पास आ कर वे माफी मांगते हैं. हमें वे 'जसराज' के मालिक के पास ले जाते हैं. ये भेंटवार्ता करना चाहते हैं, इसकी वे अनुमति चाहते हैं. मालिक तटस्थता से हमारी ओर देखते ह. अंत में अनुमति दे देते हैं. मालिक के प्रति इंदूरीकर का व्यवहार अत्यंत विनम्रता का है. हम बाहर आ कर एक होटल में बैठ जाते हैं.

—इन मालिक का मुझ पर बहुत उपकार है. हमें अदालत से बाहर निकाला. २७ हजार का कर्ज चुकाया. इंदुरीकर मालिक के प्रति आभार-प्रदर्शन करते जाते हैं.

—क्या वेतन देते हैं? मेरे मित्र आस्वारे प्रश्न करते हैं.

—महीने का तीन सौ. तमाशगीरों के लिए बहुत है!

—घर में कौन-कौन है?

—पत्नी, चार लड़के, लड़की एस. एस. सी कर रही है.

—फिर कैसे चलता है?

—चल जाता है कैसे भी!

—आज तक कितने प्रयोग किये?

—मालिक के साथ ४०० से ऊपर. उसके पहले भी सैकड़ों प्रयोग किये, गांवों को छोड़ कर. एक नाट्य-प्रयोग में तीन सौ रात लेने वाले मराठी रंगभूमि के कलाकार आठवले के यहां से इंदूरीकर बाहर निकलेंगे तो उनके पास फूटी कौड़ी भी नहीं होगी. यह जानकारी भी होती है—यह आपका पुराना जैसा तमाशा नहीं है न? मेरा प्रश्न था.

—हां, यह तमाशा हरिभाऊ वडगांवकर का है जो जाति के महार थे. वे कविता करते थे, तमाशे लिखते थे, किंतु कोई प्रसिद्ध नहीं हो पाये. उनका स्वयं का एक दल था. इस तमाशे को हम पहले 'सावला कुंभार' नाम से करते थे. किंतु उस समय लोगों की भावनाओं को दुखाने के विचार से अधिक चला नहीं पाये.

बोलते-बोलते दत्ता बाल की बात निकल पड़ती है. तमाशा के क्षेत्र में और बात दत्ता बाल की! हम कौतूहल से सुनने लगते हैं.

समाज-कल्याण मंत्री प्रतिमा पाटील के यहां सचिवालय में तमाशगीरों की मध्यांतर में एक बैठक हो रही थी. बैठक में मैं था, दत्ता बाल भी उपस्थित थे. तमाशगीर कृष्ण की गोपिकाओं से जो छेड़छाड़ प्रस्तुत करते हैं, वह रोकनी चाहिए, ऐसी मांग दत्ता बाल की थी, इंदूरीकर कहते हैं,

—आप कुछ बोले कि नहीं उस बैठक में?

—मैंने खड़े होकर कहा, महाराज! महाराष्ट्र में प्रथम कीर्तन और फिर तमाशा, ये ही दो कलाएं हैं. गोपिकाओं में से कृष्ण को निकाल देने का अर्थ है गोपिकाओं की आत्मा को निकाल बाहर करना. हम कृष्ण की बदनामी करते हैं, यह एक भूल है. जो पुराण में है, हम उसी को मनोरंजन के रूप में प्रस्तुत करते हैं. पट्ठे बापुराव कहते हैं, मैं ही जग हूं. मैं ही जग में सर्वत्र व्याप्त हूं, मैं स्थूल भी हूं, सूक्ष्म भी हूं, मैं तारक हूं, मैं मारक भी हूं. मैं सुखकारक हूं, अमृतरस बरसाने वाला हूं. मेरी शुद्ध मति, शुद्ध लेखनी, अपरंपार.

इंदूरीकर के वास्तविक आध्यात्म के आगे दत्ता बाल निश्चित ही भौंचक्के रह गये होंगे.

भेंट-वार्ता खत्म हुई. इसमें हिंदू धर्म और मालिकों के लिए कुछ बुरा न कहा जाये, ऐसा अनुरोध इंदूरीकर करते हैं. कला में स्पष्ट इंदूरीकर और वास्तविकता में असहाय बने हुए इंदूरीकर के ये दोनों रूप मुझे एक समान लगते हैं. निकलने के पहले मैं देखना चाहता हूं कि 'लहू' कहां है? पट्ठे बापुराव के तमाशे में नाचने वाला, पवाड़े गाने वाला विदूषक इंदूरीकर की दशा भी तो 'लहू' के ही समान है.

इंदूरीकर खिन्नता से कहते हैं—अब बहुत थक गया हूं. खाली पेट गाने से कष्ट होता है. जंगल से लकड़ियां सिर पर ढोता हूं.

★ ★

मैं इंदूरीकर को सचिवालय ले गया था, पिछले महीने. दादासाहेब रूपवते से भेंट की, वे मंत्री हैं न अपने? उनकी सहायता के लिए प्रयत्न करेंगे.

वृद्ध इंदूरीकर मुझे मिल जाते हैं. सचिवालय के दरवाजे पर, सहायता पाने के लिए खड़े पंक्ति में. यह कलाकार इस देश के अलावा आज कहीं अन्य जन्मा होता तो? या जिस जाति में जन्म लिया है, उसकी अपेक्षा सवर्ण जाति में जन्म लिया हुआ होता तो उसे यह शोकपूर्ण अंत देखना होता क्या? कला का तब सही मूल्यांकन हुआ होता, सुख-सुविधा में जीवन व्यतीत हुआ होता.

मैं खिन्नता से उनसे विदा लेता हूं. □□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

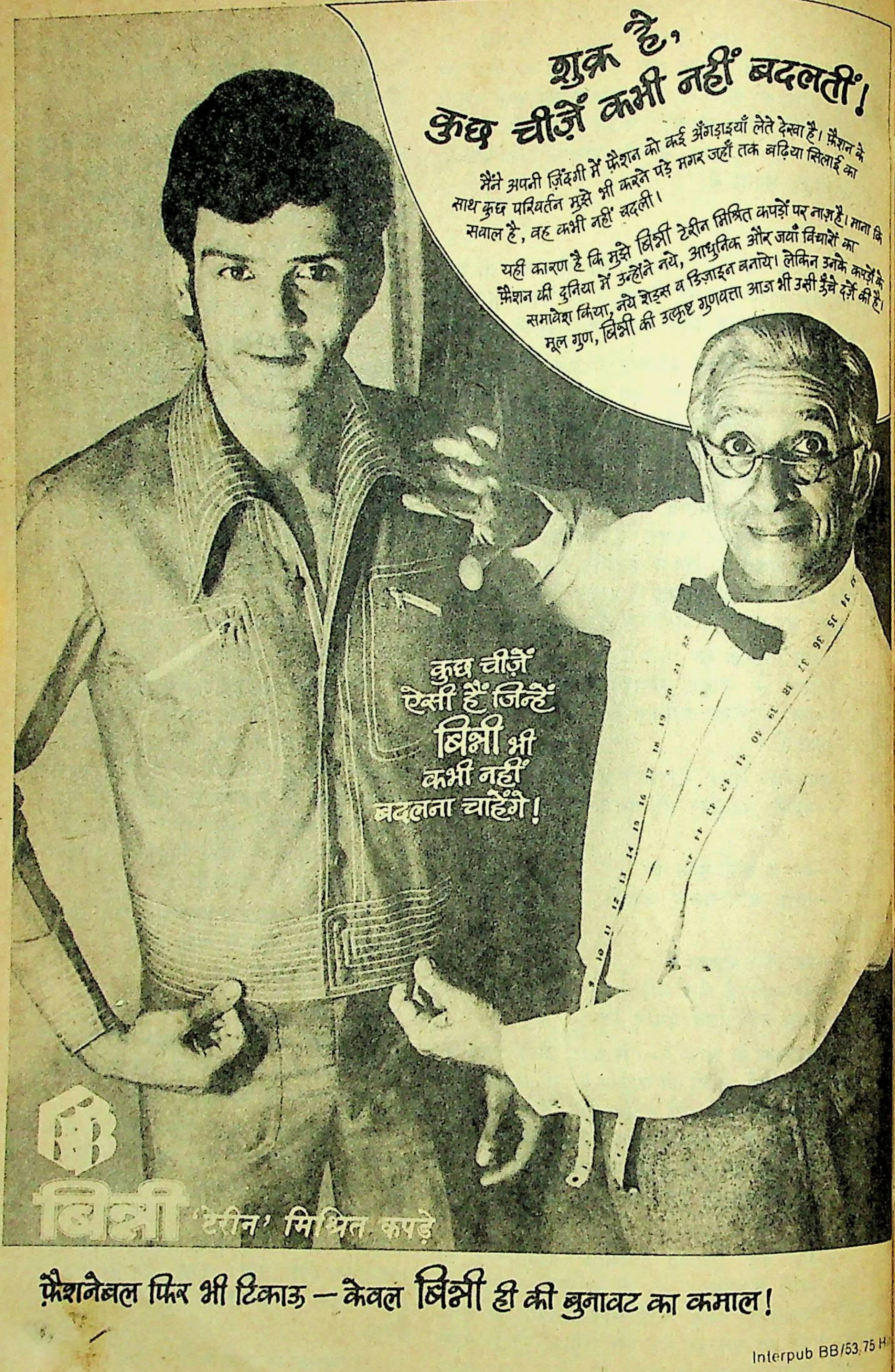

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबिरा खड़ा बजार में (१४)

● हरिशंकर परसाई

इस बार कबीर की भेंट विजया राजे सिंधिया से

कनछेदी कहने लगा—कबीरदास कितने बड़े लोगों से भेंट कर आये पर किसी स्त्री से भेंट अभी तक नहीं की. क्या स्त्री से डरते हो?

कबीर ने जवाब दिया—कनछेदी, स्त्री से डरना चाहिये. बात ये है कि—

माया महाठगनी हम जानी
निरगुन फांस लिये कर डोलै
बोलै मधुरी बानी!

पर मैं एक स्त्री इंदिरा गांधी से मिल आया हूं. लेकिन जयप्रकाश कहते हैं कि वह महाठगनी है. तुम क्या चाहते हो?

कनछेदी ने कहा—अरे कबीरदास, इस देश में एक स्त्री प्रधान मंत्री नहीं है. दो हैं.

कबीर ने पूछा— दूसरी कौन है?

तो कनछेदी बोला—दूसरी हैं ग्वालियर की विजया राजे सिंधिया जो 'राजमाता' कहलाती हैं.

कबीर ने कहा—ठीक है. मैं उनसे मिल आता हूं.

और कबीरदास ग्वालियर पहुंच गया. वहां जयविलास पैलेस में घुस गया. साधु-संतों को कोई रोकता नहीं है. राजमाता के सचिव ने पूछा कि क्या काम है, साधो? कबीर ने कहा कि कुछ नहीं, राजमाता से मिलना और उन्हें आशीर्वाद देना है.

सचिव ने पूछा— कुछ भभूत वगैरह लाये हो?

कबीर ने जवाब दिया—भभूत नहीं, भूत लाया हूं. राजमाता का भूत बताऊंगा.

सचिव मुझे राजमाता के पास ले गये. वैभव से दूर रह कर भी कबीर ने वैभव बहुत देखा इसलिए राजमहल का वैभव मुझे आतंकित नहीं कर सकता.

राजमाता की बैठक में घुसा तो उन्होंने कहा— आओ साधो! कबीरदास हो न? हम लोग साधु-संतों को बहुत दान देते हैं और उनका सम्मान करते हैं.

कबीरदास ने कहा— न मुझे मान चाहिये, न सम्मान. बात ये है कि पिछली बार जब मैं ग्वालियर आया था तो आपके चिरंजीव माधवराव के सचिव ने मुझ से कहा कि जयविलास महल चलिये, वहीं भोजन करिये. वहां बहुत अच्छा म्यूजियम है. उसे देखिये.

कबीर ने पूछा— राजमाता हैं?

सचिव ने जवाब दिया— वे नहीं हैं. विदेश गयी हैं.

तो कबीर ने कहा—तो फिर क्या म्यूजियम हुआ? जब म्यूजियम की सबसे आकर्षक मूर्ति ही नहीं है तो म्यूजियम का कोई मतलब नहीं है.

राजमाता ने मुझे गौर से देखा और कहा— तुम बड़े टेढ़े साधु हो. मैं क्या म्यूजियमपीस हूं?

कबीरदास ने कहा— और नहीं तो क्या? आप शुरू से म्यूजियमपीस रही हैं. संविद सरकार जब बनी थी तो गोविंदनारायण सिंह ने आपको म्यूजियमपीस बना कर रखा और संविद की नेत्री बना दिया.

राजमाता तनतना उठीं. बोलीं— उस लफंगे ठाकुर का नाम मत लो. वह डबल रोल करता था. इधर मुझसे संविद को मजबूत करने की बात करता था और उधर उसी संविद को उखाड़ने की कोशिश करता था. खेत पर ट्रेक्टर चलाता था और संविद पर बुल्डोजर. कहता था कि गांव जा रहा हूं लेकिन भोपाल में यहीं कहीं छिपकर दांव-पेंच करता था.

कबीर ने कहा— मगर उसने रिकार्ड का काम किया है. उसने दो मंत्रिमंडल गिराये. एक तो द्वारकाप्रसाद मिश्र का और दूसरा अपना खुद का. शाम तक टेनिस खेलता रहा. तमाम पत्रकार और राजनीति के लोग उसकी तलाश कर रहे थे, पर वह टेनिस कोर्ट पर था. शाम हुई तो उसने कहा कि अब टेनिस बंद. अब खेल शुरू होगा राजनीति का. और रात को उसने अपना ही मंत्रिमंडल भंग कर दिया.

राजमाता ने कहा—ठीक कहते हो साधो. वह ऐसा ही नाटककार है. मुझे पता ही नहीं कि मेरे पीठ के पीछे क्या कर रहा है, वह पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र को "कनपटिया बाबा" बोलता था और अब कांग्रेस में लौट कर उन्हीं मिश्रजी के साथ हो गया.

कबीर ने पूछा— आप भी तो राजनीति में हैं. क्या आप दांव-पेंच, उठा-पटक वगैरह नहीं कर सकती थीं?

राजमाता ने कहा— देखो साधो, हम तो राजारानी हैं. कोई टुटपुंजिया नहीं हैं. हम तो महल की राजनीति करते हैं और ये ठाकुर करता था सड़क की राजनीति. राजनीति करना है तो जयविलास पैलेस में आओ. मैं थोड़े ही किसी के पास जाऊंगी. मगर यह ठाकुर किसानों के साथ बैठ कर बीड़ी पीता था. कैसा घटिया मुख्य मंत्री था!

कबीर ने कहा—महल की राजनीति तो पं. द्वारका प्रसाद मिश्र भी करते हैं.

राजमाता बोली— भाई, उनमें मुझमें फर्क है. वे मंजे खिलाड़ी हैं. उन्होंने कांग्रेस के दो हिस्से करवा दिये. गोविंदनारायण ठीक कहता है कि वह कनपटिया बाबा है. बहुत कांइयां है. पता नहीं बंगले में बैठा-बैठा किस के नाश की योजना बना रहा है. हम तो राजारानी लोग हैं. हुकम दे दिया कि ऐसा करो. फिर हमारे पास पैसा है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबीर ने कहा--राजा-रानी तो खत्म हो गये.

राजमाता ने कहा--कहां खत्म हो गये! नाममात्र के लिए. पुलिस हटा ली तो हमारी अपनी पुलिस है. जो डाकू हैं ये किसकी पुलिस हैं, ये तो हमारी पुलिस हैं और हमारे महल में ही पचासों बंदूकधारी हैं.

कबीर ने कहा— और यह जो प्रिवीपर्स बंद हो गये. सो क्या हुआ?

राजमाता हंसी. बोलीं— अरे यह तो दिखावा है. उन थोड़े से रुपयों से हमारा क्या बनता-बिगड़ता है. हमारे पास अपार संपत्ति है, शेयर हैं, विदेशी बैंकों में पैसा जमा है. हम तो सरकार की बराबरी के हैं.

कबीर ने कहा— मैं जानता हूं. सरकार के पास हैलीकॉप्टर तो आपके पास हैलीकॉप्टर. मुख्य मंत्री हैलीकॉप्टर में घूम रहा है तो आप भी हैलीकॉप्टर में घूम रही हैं. सचमुच आप की बराबरी की सरकार है. पर क्या आपकी प्रजा भी है?

राजमाता ने कहा— हां प्रजा है. राजवाड़े के सारे लोग हमारी प्रजा हैं. जो मैं कह दूं, वही यह प्रजा करती है. तभी तो मैंने अटलबिहारी वाजपेयी से कहा कि चुनाव यहीं से लड़ो. हमारी प्रजा तुम्हें वोट देगी और उसे जिता दिया.

कबीर ने कहा— मैं जानता हूं. सुभद्रा जोशी उस बेचारे के पीछे पड़ी रहती थी. तो एक स्त्री से घबड़ाकर वह दूसरी स्त्री की शरण में आ गया और आपने उसका उद्धार कर दिया.

राजमाता ने कहा—– मगर वह एहसान फरामोश है. मुझे जनसंघ की अध्यक्षा बनाने के लिए उसने जोर ही नहीं दिया वरना अडवानी की जगह आज मैं होती.

कबीर ने कहा— बात ये है कि जनसंघ हिंदू संस्कृति को मानता है. एक तो आप स्त्री, फिर विधवा. आपको अध्यक्ष कैसे बनाते? आप तो जानती हैं कि जब इंदिरा गांधी प्रधान मंत्री हुई तो स्वर्गीय एम. एस. गोलवलकर ने कहा था कि एक विधवा प्रधान मंत्री हो गयी है. अब इस देश का भविष्य अंधकारमय है.

राजमाता ने कहा—साधो, तुम उन्हें एम. एस. गोलवलकर कहते हो. परम पूज्य गुरुजी क्यों नहीं कहते?

कबीर ने कहा— मैं अपना गुरु खुद चुनता हूं किसी से गुरु उधार नहीं लेता. बहुत लोगों के लिए वे उधारी के गुरु हैं.

कबीरदास ने पूछा— अब आपका राजनीतिक कार्यक्रम क्या है?

राजमाता ने कहा— मेरा कार्यक्रम है प्रधान मंत्री बनना. जब इंदिरा गांधी प्रधान मंत्री बन सकती है तो मैं क्यों नहीं बन सकती? मैं जयप्रकाश बाबू से कहूंगी कि चाहे जितना पैसा आंदोलन के लिए ले लो पर प्रधान मंत्री मुझे बनाओ.

कबीर ने कहा— आपने क्या इंदिरा गांधी से अपनी तुलना करके देखी है. दोनों में क्या समानता है?

राजमाता बोलीं—तुलना क्या करना है! जितना पैसा मेरे पास है, उतना उनके पास नहीं है.

कबीर ने कहा— मैं समझ गया. स्त्रियों में यही स्पर्धा होती है. मामूली औरतें कहती हैं— अरे तू क्या है. तेरे बक्सा में पांच साड़ियां हैं, मेरे बक्सा में आठ. मैं तेरे से बड़ी हूं. लेकिन राजमाताजी बुद्धि, कूटनीति, ज्ञान, व्यक्तित्व इनका भी तो कोई महत्व होता है.

राजमाता का जवाब था— इंदिरा का महत्व तुम्हीं बताओ. इंदिरा गांधी से क्या मैं कम सुंदर हूं?

कबीर ने कहा— साधु, नीति जानता है. किसी स्त्री के मुंह पर यह नहीं कहना चाहिये कि तू कम सुंदर है. आप इंदिरा गांधी के बराबर सुंदर हैं. फिर आपके पास पैसा अधिक है. आप बिल्कुल प्रधान मंत्री होने लायक हैं.

राजमाता खुश हुईं, कहने लगीं—यह जो जयप्रकाश बाबू का आंदोलन चल रहा है तो केंद्र में अब संविद बनेगी और लोग मेरे पा आयेंगे कि आप संविद की नेत्री हो जाइये. तो मैं संविद की नेत्री भी हो जाऊंगी और प्रधान मंत्री भी.

कबीर ने कहा— पर पिछली प्रदेशों की संविद

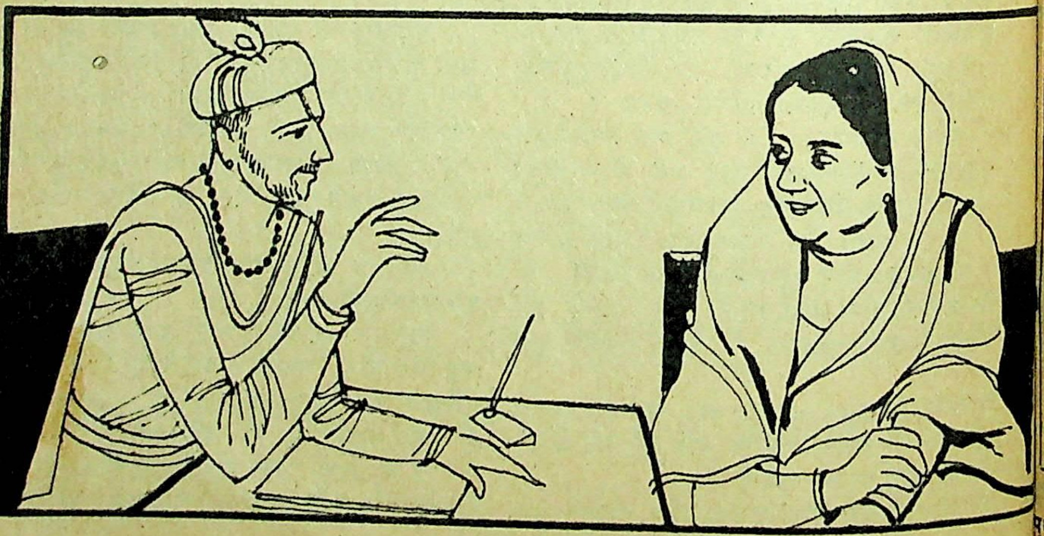

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सरकारें बहुत बदनाम हुईं और टूट गयीं. यही हाल केंद्र में हुआ तो?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजमाता ने कहा— दिल्ली में मैं ऐसा नहीं होने दूंगी जैसा भोपाल में हुआ. मैं वहां गोविंदनारायण सिंह पैदा ही नहीं होने दूंगी.

कबीर ने कहा— अगर अटलबिहारी बाजपेयी गोविंदनारायण हो गया तो? या चौधरी चरणसिंह गोविंदनारायण हो गया तो?

राजमाता ने कहा— एक तो मैं इन्हें गोविंदनारायण नहीं बनने दूंगी. फिर यदि बन भी गये और संविद टूटी तो फिर ये गौरव क्या कम है कि हमने देश पर कुछ समय राज कर लिया.

कबीर ने कहा— चिरंजीव माधवराव के बारे में क्या सोचती हैं?

राजमाता ने जवाब दिया— उसे तो मध्यप्रदेश का मुख्यमंत्री बनना ही है, यह बिल्कुल तय हो चुका है.

कबीर की बात लगभग पूरी हो चुकी थी. उन्होंने कहा— अब मैं चलूं.

राजमाता ने कहा— कुछ खाओ. क्या खाना चाहते हो? कुछ गांजा-मांजा पीते हो तो मंगा दूं?

कबीर ने कहा— राजमहलों में साधुओं से खाया नहीं जाता और जहां तक गांजे का सवाल है, वह मेरे झोले में है.

कबीर दास चल दिया. लौटा तो वही कन्छेदी मिल गया. पूछने लगा— कैसी लगी राजमाता?

कबीर ने कहा— बहुत अच्छी हैं. सब जय और विलास है. इंदिरा गांधी से अपने को बड़ा मानती हैं. बात वही है कि तेरे बक्सा में पांच साड़ी तो मेरे बक्से में आठ साड़ी.

□□□

घटनाकथाएं

समाजवादी भारत : इन्हें हक है

सवर्ण, जिन्हें अपनी मां-बहनों की इज्जत की बहुत परवाह रहा करती है. — हरिजन - आदिवासी लड़कियों के साथ बलात्कार करना अपना हक समझते हैं.

बस्तर की आदिवासी लड़कियों के बारे में प्रसिद्ध है कि वहां जाने वाले बाहरी लोग उन्हें फुसला कर उनके साथ अवैध संबंध स्थापित करते हैं जब शादी की बात आती है तो दुम दबा कर भागते हैं. कुछ सवर्णों की तो उन आदिवासी लड़कियों से जबरन शादी करवायी गयी, जो उनसे 'मजा' ले रहे थे.

सवर्ण १५ वर्ष की अपनी लड़की को बच्ची की नजर से देखते हैं लेकिन अगर वह आदिवासी—हरिजन लड़की हो तब? तब उसके साथ बलात्कार करते हैं. दिन में एक बार नहीं, कई-कई बार. धारा (म. प्र.) जिले के ठाकुर प्रेमसिंह ने दस दिन तक लगातार एक पंद्रह वर्षीय आदिवासी लड़की के साथ बलत्कार किया.

म. प्र. के ही राजगढ़ कस्बे में जलाऊ लकड़ी बेचने आयी एक लड़की को एक आदमी ने भरोसा दिलाया कि मैं तेरी सारी लकड़ियां खरीद लूंगा. लड़की उसके घर की ओर चल दी. जब वह सिर पर से लकड़ी का गट्ठर उतार चुकी तो तीन और लोगों ने उसे घेर लिया फिर चारों बलात्कार करके उसे अधमरी हालत में छोड़ गये.

□□□

समाजवादी भारत : बहुक्रम पुलिस

१९७३ के अप्रैल-मई महीने में बिहार के अनेक हिस्सों से सुईभोंकवा-लकड़सुंघवा के किस्से सामने आये थे. उस समय क्रुद्ध भीड़ सुईभोंकवा के संदेह में किसी भी व्यक्ति को मार बैठती थी.

३० अप्रैल १९७३ को इसी संदेह का शिकार हुआ, सिकंदरा थाना का एक सिपाही—तौहीद खां, जो उस समय वर्दी में नहीं था.

मुंगेर जिले में सिकंदरा के पहाड़ी अंचल में पिछड़ी जाति और गरीबों की एक छोटी-सी बस्ती है कहलौर, जिसमें सौ घर हैं. वहीं के लोगों ने अनजाने में तौहीद खां पर हाथ चला दिये थे. ग्रामीणों को जब मालूम हुआ कि वह सुईभोंकवा नहीं, सिपाही है तो उन्होंने माफी मांग ली.

मगर पुलीस को इससे संतोष नहीं हुआ.दो मई की रात को सशस्त्र पुलीस के जवानों-अफसरों ने गांव पर छापा मारा . पूरे गांव को घेर लिया. गाढ़ी निद्रा में सोये लोगों के घर के किवाड़ तोड़ दिये. वृद्धों को लाठी से मारा. नवयुवतियों के साथ वे जो कुछ कर सकते थे, किया. नगदी, खाने-पीने के सामान सहित एक दर्जन लोगों को गिरफ्तार कर लिया.

बिहार विधानसभा के एक सदस्य त्रिपुरारी सिंह के अनुसार १ मई १९७३ को उपआरक्षी अधीक्षक जमुई ने अनुमंडलीय अधिकारी की बैठक में सशस्त्र पुलीस के जवानों को स्पष्ट आदेश दिये थे कि ग्रामीणों के साथ जुल्म किये जायें और स्त्रियों के साथ बलात्कार किया जाये.

□□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मां ★ बाबूराव बागूल

उस घंटे में मास्टरजी ने 'माता' की कविता ऐसी पढ़ायी कि पिछड़े वर्ग के बच्चे घंटाभर नीचे से ऊपर उठ गये. मास्टरजी पाठ समाप्त कर बाहर गये और 'ऊपर' पहुंचे हुए बच्चे कविता के पाश से सटासट सटकने लगे, नीचे गिरने लगे. अनजाना छलावा पापी पैरों से लौट गया और बच्चे फिर से जैसे थे वैसे हो गये. पांडू को उस कविता ने जकड़ लिया था. उसकी मां उसे सचमुच 'प्यार का सागर' दिखायी देने लगी. उसकी महत्ता उसे जंच गयी. मन की कोई चट्टान पंख-सी हलकी होकर उड़ गयी और इस असह्य बोझ के नीचे दबा उसका बचपन खिल गया. खूब हंसे, खेले, शरारत करे, ऐसी कभी न सूझनेवाली बातें सूझने लगीं. कक्षा के सभी बच्चे मित्र लगने लगे. कक्षा में चल रही धींगामुश्ती देख कर वह हंसने लगा.

कभी न हंसनेवाला, कक्षा में जो घुलमिल कर नहीं रहता, वह पांडू हंस रहा है, आनंदविभोर दिखायी दे रहा है, यह देख कर आवारा लड़कों को जोश आता है. दंगा और शरारतें करने में प्रवीण लखू तो पांडू की हंसी देखकर रस्सी छुड़ाकर दौडनेवाले बछड़े जैसा करने लगा और उसकी शरारत देख कर पांडू झगड़ा-दुश्मनी भूल कर पेट में बल पड़ने तक हंसने लगा.

——लखू, वह देख. . .

दिलीपकुमार जैसी बालों की जुल्फें माथे पर रखनेवाला नामू इतना जोर-जोर से हंस रहा था कि नाक से बहनेवाला पानी होठों पर आ गया था, फिर भी उसे ध्यान नहीं था.

लखू को आगे बोलने का मौका न देते हुए नामू ने नाक पोंछ डाली और सारी कक्षा हो-हो करके हंस पड़ी और पांडू-लखू की दोस्ती देख कर पेट में कपट रखनेवाला भागा और चिढ़कर चिल्लाया—लख्या साले, तेरे बाप से बोलता हूं. . .तूने पांड्या से 'सो' कर ली है, उससे बात की है——उसके गले में हाथ डालकर खड़ा था. उसने तुझे और मुझे इस हरामी की औलाद से बोलने को मना किया है. ये कमीना है——ले कुट्टी!

——ले ली!

लखू ने झट से पांडू के गले से हाथ निकाल कर उसे दूर ढकेल दिया. बच्चों ने तालियां पीटकर कक्षा सर पर उठा ली. अपने मां-बाप को उनकी गंदी गालियां ब्याज के साथ वापस लौटानेवाला प्यारा काला किसन फट से बोला—बच्चे लोग! मेरी मां बोलती है—पांड्या की मां बडी छिनाल है, रंडी है. अब उसने मुकादम को र[...]
है! ऐसा. . .उसने लंबे-चौड़े मुकादम का आकार एंड़ि[...]
ऊंची कर बदन चेहरा, फुला कर बताया. बच्चे फि[...]
हंसे. पांडू अपनी जगह पर बैठ गया और पगले-गूंगे [...]
तरह अपनी बदनामी सुनने लगा. झगड़ालू मां-बाप [...]
लाड़ले बच्चे उसे कौओ की तरह खचाखच नोचने ल[...]
अपने घरों में चलने वाली उसकी मां की निंदा उसे सुना[...]
लगे. वह बच्चों को जवाब देने लगा. उसका यह न[...]
रूप देखकर बच्चों को उस पर गुस्सा आ रहा था—
एक-दो लड़कों ने उसे धक्के दिये. भाग्या ने अपने कावू [...]
लड़कों को सुना कर उस पर ढ़केल दिया. कक्षा [...]
दंगल शुरू हो गयी और इसी दंगल में स्कूल छूटने [...]
घंटी बजी . सभी बच्चे झटपट बस्ते-थैले लेकर क[...]
से बाहर दौड़ने लगे और भाग्या ने 'दादा' की त[...]
शर्ट का कालर उठा कर, बटन फुलाकर पांडू को [...]
दिया——कमीने बाहर आ–तेरा 'मर्डर' करता हूं[...]

और पुस्तक में रखा जंग लगा ब्लेड बाहर निका[...]
कर उसने इस अंग से उस अंग तक झट से, घुमा [...]
दिखाया और बस्ती के जगू दादा की तरह झूमते[...]
झूमते क्लास के बाहर आया. बाहर अपना इंतज[...]
करती खड़ी अपनी टोली में आकर वह गंदी-ग[...]
गालियां पांडू को और उसकी मां को देने लगा.

दुख से, क्रोध से पांडू जलने लगा——उन सभी [...]
मरते दम तक मारने का गुस्सा आने लगा. [...]
मारने की विजयी तस्वीरें उसकी आंखों के साम[...]
तैरने लगीं और उसी समय उसे याद आया कि [...]
अनाथ है. बाप के मरने से लखू का बाप दगडू पि[...]
झगड़े की तरह मां को मारेगा——उसकी धोती खींचक[...]
नंगा करने की कोशिश करेगा. उसके खून में उब[...]
वाला क्रोध हवा हो गया और उसे लगा वह विल[...]
ढीला हो गया है.

हमेशा की तरह बाहर आकर वह गाली देने[...]
को गाली नहीं देता,यह देख कर लखू-भागा की आव[...]
टोली ऊब गयी और उसे 'रांड्या', 'छक्का' कहकर चि[...]
हुए चली गयी.

★ ★

लखू-भागा को दूर गया देख कर पांडू धीरे से क[...]
के बाहर आया और बोझिल लगनेवाली किताबें सं[...]
लते हुए बस्ती में घुसा. चाली के पास लखू-भागा[...]
गोलियां खेलते देख कर उसका संभाला हुआ ढाढ़स[...]
गया . झगड़े के भय से वह घूम गया और बस्ती [...]
चक्कर लगा कर धड़कते दिल से कमरे में गया. [...]
होकर वह लखू-भागा और उनकी माताओं की [...]
देखने लगा. बहुत देर इंतजार करने पर भी [...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

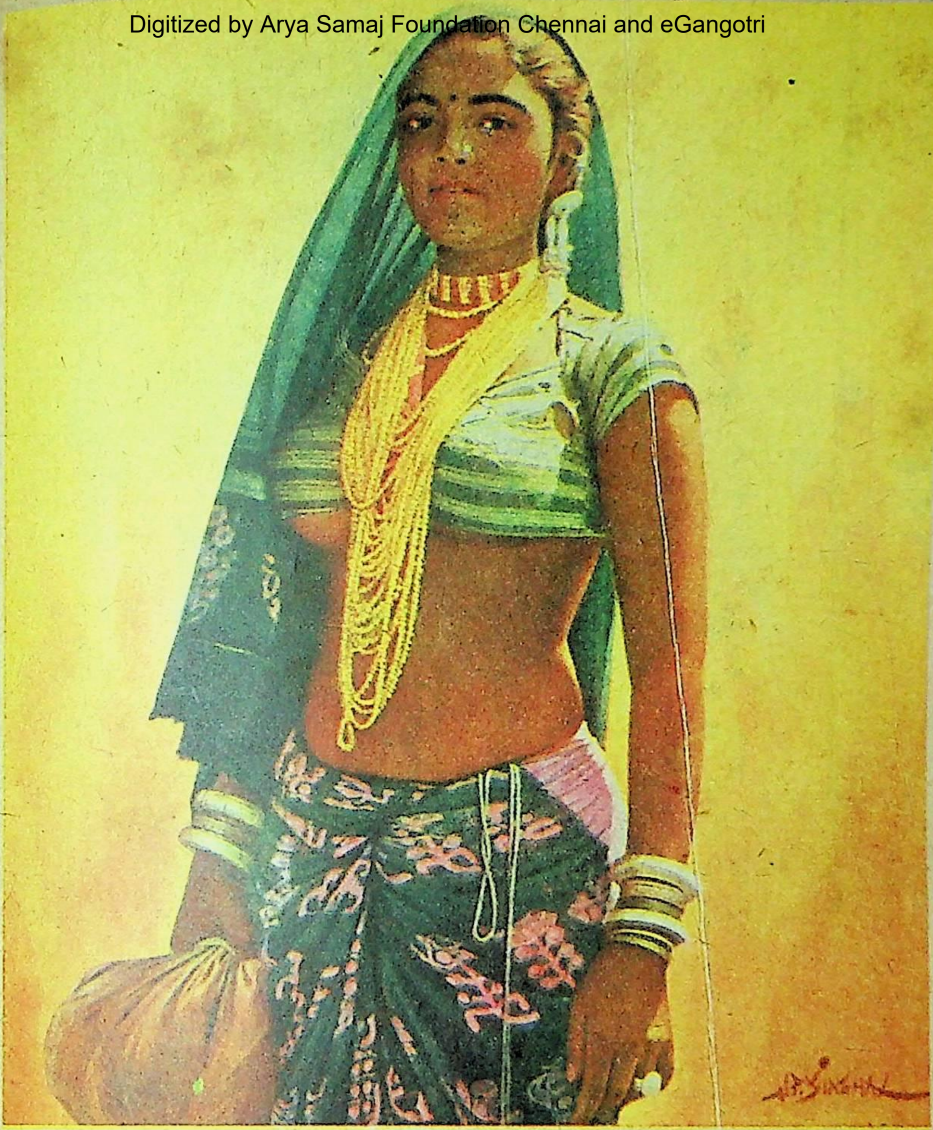

पार्ले प्रोडक्टस प्रा. लि. के सौजन्य से

आया तब कहीं उसका दिल ठिकाने लगा. भय प्त हुआ और सुबह से मैं भूखा हूं, यह उसके न में आया. चूल्हे के सामने बैठकर उसने रोटी की करी नजदीक खींची जिसमें से दो-तीन लाल काक्रोच हर आये. उसके बदन पर तिरस्कार के कांटे फूल ...वैसे ही उसने चूल्हे पर की थाली अपने सामने ची और चूल्हे की राख में रखी भगोनी थाली में डेल दी. भगोनी से मक्खियों का झुरमुट गुनगुनाता बाहर या. थाली में उग्र खट्टे बास की जूठन गिर पड़ी. घृणा उसका मन कड़ुवाहट से भर गया, हिचकियों से छाती गयी.

अपनी मां अब पहली-सी नहीं रही. कल रात को सकी इतनी प्रतीक्षा की, फिर भी वह जल्दी नहीं आयी. ..आयी और एक शब्द भी न बोलते हुए काम करने बैठ यी...अनमनी-सी रोटी-भाजी बना कर सामने डाल ी और छोटे बच्चे की तरह बिछौना कर अपने से ही सते-बोलते सो गयी. 'खाओ' नहीं कहा–'और लो' नहीं कहा. सुबह भी वैसे नहा कर, नयी साड़ी-चोली पहन कर मुंह के सामने आईना लेकर बैठी थी. आईना बार-बार मुंह की ओर घुमाती थी, मुंह पर से गाल पर से बार-बार हाथ फेरती थी. कंधे पर से पल्लू हटाकर गले में चांदी की चेन और नयी सोने की मणी की काली पोत ऊपर-नीचे कर रही थी.

आईने में देखकर चलनेवाले उसके नये-नये नखरे याद आते ही उसके पेट का जैसे गुब्बारा बन गया. उसे लगा उसने सचमुच 'मिस्तरी' को रखा है. उसका कलेजा फड़फड़ाने लगा. . .खाने से दिल भर गया. रोटी का टुकड़ा हाथ से गिरा कर वह उठ गया और बैचेनी रोकने का हमेशा का उपाय, बस्ता ले कर घर के सामने सबक याद करने लगा. पुस्तक में उसका मन नहीं लगा—–बच्चे, दूसरे लोग कैसे ताने देंगे, यही उसे दिखायी दे रहा था और लोगों की बातें टालने के लिए घर से भाग जाने को जी चाह रहा था. जमीन पर बदन झोंक कर, लोट-पोट कर जोर-जोर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब बड़ी बूढ़ी औरतें अपने ज़माने के घरेलू घी की बात करें तब उन्हें बताइये...

विजया घी

बिल्कुल घर में बने घी जैसा

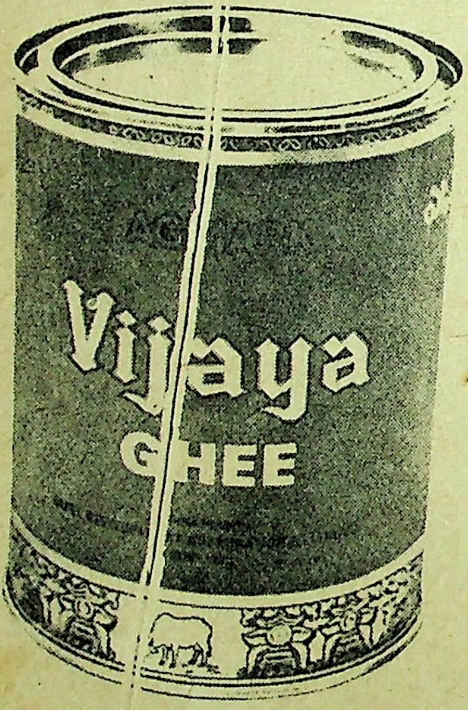

गुणों में उत्तम... कीमत में कम

हालांकि यह घर में नहीं बनता लेकिन फिर भी आपको लगता है जैसे यह आपके घर में ही बना है क्योंकि विजया घी भरपूर तत्त्वोंवाले ताज़े दूध से आधुनिक फैक्टरी में बनाया जाता है. इसमें विटामिन भी होते हैं जो अच्छी सेहत के लिए आवश्यक हैं.

पोषक तत्त्वों से भरपूर...गाढ़ा और स्वादिष्ट... बस यही है विजया घी

उत्पादक : आंध्र प्रदेश डेरी डेवलपमेन्ट कॉर्पोरेशन प्राइवेट लिमिटेड. लालापेट, हैदराबाद ५०० ०४०

विजया घी पर उत्तमता का चिन्ह 'एगमार्क' भी लगा होता है.
यह वैज्ञानिक ढंग से हानिरहित डिब्बों में बंद किया जाता है.
एकमात्र घरेलू घी – जो घर में नहीं बनाया जाता.

ANDHRA PRADESH
DAIRY DEVELOPMENT CORPORATION
PRIVATE LIMITED
(A State Government Undertaking)

kalpa/apdd/2/75

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कोजी चाहता लेकिन औरतें जमा होगीं, मां की निंदा तीइसलिए वह रोना दबा रहा था और उसके जल्द नेकी प्रार्थना भी कर रहा था. रास्ते की भीड़ वह मां को ढूंढ़ रहा था. अचानक नशे में डोलता हुआ डू उसके सामने आकर खड़ा हो गया. उसकी ओर र घृणा से थूक दिया और देखते-देखते बड़बड़ाते चलने लगा—छिनाल-रंडी! बच्चा घर में रखे के साथ दूकान-दूकान घूमती है क्या? तुझे जरूरत थी तो मुझे क्यों नहीं बुलाया?...मैं लिए आज कितने सालों से जल रहा हूं...लेकिन तुझे...

और वह बहुत गंदी गालियां देते हुए चलने लगा. के तनबदन में आग लग गयी और हमेशा की ह उसका खून करने के विचार से उसका बदन ने लगा.

लड़खड़ाते जाने वाले दगड़ू पर बड़ा सारा पत्थर लने के विचार से वह झूम गया. दगडू के सर से ने वाले खून के फौवारों से रंग गया—बदले की र क्रोध की आग से उसका शरीर कांपने लगा और डू की बड़बड़ाहट का मतलब गोली की तरह उसके जे में स्वयं से घूम गया...फिर दगडू के प्रति द्वेष-ताप, बदला उड़ गया और वहां अपनी मां के प्रति -तिरस्कार, संताप आने लगा. दुख को दांय ढकेलते एक-एक सवाल उसके सर से उठने लगा...इसलिए देरी होती है? क्या कल रात इसी वजह से देर आयी? और आज वह घर आयेगी? या पड़ोस के की तरह हमेशा के लिए भाग जायेगी? और फिर क्या होगा? मुझे कौन खिलायेगा?

अनेक सवाल उठ रहे थे और उसे रुला रहे थे. 'मां' कह कर उसने जमीन पर बदन फेंक दिया और ते-रोते पड़ोस की औरतें जमा न हों इसलिए मुंह ने लगा. लेकिन उसके रोने की आवाज सुन कर स की औरत भागते हुए बाहर आ कर चिल्लायी—चंदर की मां...अरे, उस छिनाल का लौंडा रोता ...क्या हुआ देखें तो...

—क्या...?

पास-पड़ोस की दो-चार खोलियों की औरतें बाहर यीं और उसे देख कर सहानुभूति बतलाते हुए उसकी दा करते खड़ी रहीं.

उसी समय वह भूखा होगा, ऐसा सोच कर वह ल्दी-जल्दी घर की ओर आ रही थी. सामने खड़ी मैरिनों की टोली देख कर उसका लगाव ढीला हो या. जब से समझने लगा है, तब से वह अपने शत्रुओं से मिला है, उसका यह वहम सामने सबूत देख कर और पक्का हो गया. और वह अपने उसके बाप की तरह री-दुश्मन लगने लगा...गुस्से से झट-पट पैर उठाते वह आने लगी और गुस्से से अधिक सुंदर बनी उसकी ाल से पूरी चाली की नजरें रुक गयी थीं. हथिनी जैसे और दांत वाली दगडू की जोरू, पांडू की मां का बरसों धूप में काम करने पर भी निखरा हुआ रंग, कस-... और ... देख खीझ कर पति से बोली—अजी देख क्या रहे हो...वह चिमी वहां क्या कर रही है...मारो उसकी कमर में लात...

अपने प्रति दूसरी ओर से व्यक्त किया गया संताप देख कर पांडू की मां गुस्से से जल गयी और तन कर चलने गयी.

—आ...छि...नाल...उससे झगड़ने के लिए दगडू ने झूठा छींक दिया. वह छींक सुन कर मुस्तैद मुकादम के बल पर पांडू की मां तन कर आगे बढ़ी. उसकी मस्तानी चाल पर ताना मारते हुए उसने कहा—हट तेरी...

पति के आंखों की लोलुपता देख कर उसे खुश करने के लिए दगडू की पत्नी हंस दी और उसके दबाव में रहने वाली दो-तीन स्त्रियां मुंह पर पल्लू ढांपे खि:-खि: करने लगीं.

यह सुन कर पांडू दुख भूल कर उठ बैठा. बाहर देखने लगा...मां के चाल-चलन में उत्साह, उसका तना हुआ सीना, ऊंची उठी गर्दन, बदन पर पहनी हुई नये ठीक ढंग की नौ गजी साड़ी, कभी न दिखायी देने-वाले पान से रंगे सुंदर होंठ देख कर उसने 'वह बुरी है', यह गवाही उसके शत्रुओं को मन ही मन दे डाली. और उसका पक्ष छोड़ कर वह मन ही मन विरोधी लोगों से आ मिला.

अपने पैरों से लेकर माथे तक संदेह की दृष्टि में चल रहा लड़के का निरीक्षण देख कर उसके हृदय से बचा-खुचा स्नेह, संताप की ज्वाला में जल कर राख हो गया. संदेह से शैतान बने अपने तपेदिक के मरीज पति की तरह वह तुच्छ लगने लगा. उसकी आंखों में पति की शक्की नजर दिखायी देने लगी. उन दुष्ट आंखों से उस पर किये गये अनेक शारीरिक, मानसिक अत्याचारों का उसे स्मरण होने लगा.

जैसे वह बैठा था...वैसे ही उसका बाप वह जब मिट्टी ढोकर आती, तब बैठा रहता. वह दूर से आते दिखायी देते ही संदेह की जहरीली नागिन उसकी आंखों से सरसराती. वह एकनिष्ठ है, छोटे बच्चे की मां है... पति को बचाने की वह जबरदस्त कोशिश कर रही है... इसका उसे ध्यान न होता. वह पापिन है...बिना श्रम किये शरीर बेच कर ही वह पैसा लाती है और ऐसी सुंदर पत्नी कोई खाली नहीं रखता, वह भी न रहेगी...ऐसा उसे लगता. जब वह देहलीज पर आती तब वह उसके पैर, जांघ की साड़ी, कमर, पल्लू, पेट, छाती, चोली, बाल, होंठ, गाल संदेह की नजरों से देखता. चेहरे पर जरा भी फर्क दिखने पर उसका तनबदन जल जाता और वह झल्ला कर पूछता—आज कौन यार मिला था...छिनाल...बता...बता...!!

और फिर वह उसकी कमर में पैसे ढूंढ़ता...पैसे न मिलने पर पूछता—उधारी पर है क्या?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—अरे, कुल्टा... तू मुझे धोखा देती है? मुझे कभी खाना नहीं मिलता तो चल जाती लेकिन तेरे उस पागलपन से तो मैं मर रहा हूं. रोगी हो गया हूं. . .यार तू किये बगैर इतनी ठंडी नहीं रह सकती. . . .आराम से नहीं सो सकती.

मारते समय उसके शरीर से खूब रक्त बहे, वह लूली हो जाय, विद्रूप दिखायी दे, इसी अंदाज से वह मुंह, नाक, सर और आंखों पर मारता. उसकी मार ऊपर ही ऊपर से लेने पर उसे सोते समय मार डालने की, उसका जवान शरीर कुचल डालने की धमकियां देता रहता. उसके इस पागलपन से तंग आ कर उसने कहा था—हम अपने गांव जायेंगे. . .यहां के लोग मुझे सताते हैं. . . तुम भी सताते हो. . .वहां हवापानी ठीक है. . .पैसा है. . . जेठजी पुराना झगड़ा भूल कर अच्छा कर देंगे. बच्चा भी जल्द बड़ा हो जायेगा. . .

—अपने गांव? मेरी ऐसी हालत देख कर तुझे उस भैंसे की याद आयी? अरे. . .अरे पापिन . . .मैं मर जाऊंगा. . .तुझे. . .इस बच्चे को पालूंगा. . .लेकिन उस सुअर की मदद नहीं लूंगा. .

उस भैंसे का अर्थ था, उसका बड़ा भाई. . .वह पत्नी की तरफ बुरी नजर से देखता है इसलिए उसने उस पर कुल्हाड़ी चला दी थी. तब से उनके लिए गांव छूट गया था. गांव-गांव नौकरी करते, प्रत्येक पुरुष पर संदेह करते, झगड़ा मोल लेते, मार खाते वह बम्बई आ पहुंचा और यहीं रहने लगा. उस पर से हुए झगड़ों में मार खाते-खाते वह क्षयी हो गया. . .जैसे-जैसे बीमारी से झड़ने लगा वैसे-वैसे वासना से वह पागल बनता जा रहा था. रात-दिन उसे सताने लगा. उसका भरा-पूरा यौवन आवेश मारने का प्रयत्न करने लगा.

★ ★

एक बार वह परिश्रम से थक कर गहरी नींद सो रही थी. भिलावे की गंध से उसकी नींद खुली. . देखती है कि वह चूल्हे पर भिलावे जला रहा है. उसने उसके शरीर का वस्त्र खोल दिया था. अपने शरीर की वह कैसी घृणित विडंबना करने वाला था, यह देख कर वह बिफर गयी और तब से उसे मारने के लिए उसके बिस्तर पर आ गयी. उसके न चाहने पर भी केवल उसे मारने के लिए उसका संग मांगने लगी. कुछ दिनों से उसके नंगे बदन के सामने ही हड्डियों का ढांचा रख कर वह मर गया. वह मर गया और उसे लगा जैसे मैंने ही उसे मार डाला. गांव भर में उसकी कामुकता का, दुष्टता का ढोल पीटा गया. गत दस-बारह साल से उसे बहुत यातनाएं सहन करनी पड़ीं. कितनी बार दगड़ू की पत्नी ने बहुतों को साथ ले कर उसे मारा. . .उसकी साड़ी खोल दी. कितने ही पुरुष छोटे-छोटे बहानों से उसके शरीर पर टूट पड़े.

बच्चे को शक्की नजर से देखते-देखते उसे आज वह सारे तड़पा देने वाले प्रसंग याद आने लगे और उसका मन मनुष्यों के संसार से उड़ कर भूत-प्रेतों के संसार में च[illegible] गया. . .हिंसक बनने लगा.

पत्थर से कुचल कर जिसका खून करने की बात रात-दिन सोचा करती थी, उस दगड़ू ने खखार कर कहा—थू: तेरी . . . तो. . .

—पेट के बच्चे की भी पहचान नहीं रही?
—मुकादम है बड़ा मुस्टंडा!

—होगा ही! और वह भी अब तपेदिक से मरेगा.

—क्यों री?

उस पर दगड़ू की पत्नी ने जिन शब्दों का उच्चारण किया, वह सुन कर उसका शरीर कांपने लगा. और संताप से उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया. उस समय उसके पास हंसिया-पत्थर, कुल्हाड़ी होती तो भयभीत होकर देखने वाले नीचे बैठे अशक्त लड़के का, दगड़ू की पत्नी, दगड़ू का और अपना खून कर देती लेकिन उसके सामने कुछ भी नहीं था. हाथ में हथियार नहीं था. वह आवेग से अंदर गयी और दगड़ू को उद्देश कर कड़कड़ाती हुई बोली—भड़वे. . .तेरा जनाजा उठे. तेरे मुंह में कीड़े पड़ें. . .तेरे हाथ-पैरों को महारोग हो. . मुझे सताता है? मरेगा. . .

और मुकादम का नाम आते ही वह रुक गयी. दगड़ू को छोड़ कर वह पांडू पर बरस पड़ी.

—मर ! ऐसा ही मर! तेरा बाप भी ऐसे ही खीझ कर मरा था—तू भी मर! हिजड़े मुझे ऐसा किसी ने कहा होता तो तेरा बाप खून से लाल हो जाता और तू नादान. . . जो मुझे सताते हैं. . .मार उनके पेट में छुरी. . .पकड़ उनकी मां-बहनें. किसलिए खून का पानी बना कर तुझे रज से गज बनाया? पकड़ मैं कहती हूं. . .नहीं तो जा मर. . .उठ. . .! उठ. . .!

उसका कड़कना सुन कर पांडू को विश्वास हो गया कि अब मां को अपनी जरूरत नहीं रही. जैसे बाप को मारा वैसे मुझे भी मार डालेगी. अब यहां से चल देना चाहिये. वह उठ कर खड़ा रहा और उसी समय उसे जोर से हिचकी आयी और वह हो-हो कर रोने लगा. . कमीज के अगले हिस्से से मुंह ढांप कर रोने लगा.

उसका वह रोना सुन कर उसका क्रोध उतरने लगा. उसका पीठ से चिपका पेट, दुबले-पतले हाथ-पैर, चमकने वाली पसलियां और पूरे बदन पर छायी सफेद मुर्दनी देख कर उसका क्रोध घुल गया और उसके पेट में फैलने लगा. उसकी ओर देखते हुए कलेजे को चीर कर सवाल उठा—बच्चे को भी तपेदिक है क्या? वह घबरा गयी.

—ऐ, तुझे खांसी आती है? बलगम गिरता है. . रात को बुखार आता है क्या. . .अरे कह न बाबा. . क्यों सताता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और देखते-देखते उसकी [illegible] गयीं. मन में उठे संदेह से कलेजे पर छुरी चल रही थी. धड़ाक से उठ कर चूल्हे के पास गयी, गड़बड़ी में उसने माचिस ढूंढ़कर बत्ती जलायी और भयशंकित नजर से बच्चे के शरीर पर तपेदिक के निशान देखने लगी.

—बोल बाबा. . .बोल. . .तुझे रात को बुखार होता है?

वह कुछ भी जवाब नहीं दे रहा था. रोना छोड़ घर से बाहर निकलने की बाट देख रहा था लेकिन रोना तक नहीं रहा था. और उसे तो कुशंका ने ग्रस लिया था क्योंकि गत कुछ महीनों से मुकादम से प्यार होने पर उसे उसका ध्यान ही नहीं था. यह विचार उसके मन में चल रहा था. उसी समय उसकी नजर उसके लिए लाये कपड़ों पर गयी. बड़ी हिम्मत से अपनी आवाज को माफ रखते हुए उसने कहा—बच्चे, मुझे माफ कर. यह देख तेरे लिए मलमल की कमीज लायी हूं. पुराने कपड़े निकाल कर इसे पहन ले और खाने पर बैठ. बाबा! मुझ पगली को माफ कर. . .किया ना? बोल ना. . .?

आंसुओं से भीगी उसकी आवाज से वह कुछ शांत हुआ और कपड़ों की ओर देखने लगा. उसने दो जोड़ियां खरीदी थीं. उसके लिए भी दो साड़ी, चोलियां थीं लेकिन इतने कपड़ों के देखते हुए उसे पिछली दीवाली की याद आयी.

गत दिवाली को गरम पानी से नहा कर अच्छा गोरा-गोरा होकर उसकी लायी हुई नयी पैंट-शर्ट पहन कर वह रुआब से घूम रहा था. उसके नये कपड़े और बनिये-बामन जैसे गोरे रंगरूप को देख कर मैले कपड़े वाला बदबूदार भागा ईर्ष्या से से बोला—पांडू, साले तेरी मजा है. यह बंडी कब ली? किसने ली.

—मेरी मां ने . . .

और एक विधवा के बच्चे का रोब देख कर लज्जित-सा लखू का बाप दगडू बोला—अरे, भागा उसे कौन-सी कमी है? उसकी मां की दुकान जोरों में चलती है. . . इतनी भीड़-भाड़! हरेक ग्राहक दस-पांच रुपये का!

यह सुन कर पास-पड़ोस के औरत-मर्द हो-हो कर के हंसने लगे. . .वैसे ही जले हुए पांडू को सांप की सी चपलता से डस लिया. . .अपनी मां से भी कह दे. . .वहां भी होगी भीड़. . .पटाखों की दुकान की तरह !

और उसके इस वार से दिल में कटे हुए दगडूने उसे पीटना शुरू किया. वह चिल्लाने लगा. . .पास-पड़ोस के बड़े आदमी छुड़ाने लगे और यह शोर सुन कर पांडू की मां दौड़ती आयी. बच्चे को छुड़ाने के लिए दगडू पर टूट पड़ी. वैसे ही दगडू ने उसे छोड़ कर उसे पकड़ लिया. पागल कुत्ते की तरह वह उस पर टूट पड़ा. उसे मारने लगा. उसने उसकी चोली फाड़ डाली. अपनी जांघ पर बैठे दगडू के सर पर अपने दोनों हाथ में समाने वाला पत्थर उठा कर डाल दिया. उसे छोड़ कर दगडू उसे गिरा कर मारने के लिए दौड़ने लगा. . .लोगों ने बीच-बचाव कर वह मारा-मारी छुड़ायी. उस दिन से वह

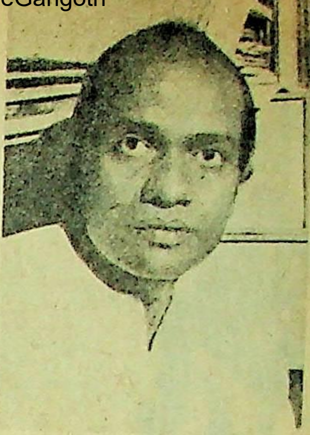

बाबूराव बागुल : उपन्यासकार, कहानीकार

शरीर पर नये कपड़े नहीं पहनता था. . .अभी की उसकी दो साड़ियां और उसके दो जोड़ी कपड़े देख कर कानों में दगडू के शब्द गूंजने लगे. . .उसे किस बात की कमी है! उसकी मां की दूकान जोरों में चल रही है!

उसकी ओर जाने वाला उसका मन फिर वापस मुड़ने लगा. . .लोग, जैसा कहते हैं वैसी ही वह उसे लगने लगी. अब यहां रहने का कोई फायदा नहीं. लोग यहां स्कूल में रोज चिढ़ायेंगे. . .मारेंगे. . .अभी भाग जाना चाहिये और इन विचारों से उसके खून में तूफान उठने लगा और वह उसे कमरे के बाहर फेंकने लगा.

—देख. . .पहन बाबा ये कपड़े और बैठ खाने पर. . . बच्चे की आंखों में चलने वाला परिवर्तन समझ कर वह उसे पास लेने के लिए उठते हुए बोली.

—डाल दे, अपनी-अपनी लाश पर...छिनाल-रांड! और संताप से किसी तरह कहते हुए वह बाहर भाग निकला.

—पांडा!

आजकल कभी न किये हुए इस बार के व्यवहार से उसके दुःख की सीमा न रही. . .भागते लड़के की ओर वह हताश दृष्टि से देखती रही.

—भोगो अपने पाप के फल! उसके मन में और भीड़ के मन में एक ही समय आवाज आयी. टूटते पेड़ की तरह वह नीचे बैठ गयी. दुःख करते हुए बाहर देखने लगी. बच्चे के विषय में विचार करते-करते रोने लगी.

★ ★

समय बीत रहा था. रात बढ़ रही थी. दगडू के भय से दरवाजा बंद करके उसे पीठ देकर वह उसकी प्रतीक्षा कर रही थी. लेकिन वह अब तक नहीं आया था. शंका-कुशंका से उसके प्राण अधमरे हो रहे थे. . .भगवान के सामने पाप की घोषणा करने की तरह वह मन ही मन बड़बड़ा रही थी—देख बच्चे, तू मुझे वेश्या कह कर गया. . .अपने बाप से भी ज्यादा दुःख दे गया. . .दुःख के लिए ही भगवान ने मुझे भेजा है क्या? तू—तेरे बाप ने और बस्ती के स्त्री-पुरुषों ने मुझे सताया. . . मैंने तेरे लिए, तेरे बाप के लिए खूब सहा. वह मुआ महंमद मिस्त्री अपने 'बीवी' बनाने के लिए अपनी मोटर मेरे नाम कर रहा था. . .बालजी सेठ हर घड़ी बीस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैरों में मोच?

आयोडेक्स

मलिए, जो पीड़ा हरे, अच्छा करे

दूसरे बाम पीड़ा से आराम भले पहुंचाएं, आयोडेक्स आराम पहुंचाने के साथ साथ अच्छा भी करती है. क्योंकि इसमें आयोडीन मिली है.

जोड़ों और मांसपेशियों की पीड़ा के लिए एकमात्र बाम—आयोडेक्स.

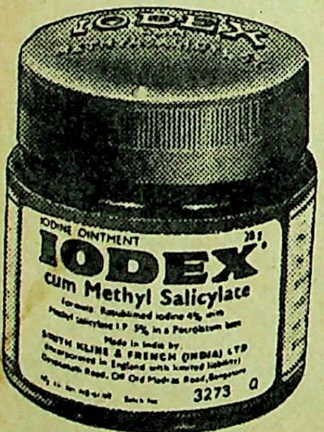

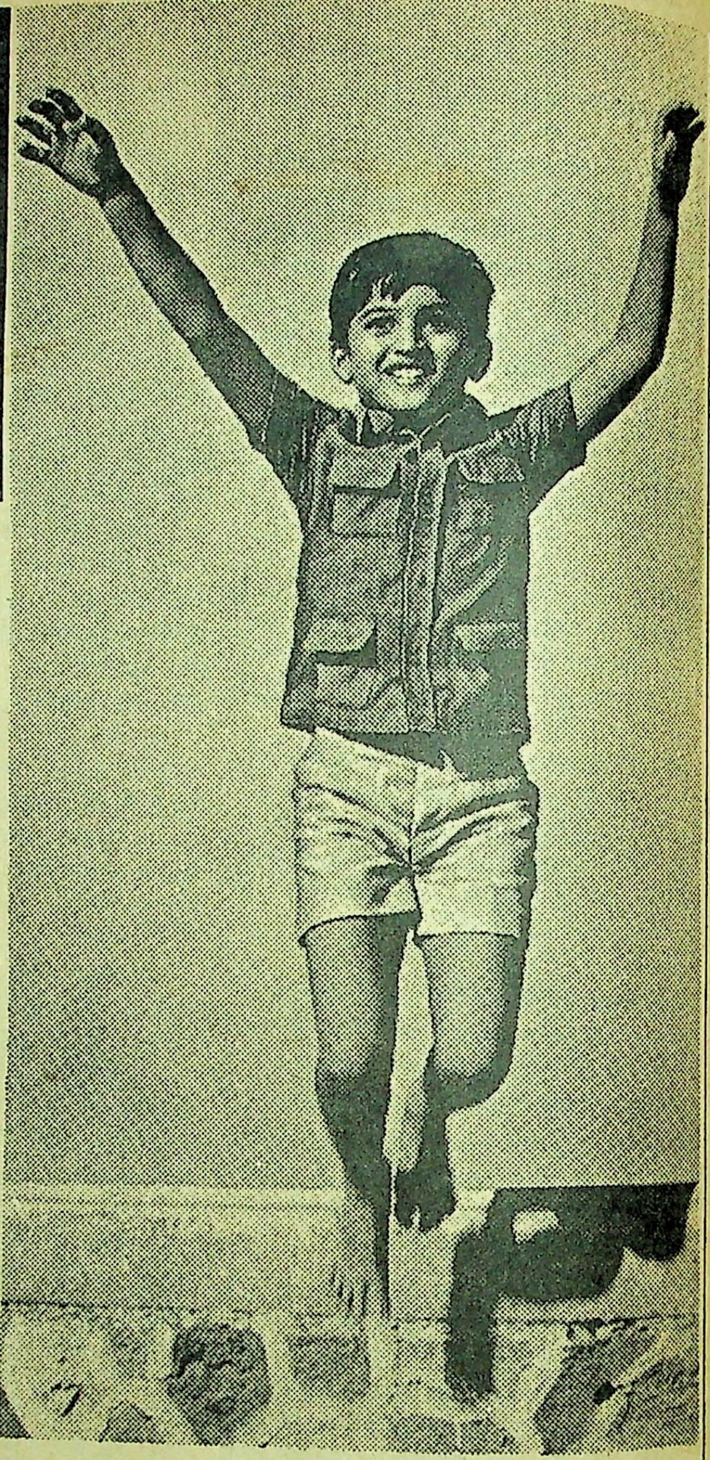

आयोडेक्स मलिए-अपने काम पर चलिए

लिंटास-IODEX.3-140 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुपये ठकू मामी के हाथ भेजता था. यह दगड़ू सारा सर्विस फंड मेरे नाम पर करने के लिए तैयार था लेकिन मैंने तुझे संभालने के लिए दिल जलाया. . .लेकिन तू. . .तुझे समझ आयी तबसे चुप रहने लगा. . .दूर जाने लगा. . . मेरी निंदा सच मानने लगा. पिछली दीवाली पर दगड़ू ने मेरी इज्जत पर हमला किया. . .तू मुझे मां मानता तो मैं यह दूसरा घर नहीं करती. मुझे तेरा सहारा होता. . . लेकिन तू भी मुझे छोड़ गया.

वह रोने लगी. झोपड़ा उसे श्मशान-सा सूना लगने लगा. अचानक उसे एकाएकी अकेलापन महसूस होने लगा और दगड़ू का डर लगने लगा. वैसे ही वह उठी और उसने दरवाजे की कुंडी लगायी और उसी समय उसे लगा जैसे दरवाजे की कुंडी लगा कर लड़के को हमेशा-हमेशा के लिए उसने उसी समय दूर कर दिया हो. वह अब आयेगा तो भी अंदर नहीं आयेगा. वह बेचैन हो गयी. कभी कुंडी निकालने उठती और दगड़ू डर से फिर नीचे बैठ जाती. और उसी समय वह जहां से भागा वहां से कुत्तों का भौंकना सुनायी दिया. वही वापस आ गया हो इस आभास से वह झट से खड़ी हुई और कुंडी निकाल कर उसने कहा—आ जा बेटे, मुझ पापिन को माफी कर दे.

कुछ देर से दरवाजा ढकेला गया.

—आ बच्चे ! उसने आगे हो कर कहा.

भरीपुरी जांघों का ऊंचा-भारी भरकम मुकादम दरवाजे पर खड़ा था. उसकी जबान तालू से सट गयी. अपेक्षा-भंग से वह बिखर गयी.

—क्या हुआ? इतनी क्यों घबराती हो ? पसीना क्यों आ रहा है? उसे अपने आलिंगन में लेते हुए उसने कहा. उसके माथे का पसीना पोंछने के बहाने से वह उसके गाल, गर्दन, छाती, पीठ सहलाने लगा.

गत आठ-दस साल से अतृप्त उसके आकुल शरीर में वासना की वीणा धीरे-धीरे गूंजने लगी. वह उससे प्रेमभावना से चिपकने लगी.

बच्चे की पुकार और दरवाजे की दस्तक उसके कानों पर नहीं आयी. और मां रो-रो कर सो गयी होगी इसलिए जोर से आक्रोश कर पांडू ने दरवाजा ढकेल दिया. लेकिन उसे बाहुपाश में ले कर खड़े मुकादम को देख कर उसका दुःख से उदास मन फट से टूट गया. और अपने-अपने दरवाजों की आड़ में खड़े पड़ोसियों की याद आते ही लज्जा से उसका कलेजा धड़धड़ाने लगा और वह फिर भाग खड़ा हुआ. और मुकादम की बांहों से छूट कर वह उसके पीछे दौड़ी. . . .लेकिन वह दूर चला गया था. . . मुकादम क्रूरता से उसे पीछे खींच रहा था. पांडू बाहर जी-जान से दौड़ रहा था. बस्ती के कुत्ते उसके पीछे दौड़ रहे थे. . .और पीछे लगा कुत्तों का झुंड देख कर वह घबड़ा कर आक्रोश कर रहा था.

हर झोपड़ी से लोग बाहर आ रहे थे. वह मुकादम के आलिंगन से छूटने की कोशिश कर रही थी, लेकिन कीचड़ में धंसे आदमी की तरह उसका छुटकारा नहीं हो रहा था. . . ☐☐☐

(अनुवाद : रतनलाल सोनग्रा)

इस अंक के सज्जाकार

अप्रैल ७५ और मई ७५ अंकों की सज्जा प्रख्यात चित्रकार जे. पी. सिंघल के चित्रों की पारदर्शियों से की गयी है. सिंघल ने ये चित्र डांग, बस्तर, सौराष्ट्र, आंध्र, आसाम, गुजरात, राजस्थान, बिहार, त्रिपुरा, मैसूर और महाराष्ट्र के आदिवासी क्षेत्रों में जा कर बनाये थे. इन चित्रों द्वारा आदिवासी कबीलों की जिंदगी का सही परिचय मिलता है. यहां हम इन चित्रों के संदर्भ में सिंघल के वक्तव्य का एक अंश दे रहे हैं—

'एक ही तरह का कार्य करते-करते अपने आपको कुछ अधिक ही व्यावसायिक-सा पाने लगा था. इसी दौरान मुझे नासिक की ओर जाने का अवसर मिला. बरसात के दिन थे. रास्ते में दो आदिवासी बच्चियां बरसात के पानी में नहाने का आनंद ले रही थीं. मन बरबस ही उनकी ओर खिंच गया. जीवन के उल्लास से भरे ये निर्दोष चेहरे मुझे अपना चित्र बनाने के लिए खींच ले गये. और इस तरह मेरा पहला आदिवासियों के जीवन का चित्र बन गया. सोचा था कि इसे न मैं बेचूंगा और न यह बिक ही पायेगा. क्योंकि न तो इसमें रंगों की तेजी थी और उनके चेहरों पर कृत्रिम रेखाओं की चमक. ग्लैमर से दूर इस चित्र को कौन लेना चाहेगा? लेकिन मेरे मन को उस चित्र से बहुत संतोष मिला था.

उन्हीं दिनों में अडवानी आर्लीकॉन के मैनेजिंग डायरेक्टर श्री आई. टी. मीरचंदानी के संपर्क में आया. उन्होंने मेरे सभी चित्रों में से एक कोने में पड़े उसी चित्र को पसंद किया. और साथ ही आदिवासियों के जीवन पर और भी चित्र बनाने के लिए कहा, जो उनकी कंपनी के कलैंडर पर प्रकाशित हुए.

उनसे मुझे बहुत प्रोत्साहन मिला और मेरे आदिवासियों के चित्रों का सिलसिला शुरू हो गया.

मेरे ये चित्र मनुष्य की प्राकृतिक स्वतंत्रता के प्रतीक अपने इन आदिवासी भाई-बहनों को समर्पित हैं. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्जुन डांगळे ★ गारदी

उसके भारी-भरकम पंजों के दबाव से अध-पिघला डामर धंस जाता था. रोष से भरा वह तेज कदमों से बढ़ता चला जा रहा था. दोपहर की धूप में तेजी आ गयी थी. उसे इसका कोई भान न था. वह तो बस बढ़ता चला जा रहा था. आगे, और आगे. रोज की आदत के अनुसार उसने रास्ता पार किया. स्कूल को पीछे छोड़ वह गली में मुड़ गया और बगीचे के साथ-साथ चलने लगा.

—क्या बेटा. कुछ हुआ काम का बंदोबस्त? केले बेचनेवाले चाचा की खरखरी आवाज उसके कानों में पड़ी.

उसने ऊपर देखा और नकार में सिर हिला दिया.

—केला तो खा के जाओ, चाचा की आवाज फिर आयी.

—नहीं चाचा. उसके मुंह से अस्पष्ट-से दो शब्द निकल गये.

—कोशिश करते रहना.कभी न कभी. . .पर वह बहुत दूर निकल चुका था. चाचा उसकी तरफ देखता रहा. रोज दोपहर को वह इस बगीचे में आकर आराम करता था. इलाके के सारे भगोड़े वहां जमा होते थे. उनमें कोढ़ी होते थे. भिखारी होते थे. बेकार भटकने वाले छोकरे होते थे. घर में सोने के लिए जगह न होने के कारण सोने के लिए आये आखिरी पाली के कामगार होते थे. चाचा से उसकी अच्छी पहचान हो गयी थी. वह हिसाब-किताब में चाचा की मदद करता था. चाचा उसे नौकरी खोजने के लिए गाड़ी भाड़ा देता था. कभी खाने को केले और कभी चायपानी भी दे देता था. उसे यह सब लेते समय न जाने कैसा-कैसा लगता था. पर और रास्ता ही क्या था? ये सारे दृश्य उसकी नजरों के आगे घूम रहे थे. वह बढ़ता जा रहा था. उसकी चाल नजदीक आ गयी. वह अंदर घुस गया.

—साले फिगर लाकर यहां लगा दिया कर, जिंदगी सुधर जाएगी. रोज-रोज की यह दौड़भाग बंद हो जाएगी, राणे दादा के अड्डे पर काम करने वाले नारायण की आवाज उसके कानों में पड़ी.

उसने उसकी तरफ देखा. वह जोरों से हंस पड़ा.

वह घर में घुसा . बहन नल पर पानी लेने गयी थी. तीन वर्ष की उसकी सुनंदा नितंग नंगी सो रही थी. मक्खियां जहां न बैठना चाहिए, वहां भी बैठ रहीं थी. कोने के ड्रम पर पड़े बेरंग तौलिये को उठा कर उसने सुनंदा के ऊपर डाल दिया. कमीज उतार डाली. अपनी गंदी हुई बनियान की तरफ ऐसी नजरों से देखा जैसे किसी मुरदे को देख रहा हो. पैंट के बटन खोल डाले, फिर उतारने के लिए उसे नीचे खिसकाकर अचानक ऊपर खींच लिया. बटन लगा लिये. गांव में उसके साथ

पढ़नेवाली शुभा कल रात उसके स्वप्न में आयी थी. सुबह उठते ही उसे घाडगे से मिलना था. वह उसका रिश्तेदार था. किसी यूनियन में काम करता था. उससे ही मिलने गया था. शायद काम पट जाता. अब उसे नहाने की इच्छा हो रही थी. पर नल पर औरतें ही औरतें जमा थीं. वह गैलरी में पांव पसार कर बैठ गया. इतने में कोने की खोली वाली गंगाबाई की नॉनमैट्रिक चंपा कमर पर पतीली रखे आयी. वह उठ गया. बीच दरवाजे पर खड़ा हो गया. इधर-उधर झांका, अपनी ओर किसी को देखता न पाकर उसने पतीली में से एक मुट्ठी पानी लेकर उस पर छिड़क दिया. उसे अच्छा लगा. वह वैसे ही खड़ा रहा. इतने में गणेश स्कूल से आ गया.

—मां कहां गयी, मामा? उसने पूछा.

—नल पर.

उसने बस्ता घर में फेंक दिया. नीचे जाकर बच्चों में खो गया.

बहन धुले कपड़ों से भरी बाल्टी लेकर नल से आयी.

—क्या हुआ, गया था न? उसने पूछा

—गया था, वह मिला नहीं.

—क्यों?

—बाहर चला गया है.

—लौट आए तब फिर जाना.

—क्या होगा जाकर, बेकार .

—क्या मतलब?

—वह घर में ही था. अंदर के कमरे में सो रहा था. औरत से झूठ बोलने को कह दिया था.

—जाने दो. मरे का मुंह फिर मत देखना. इतनी देर कहां लगायी?

—कहीं नहीं, पैदल आया.

—इतनी दूर से! बस से क्यों नहीं आया. पैसे तो थे.

—थे, पर. . .

—खाना खायेगा न?

—हां.

—ठहर, मैं कपड़े सूखने डाल दूं.

उसने अनमने ढंग से खाना खाया. गटागट पानी पिया. नल पर औरतों की भीड़ वैसी ही बनी थी.

उसने कमीज शरीर में डाल ली. चप्पलें पहन लीं और बगीचे की तरफ चल दिया. थक गया था. फिर भी वहां पहुंचा. चाचा वहां नहीं था. फिर उसे ख्याल आया. उस दिन ... पर चाचा की ... उम्मा. वह मन ही मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

. तारीख और वार उसके ध्यान में ही नहीं रह . वह वहीं लेट गया. एक अस्तव्यस्त पड़ी भिखारिन देखता रहा. अंधेरा झुक आया, तब तक वहीं पड़ा

—क्या उधर जाकर अभी लौटा है? बहनोई ने पूछा.

—नहीं. दोपहर को ही आ गया था. घर में था, मिला नहीं.

—मैं जानता था. वह ऐसा ही करता है. . . .का को पैसे चाहिए. जाने दे. कल देखना. . .

—फिर से जाऊं?

—नहीं, कल मैं तुझे एक दूसरे आदमी के पास ले गा. तू उसके साथ जाना. सुना है किसी दवा की नी में लोग लिये जा रहे हैं!

दूसरे दिन दोनों सुबह जल्दी उठे. उस आदमी के पास जाकर बहनोई को काम पर जाना था. कुर्ला स्टेशन पर उतर कर वे पता ढूंढ़ने लगे. जिस रास्ते का नाम दिया गया था, वे उसी पर खड़े थे. सामने के पानवाले से उन्होंने 'गंगा निवास' का पता पूछा.

—पेड़णेकर सेठ चाहिए क्या? पानवाले ने पान पर चूना कत्था लगाते हुए पूछा.

—हां. . .बहनोई ने कहा.

—सीधा जाना. दाहिने हाथ की गली में किसी को भी पूछना, पानवाले ने दूसरे पान पर चूना-कत्था लगाते हुए कहा. दोनों आगे बढ़ गये.

वे दरवाजे पर जा खड़े हुए. पंद्रह-सोलह वर्ष का एक लड़का फिट पैंट पहने स्टूल पर बैठा था. सिर हिला

अडवानी आर्लीकान के सौजन्य से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानीकार अर्जुन डांगळे : कवि

कर इशारे से ही उसने उन्हें अंदर बुलाया. अंदर घुसते ही एक तेज गंध उनकी नाक में घुसी. वे कोच पर बैठ गये. दोनों ओर दो-दो कोच पड़े थे. हर कोच के सामने एक-एक तिपाई पड़ी थी. दीवार पर शिवाजी महाराज का एक भव्य चित्र टंगा था. उसी के पास शिवाजी पार्क की मूर्ति को हार पहनाते हुए लिया गया किसी समारोह को चित्र टंगा था.

——कितनी दूं, लड़के ने आ कर पूछा.

——हम पीने नहीं आए. पेडणेकर सेठ से मिलना है. बहनोई ने कहा.

——क्या काम है? मंदिर के लिये चंदा चाहिए? लड़के ने पूछा.

——नहीं. कदम साहेब ने चिट्ठी दी है.

——अच्छा, अच्छा, नौकरी के लिए सारी गैंग ग्यारह बजे इकट्ठी होगी. सेठ भी तभी आयेंगे.

बहनोई ने उसकी तरफ देखा और कहा—देख मैं तो जाता हूं. तू यहीं बैठ. इच्छा हो तो यहां-वहां घूम आना. मुझे देर हो रही है. मैं जाता हूं.

बहनोई निकल गये. वह सुन्न हो गया था. उसे वहां बैठने में कोई तुक नहीं दिखी. लड़के ने उसकी तरफ सिगरेट बढ़ाई, उसने मना कर दिया. सिगरेट की आदत नहीं है यह अच्छा है. लड़का धुंआ उड़ाने लगा. तब तक दो-चार ग्राहक आ गये. उससे वहां बैठा नहीं जा रहा था. उठ खड़ा हुआ. जरा घूम कर आता हूं. लड़के से कह कर वह बाहर निकल गया.

साढ़े दस बजे के करीब वह वापस लौटा. पच्चीस के आसपास की उम्र के तीस-पैंतीस तरुण वहां जमा थे. 'शिवाजी महाराज की जय, जो हमसे टकरायेगा, वो मिट्टी में. . .' आदि नारे वे लगातार लगा रहे थे. गैलरियों में से लोग झांक रहे थे. पास ही एक तरफ दो ट्रक खड़े थे. मंदिरों पर जैसे झंडे फहराए जाते हैं, वैसे झंडे उन पर फहरा रहे थे. टैक्सी वाले उन्हें देख कर टैक्सी पिछली गली में मोड़ ले जाते थे. वह यह सब देखता रहा. उसे कुछ भी सूझ नहीं रहा था.

उसने पास ही खड़े एक व्यक्ति से पूछा——कहां जाना है?

——चेंबूर.

——क्यों?

——अरे, तुझे पता नहीं क्या? लाल झंडे वालों ने हड़ताल कर दी है. नये लोग भरती हो रहे हैं. पेडणेकर सेठ ने लोगों की पूर्ति का जिम्मा लिया है.

उसका हृदय फट गया. दूसरे ही क्षण वह अंदर ही अंदर भड़क उठा. लाचार मन उस अग्नि में जल गया.

——छि: यह संभव नहीं. वह बड़बड़ाया.

वह भीड़ में से निकल कर भागा. स्टेशन की ओर जाने लगा. सुबह वाला लड़का सामने खड़ा था.

——क्यों, कहां चल दिये? सेठ की ट्रक से जाना है न अभी. उसने पूछा.

——घर जा रहा हूं.

——क्यों?

——भूखा मर जाऊंगा पर यह धोखेबाजी नहीं करूंगा. मजदूर पेट के लिए हड़ताल करते हैं और हम जा कर यह सब करें.

——कमाल है!

——कमाल की क्या बात है? मुझे काम मिल जायेगा, तुझे मिल जायेगा. पर उन बेचारों की नौकरी चली जायेगी. उनके भी बाल-बच्चे होंगे. वे बेचारे भूखे मरेंगे.

लड़का खी-खी हंसने लगा. वह और भी भड़क उठा. उसकी मुद्रा गंभीर हो गयी. वह अंदर ही अंदर जल रहा था. नारे लग रहे थे. वह लड़का उसकी ओर देख कर बोला——आपको इतनी भी समझ नहीं. अरे जो खाने को दे, उसकी तो अपन गांड भी पोंछ दें.

वह स्टेशन की तरफ चल दिया. लड़का दूसरे तरुणों से कुछ फुसफुसाने लगा. वह गली पार कर के रास्ते पर आया. दो लोग उसके पीछे लग गये.

फाट्, फाट् उसे मार पड़ने लगी. खींचते-खींचते वे उसे भीड़ तक वापस ले आये.

——क्या हुआ? भीड़ ने पूछा.

——साला लाल झंडे वाला है. एक ने उत्तर दिया. और फिर वहां खड़ा प्रत्येक व्यक्ति उसकी ओर बढ़ने लगा.

वह बेहोश हो गया. उस भीड़ ने उसके जागृत मन की बलि ले ली.

पेडणेकर सेठ आया.

——शिवाजी महाराज की जय. ट्रक चेंबूर की तरफ दौड़ने लगा.

वह वहीं पड़ा था.

गैलरियां खाली हो गयी थीं. दूकानें खुल गयी थीं. किसी ने उस पर पानी छिड़का.

और . . .

बड़ी देर से दूर खड़ी हुई पुलिस की काली गाड़ी उधर आयी. काली वरदी वाली पुलिस उसमें से उतरने लगी.

□□□

(अनुवाद : महेंद्र [illegible])

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सवर्णों का देश

यह कहानी जामनगर, गुजरात से ६० किलोमीटर दूर एक गांव की है. एक ग्यारह वर्षीय हरिजन बालक को जान से मार डाला गया. इस धर्म निरपेक्ष देश में उसने सवर्णों के मंदिर में अनजाने ही घुसने का महापाप किया था.

तीन हरिजन बच्चे मंदिर के पास खेल रहे थे. खेलते-खेलते एक बच्चा मंदिर में जा पहुंचा, तो पुजारी ने बेंत से मारते-मारते उसे बेहोश कर दिया. बाद में अस्पताल में उसकी मृत्यु हो गयी. □

इज्जत का क्या करोगे ?

यह घटना है पिछले वर्ष सितंबर की. अकोला जिले के ढाकली ग्राम के दो भाइयों गोपाल गवई और बाबरू वाहन गवई —की सवर्णों ने आंखें निकाल लीं. सवर्णों की नजर में इनका कुसूर यह था कि ये अपनी इज्जत मांग रहे थे.

गोपाल गवई की लड़की को गांव के पटेल के लड़के ने अपने प्रेम पाश में फांस लिया था. मामला चूंकि बहुत आगे बढ़ चुका था इसलिए गोपाल ने लड़के के पिता से कहा कि वह इन दोनों की शादी कर दे.

पटेल को यह नामंजूर था. उसने धमकी दी कि आगे से ऐसी बात जुबान से निकाली तो जुबान खींच लूंगा.

उसने जुबान नहीं खींची. आंखें निकाल लीं. २७ सितंबर को गोपाल अपनी झोपड़ी में था. बाहर से कुछ लोगों की आवाज आयी. ये लोग गोपाल को बाहर बुला रहे थे. गोपाल बाहर आया. बाहर आते ही उसे बेंतों से मार कर बेहाल कर दिया गया. फिर एक आदमी छाती पर चढ़ बैठा और उसने नुकीली बेंत से उसकी आंखें निकाल लीं. उसके भाई बाबरूवाहन का हाल भी यही किया गया. जब उसकी पत्नी उसे बचाने आयी तो उसे भी पीटा गया.

इसके बाद गांव वालों को धमकी दी गयी कि अगर इस बारे में कोई बोला, तो उसकी भी आंखें निकाल ली जायेंगी.

वाकई उनकी बात का असर हुआ. घटना के दो महीने बाद अपराधी पकड़े जा सके.

यह मामला सामने न आया होता यदि दलित पैंथर के राजा ढाले ने इसमें गहरी दिलचस्पी न ली होती. □

बेगार

पाठकों को शायद भरोसा न हो कि हरिजन इस जमाने में भी १२ से २५ पैसे प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी पाते हैं.

उत्तर प्रदेश के जयसिंहपुर क्षेत्र में चाहटोना गांव में हरिजनों के १४ झोंपड़ों में इसीलिए आग लगा दी गयी कि उन्होंने दो-चार आने रोज पर मजदूरी करने से इंकार कर दिया था.

कड्डापाह जिले से ६ किलोमीटर दूर मभापल्ली गांव में भी हरिजनों के करीब सौ झोंपड़े जला कर ६०० लोगों के घरबार इसलिए उजाड़ दिये गये कि उन्होंने नाममात्र की मजदूरी पर सवर्णों की गुलामी करना नामंजूर कर दिया था. जहां परंपरागत रूप से सवर्ण वर्ष में सौ रुपये का ऋण दे कर गुलामों की तरह काम करवाते थे. खेत मजदूर साल भर अपना खून-पसीना बहा कर इस ऋण को चुकाते.

इस गांव के हरिजनों ने मना कर दिया तो सवर्ण पास के गांव से अधिक मजदूरी पर मजदूर ले आये. मगर गांव के मजदूरों को वे इतनी मजदूरी देने को तैयार नहीं थे. स्थानीय मजदूरों ने इन्हें समझाया कि वे अपने ही वर्ग के खिलाफ की जा रही इस धोखेबाजी में शामिल न हों. वे शामिल नहीं हुए. इसका बदला सवर्णों ने हरिजनों के झोंपड़े जला कर लिया जिनमें उनकी एक लाख रुपये की संपत्ति नष्ट हो गयी. तीस लोग गंभीर रूप से घायल हुए और एक गर्भवती महिला को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा.

इसी तरह वाराणसी के बेहरा गांव में हरिजनों की बस्ती जला दी गयी. एक आदमी की जान गयी. छह लोगों को गंभीर चोटें आयीं. इनका भी अपराध यही था कि ये तीन रुपये महीने और रोज १.६ किलोग्राम अनाज पर बेगार करने को तैयार नहीं थे. □

हरिजनों का एक घर

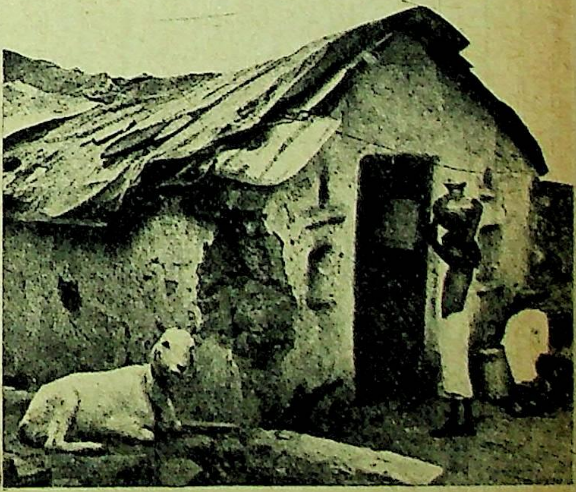

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विटाळ ★ दया पवार

पिछले साल की दीवाली की बात. घर-घर में मिठाइयां बनी हैं. बच्चों के लिए बीवी ने पकवान बनाये हैं. मैं अभी-अभी खा चुका हूं. जीभ पर मिठास और तन में सुस्ती महसूस कर रहा हूं. लेटे-लेटे दीवाली विशेषांक के पन्नों पर नजर दौड़ा रहा हूं. बाहर पटाखे फूट रहे हैं और मैं 'दलित साहित्य' के संबंध में मराठी के मशहूर लेखक श्री जयवंत दलवी का लिखा लेख पढ़ने लगा हूं.

चार-पांच साल पहले इस विषय को परे हटाया जाता था. ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मरा हुआ चूहा एक तरफ फेंक दिया जाता है. आजकल लगता है, इसके भाग खुल गये हैं. मुझे संतोष है. साहित्यिक कला-मूल्य की चर्चा चलाते-चलाते दलवी अब सामाजिक समस्याओं की बातें करने लग जाते हैं. उनका दावा है कि 'सफेदपोश सवर्ण लेखक भी अपनी कल्पना एवं प्रतिभा के बल पर दलितों की अनुभूतियों का सशक्त चित्र उतार सकता है.' वह कहते हैं--'बंबई जैसे शहर में, जहां मैं रहता हूं, उसी बिल्डिंग में पवार भी रहते हैं. ऐसी हालत में हम दोनों की अनुभूति का स्तर एक ही रहता है. हम दोनों एक ही स्तर पर जी रहे हैं.' बस. यहीं मैं अड़ जाता हूं.

कहां का "एक ही स्तर"? कहां का . . .

—उठाओ यह थाली, चलो उठाओ. भिखारी समझ रखा है हमें? बीवी के कठोर वचन अचानक सुनायी देते हैं और मेरे विचारों की कड़ी टूट जाती है. मैं अंदर झांकता हूं. देखता क्या हूं, बीवी मारे गुस्से के कांप रही है और सामने खड़ी हैं हमारी पड़ोसिन श्रीमती देशमुख. सोने के कंगन से दमकते हाथों में थामा हुआ मिठाइयों का थाल.

हुआ क्या? आखिर यह डांट-डपट किसलिए? मैं स्थिति को समझने की कोशिश करता हूं. बीवी की आंखों से आंसू झरने लगते हैं और रोते-रोते वह मुझे पूरा वाकया बता देती है.

इस कॉस्मोपॉलिटन बस्ती में आये हमें अब दो महीने हो चुके हैं. हाउसिंग बोर्ड की मेहरबानी. गत दस-पंद्रह साल हम बंबई में सब-टेनेंट के रूप में कभी यहां, कभी वहां घूमते रहे हैं. यहां आने से पहले मोतीलाल नगर में रहते थे, जो 'गोरेगांव का महारवाड़ा' नाम से मशहूर है. बीवी अब खुश है कि बच्चे यहां गालियां नहीं सीखेंगे. एक तरफ गुजराती पड़ोसी, दूसरी तरफ मराठा, ख्रिस्ती, धोबी, ब्राह्मण. . .भारत की सारी जातियों का एक छोटा-सा प्रतिरूप. हमारे घर की दीवार पर टंग रही डा. बाबासाहेब आंबेडकर की तस्वीर हमारी जात का ढिंढोरा पीट रही है. सारे मध्यवर्गीय लोग, आर्थिक स्थिति सबकी लगभग एक जैसी. सोचा नहीं था कि यहां भी हमारा परस कयामत ढा देगा.

सबेरे से एक-दूसरे के घर मिठाइयों से सजे थाल भेजे जा रहे हैं. मेरी बीवी भी देशमुख के यहां थाल ले जाती है. देशमुख परिवार सुशिक्षित है. और अपनी जाति पर उसे नाज है. . .शहाण्णव कुळीचे मराठे. वह कहती हैं, अरे--यह थाल किसलिए? यहां तो ढेर के ढेर पड़े हैं मिठाई के. ले जाइए, आपके बच्चों के लिए हो जायेगा. मेरी बीवी थाल वापस ले आती है. अपमान की कसक उसे सालती रहती है. क्रोध मन में उबलता रहता है. और इस पर तुर्रा . . .देशमुख बाई दोपहर अपना थाल ले आती हैं और समझाने के स्वर में कहती हैं—थाल लौटाया नहीं जाता, बहन. बीवी को बदला चुकाना ही है. अन्न को पूर्ण ब्रह्म समझने वाली देशमुख बाई का थाल लौटा दिया जाता है. इतना-सा मुंह और हाथ में थाल लिये वह लौट पड़ती हैं.

जलते हुए अंगार-सा यह अनुभव मेरी सारी संवेदनाओं को एकबारगी आग लगा जाता है. जीभ पर मिठास अचानक कड़ुवाहट में बदल जाती है. 'घर-घर में दीवाली है, मेरे घर में अंधेरा'. लगता है सारा देश एक महाकाय पिरामिड है और उसके अंदर-अंदर के घने अंधकारों में कहीं 'ममी' की तरह बेजान मैं सड़ रहा हूं. क्या दलवी ने कभी ऐसा अनुभव किया होगा? अस्पृश्यता उनके लिए एक कलंक भर है. लेकिन मेरे लिए? मेरे लिए वह मां के दामन का दाग है. उसको कैसे मिटायें? कैसे?

स्वतंत्रता की रजत जयंती धूमधाम से मनायी जा चुकी है. गत पच्चीस सालों में जाने कितनी बातें बदल गयीं. कितने सुधार हुए. इस दाग को मिटाने के लिए कानून बना. लेकिन इस कानून के खिलाफ हुई वारदातों पर ध्यान नहीं दिया गया. और यह आज का वाकया इसे 'गुनाह' कहें तो कैसे कहें? अदालत गवाही की मांग करेगी. कहां से लायें गवाही? औद्योगीकरण ने शहरों का रूप बदल दिया. पर यह दाग मिटा नहीं. कुछ दलितों की हालत आर्थिक रूप से सुधर गयी. इसके बावजूद यह दाग बना रहा. जब शहरों की यह हालत है, तो पिछड़े हुए देहातों की कुछ न पूछिए. भोगा हुआ अतीत गलगंड की तरह कसकता रहा. एक फोड़ा फूटता गया. . .जानलेवा दर्द के साथ.

बीते हुए दिनों के साथ खोया हुआ बचपन याद आया. हम लोग महाराष्ट्र के पूर्वी प्रदेश के रहने वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क तरफ अंदर धंसी हुई सह्याद्रि की श्रेणियां, अमृत-ाहिनी प्रवरा. कलसूबाई की गगन छूने वाली चोटी. कृति के मन मुताबिक बिखरी हुई सुंदरता. लेकिन स भौगोलिक विशालता के खयाल से हमारा सिर भी ऊंचा नहीं हुआ. हर गांव की तरह यहां भी 'महार-ाड़ा' था. मराठी के कवियों ने अपने बचपन के बीत ाने पर जार-जार आंसू बहाये हैं. लेकिन मैं तो अपना बचपन याद करके बुरी तरह सिहर उठता हूं. कविता-बद्ध करने योग्य यहां था क्या? हां, एक घटना याद आती . रोंगटे खड़े हो जाते हैं. महारवाड़ा में सिन्नर का क्रांतिकारी जलसा उतरा है. . . .वह समय ही कुछ और ा. ऐसे हजारों जलसों ने महाराष्ट्र में जागृति के सुर गाये थे. डा. बाबासाहेब आंबेडकर का दर्शन झोपड़ी-झोपड़ी तक पहुंचाया था. महार जाति में स्वाभिमान की ज्योति जलायी थी. . .सिन्नर का वह जलसा देखने गांव के 'मराठा' लोग महारवाड़ा में आये हैं. उनके बैठने का विशेष प्रबंध किया जाता है. ढोलक की थाप पर जलसा आरंभ होता है. बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर की प्रार्थना के पद शुरू होते हैं. सांवले रंग के किसन-हीरामन बिजली-से कड़कने लगते हैं. 'गवलण' आरंभ होती है. पर जलसे की यह गवलण अपने ढंग की निराली है. तमाशा की गोपियों के पैर उठते हैं मथुरा के बाजार की तरफ, जब कि ये 'गोपियां' चली हैं नासिक, कालाराम मंदिर के सत्याग्रह में शामिल होने. . .जलसा रंग ला रहा है. पुजारी मंदिर-प्रवेश का विरोध कर रहे हैं. गोपियां अपनी बात पर अड़ी हुई हैं. . वे मंदिर-प्रवेश करने पर तुली हुई हैं कि अचानक मराठा दर्शक हल्ला मचा देते हैं. इस डर से कि कहीं ये गोपियां मंदिर में घुस कर भगवान को भ्रष्ट न कर दें. मूछों पर ताव देते हुए पाटिल गरज उठते हैं—बंद करो यह तमाशा!

—पाटिल, यह तमाशा नहीं. इसे जलसा कहते हैं, जलसा. महारवाड़े का जवान प्रतिनिधि जावजी जवाब देता है.

—उन गोपियों को रोको! भगवान को भ्रष्ट कर देंगी वे.

—यह हमारी बस्ती है. नहीं देखना है तो अपना रास्ता नापो. फिर एक बार जावजी की बुलंद आवाज—गांव वाले लोग गांव की तरफ चल पड़ते हैं. जलसा फिर शुरू हो जाता है, जैसे कुछ हुआ ही न हो. दूसरे दिन जलसे वालों का डेरा उठ जाता है और गांव में असंतोष, क्रोध की लपटें लपलपाने लगती हैं. महारवाड़ा बहिष्कृत कर दिया जाता है. गांव में आना-जाना बंद हो जाता है. मजदूरी नहीं मिल पाती है. कुएं की राह गांव से हो कर जाती है. वह बंद कर दी जाती है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर लोग भी अपनी जिद के पक्के. किसी तरह हार नहीं मानने वाले. गांव और महारवाड़े की सरहद पर पत्थर रखे जाते हैं. उन पर महार औरतें खड़ी हो जाती हैं. मर्द लाठियों पर गंडासे बांध लेते हैं. सौ-दो सौ गंडासे चमचमाने लगते हैं. उन्हें ले कर गांव में बड़ी अफवाहें फैलने लगती हैं. काटो तो खून नहीं. आखिरकार सोच-विचार कर महारों को बुलवाया जाता है. नंग-धड़ंग काले शरीर, कंधों पर चमकते गंडासे लिये हनुमान के मंदिर के सामने आ खड़े होते हैं. मंदिर से आवाज आती है—तुम कौन हो?

—हम राजा हैं! छह फुट लंबा काशीराम नजर से नजर मिला कर जवाब देता है. महार कुछ नहीं सुनेंगे. खून-खराबा होगा, इस डर से गांव वाले किसी तरह समझौता कर लेते हैं. अब कभी गांव जाता हूं तो जावजी मिलने आता है. अब बुढ़ापा आ रहा है. उसने इस घटना वाले सारे कागजात जतन से रखे हैं. मानो मुहरों की थैली हो.

पिता जी को मैंने बचपन में देखा था. लंबे, छरहरे, काला रंग, हंसमुख, सर पर ऊंची, काली मलमल की टोपी. कपड़े हमेशा सफेद. पढ़े-लिखे नहीं थे. पर जेब में हमेशा फाउंटेन पेन की शान. हम लोग अभी-अभी बंबई से गांव लौट आये. वह गोदी से रिटायर हो चुके हैं और हाथ लगे फंड के रुपये शराब में, कर्ज में फूंक चुके हैं. फकीर बन कर हम गांव में लौट आये हैं. बंबई की सारी जगमगाहट खत्म हो चुकी है. अब कहीं किसी के खेत में मजदूरी कर लेते हैं, लकड़ी तोड़ते हैं. हां शादी-ब्याह के मौसम में हमारे दिन खुल जाते. चार गांव के चार बजनिये इकट्ठे करके वह चार पैसे जोड़ लेते थे. खुद 'कांड' बजाया करते थे. तमाशे का शौक था. शाम को महारवाड़े के जवानों को इकट्ठा करके लावणियां गाते थे. ढोलक में मसाला खूब अच्छी तरह भरते थे. कभी-कभी ठाकुरवाड़ी से, गांव से भी, ढोलक मसाला भरने के लिए उनके पास आया करते थे, कभी मृदंग भी आया करते थे. पिताजी को मंदिर में प्रवेश करने की मनाही थी. हां, उनकी भरी ढोलक खूब चलती थी. मैं यह पहेली कुछ समझ नहीं पाता था. भली-बुरी कितनी ही बातों का पिटारा थे मेरे पिताजी. गांव का अखाड़ा महारों के लिए बंद था, इसलिए उन्होंने हमारे घर ही में जमीन खोद कर अखाड़ा बना लिया था.

बजनियों के साथ मैं अकसर जाया करता था. 'संबल' के ताल पर झुक कर, माथा टेक कर, सिक्का उठाना उन्होंने मुझे सिखाया था. बारात में वह लावणी गाते थे. बजनियों की मंडली में एक सटवा नाम का आदमी था, जो खूब हंसाया करता था. 'कांड' ऐसे बजाता था कि सब डोलने लग जाते. एक बार मैंने उससे पूछा था—सटवा मामा, इतना अच्छा कांड बजा लेते हो, पर तुम्हारी पत्तल घूरे पर. ऐसा क्यों, सटवा मामा?

उनकी मां के ब्याह में . . .उसकी पेटेंट गाली थी. उस समय उसकी बेपरवाह हंसी से झांकती अनगिनत लाल-पीली लपटें, लपटें, लपटें. . .

—देखो, इनको गालियां देता हूं कांड बजा कर. बारातियों के सामने खड़ा हो कर वह कांड बजाता. बाराती वाह-वाह करते और मुझे उसके कांड से बजती हुई गालियां सुनायी देतीं.

एक और वाकया. बैलगाड़ियों में चढ़ कर बाराती जा रहे थे. तपती हुई दोपहरी में दहकती हुई जमीन पर बजनिये पैर घसीटते जा रहे थे. मैं बहुत थक गया था. सटवा मामा मिन्नतें कर रहा था कि मुझे बैलगाड़ी पर चढ़ाया जाये, पर क्योंकर सुनता कोई? तब फिर कभी पिता जी के कंधे पर, कभी सटवा मामा के कंधे पर.

पहुंचते-पहुंचते मुझे जोरों से भूख लग आयी है. उन लोगों के खा चुकने के बाद ही महार बजनियों को खाना मिलता. और फिर मांगें तो किससे, कुछ समझ नहीं आ रहा था. हम सब हैरान. हमारी मंडली में सुदाम बुवा सुकरी बजाते थे. सर पर लाल साफा, कान में सोने के कुंडल और माथे पर सिंदूर का टीका. फटे हुए कोट की जेब में एक चीथड़ों की बनी गुड़िया हुआ करती थी, जिसे वह 'खाला' कहा करते थे. बालों का छोटा-सा जूड़ा और पैरों में बजते हुए घुंघरू. लोग समझते थे सुदाम बुवा टोना-टोटका करता है. हां, यह खाला उन्हें कभी किसी चीज की कमी महसूस न होने देती. इस बार भी यही हुआ. माथे पर कुंकुम का बड़ा-सा टीका और दूरकली साड़ी में लिपटी देह—एक औरत सुदाम बुवा के सामने आ खड़ी हुई.

—सुदाम बुवा, मेरी कोख खाली है. बच्चा नहीं आयेगा तो मेरा शौहर सौत ले आयेगा, सुदाम बुवा! उसकी वाणी बड़ी दयनीय थी.

—अच्छा, यह तो बड़ी आसान बात है. सुदाम बुवा ने जेब से गुड़िया निकाली और उसके सर पर घुमायी.

—अब देखो, उतारा करना पड़ेगा. उतारे में बारह अंडे, घी में सेंके बारह पराठे, वहां, वह आम का पेड़ जो दिखायी दे रहा है. . .बस वहीं रख आओ. वह हामी भरती है, चली जाती है. इधर सटवा, सुदाम बुवा खुश हो कर ताली बजाते हैं, उधर उतारा आ जाता है. हम लोग पहले से ही वहां छिपे बैठे हैं. उसके उतारा रख कर चले जाते ही सब लोग टूट पड़ते हैं पराठों पर, अंडों पर.

* *

मुझे समझ आते-आते गांव के ये सारे सहारे इह लोक की यात्रा खत्म कर चुके थे. भाइयों-भाइयों में लड़ाई-झगड़े शुरू हो गये. और हम तो इस सतायी हुई दुनिया के और भी गये-गुजरे जीव. पिताजी का साया उठ चुका होता है. शराब का उनका बढ़ता हुआ चस्का उन्हें एक दिन हममें से उठा ले जाता है. सब तरफ से अवहेलना, उपेक्षा, तिरस्कार के अंगार बरसते रहते हैं. मां स्थिति को किसी तरह संभाल लेती है. वह न होती, तो परिस्थितियों के पैरों तले इस कदर रौंदे कुचले जाते कि पता ही न चलता. मरे हुए गाय-बैलों का बोझ ढोना, गांव की मैयत की खबर घर-घर पहुंचाना—यही काम मिलते थे. उसमें भी भाई-बंद हिस्सा बंटा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते थे. गुजारा मुश्किल था. लकड़ियां तोड़ना, बेचना, जाने कैसे-कैसे काम करके [illegible] पढ़ा रही थी.

गांव के स्कूल से मैंने चौथी कक्षा पास कर ली थी. पांचवीं से तालुके में जाना पड़ता था. यहां तो विधवा के बच्चे का पढ़ना-लिखना किसी को फूटी आंखों न सुहाता था. वे लोग मां को सलाह दिया करते—क्यों री ख़ू? बम्मन की तरह इसे पढ़ा-लिखा रही हो. जरा तो किसी के बैलों को चराने भेजा करो. छिटपुट कुछ नमक मसाले के लिए मिल जाया करेगा.

पर मां किसी की एक न सुनती. वह जानती है, उसके बच्चे को पढ़ाना जरूरी है, इस नरक से उबार लेना जरूरी है. कहां से इतनी समझ उसमें आ गयी थी? वह न होती तो पता नहीं मैं कहां होता.

तालुके में भी कुछ ऐसे अनुभव मिलते हैं, जिनसे दिल फट जाये. गांव के कुछ मराठा लड़के साथ हुआ करते थे. . .मन नये संस्कार ले रहा है. तराशा जा रहा है. हीन भावना के घुटन भरे घेरे से बाहर आ रहा हूं. स्वाभिमान जगने लगा है. कुलकर्णी मास्टर मुझे बच्चों के सामने खड़ा कर कहते—देखो, यह महार का बेटा, लेकिन कैसा साफ-सुथरा, पढ़ाई में तेज है! सभा में भाषण देता है, नाटकों में भाग लेता है. मैं फूला नहीं समाता हूं, यह तारीफ सुन कर. मन का पंछी उड़ानें भरने लगता है, ऊंचे-ऊंचे, दूर-दूर.

दोपहर—खाने का समय हो जाता और मुझे अपनी असली जगह का पता चल जाता. धम्म से जमीन पर गिरता हूं. यह क्यों? यह क्यों? ऐसी क्या कमी है मुझमें? सभी लड़के नदी-किनारे खाना खाने जाते हैं. स्पृश्य लड़के मुझसे दूर हट कर बैठ जाते. उनका अचार, चटनी मेरी रोटी पर आ सकता था, लेकिन मेरा अचार वे कभी नहीं खाते. नदी का पानी मैं बहाव के नीचे की तरफ जा कर पिया करता. अनजाने ही.

एक दिन मैं ठान लेता हूं. अपनी चटनी उन्हें देने लगता हूं. वे समझते हैं कि मैंने उनका घोर अपमान किया है.

—धेड़, महार, कहीं का! गालियां बरसती हैं.

—मेरी चटनी तुम लोग नहीं खाते, मैं भी नहीं खाता तुम्हारा अचार! मैं उनका दिया अचार नदी के पानी में फेंक देता हूं. यह बात? यहां तो यह घमंड और घर पर? वहां हमारे दिये टुकड़े चूसते हो! आठ-आठ दिन के बासी टुकड़े. मेरा मस्तिष्क झनझना उठता है. एकाएक. मेरे हाथ-पांव सारी शक्ति खो बैठते हैं मानो. वहां से हट जाता हूं. दूर-दूर तक. आंखों से आंसू बहते रहते हैं. बड़ी देर तक प्रवाह के किनारे बैठा रोता रहता हूं. आंसू बहाता रहता हूं. यह अमृतवाहिनी प्रवरा. मेरी आंखों के खारे जल से इसे न लेना है, न देना.

* *

फिर एक दिन सोनावने गुरुजी अपने कमरे में बुलवा लेते हैं. —गांव के बोर्डिंग के लिए तुम्हारा चुनाव हो गया है. छठी कक्षा से तुम वहां पढ़ने जाओगे.

खुशी से झूम उठता हूं. उन सहपाठियों से दूर. मां [illegible] अपना बिस्तर ले कर मैं बोर्डिंग में दाखिल हो जाता हूं. लेकिन पहले ही दिन सारी खुशी पर पानी फिर जाता है.

लोकल बोर्ड का बोर्डिंग है. सभी बच्चे महादेव कोली, यानी शेडयूल्ड ट्राइब के. मैं पहला अकेला महार छात्र. इसी की चर्चा होने लगी है. कोई मुझसे बात नहीं करता. अपनी थाली और लुटिया लिये मैं खाना खाने जाता हूं तो बोर्डिंग सुपरिंटेंडेंट मुझे समझा देते हैं—तुम महार हो. यहां दरवाजे के पास ही खाना खाया करो. अंदर को खिसकने लगोगे तो सब लड़के मिल कर बुरी तरह पीटेंगे.

अपने से फासला रख कर बैठे हुए लड़कों की तरफ मैं एक नजर देख लेता हूं. सबकी आंखें इसी तरफ टकटकी बांधे हैं. लगता है, मैं एक कैदी हूं. बेड़ियों-हथकड़ियों से जकड़ा हुआ. अपनी जगह से जरा-सा खिसका कि सर पर टंगी तलवार गिर पड़ेगी. गरदन कट जायेगी. खटाक से.

* *

धीरे-धीरे जान-पहचान होने लगती है. हर शनिवार को हनुमान की प्रार्थना, भजन—वैष्णव जन तो तेणे कहिए, जो पीर परायी जाणे रे. मेरी आवाज अच्छी थी, इसलिए अकसर सबसे आगे खड़ा हो कर गाता था. लेकिन प्रसाद बांटने के समय प्रसाद का थाल हमेशा किसी दूसरे लड़के को थमा दिया जाता. मैं अपने हाथों को निहारा करता. कहीं मैं कोढ़ी तो नहीं हूं! मन में आता खूब चीखूं, खूब चीखूं! यह चुपचाप गरदन झुका कर अपमान सहना क्यों? इससे तो अच्छा था, बैल चराने ले जाता. बोर्डिंग पर कोई श्री खरात आया करते थे. बहुत ही अच्छी तरह से पेश आते. मेरे प्रति स्नेह रखते थे. कभी-कभी उनके साथ चर्च जाया करता. वह हार्मोनियम पर भजन गाया करते. उनके साथ चर्च में भगवान के पैरों तक पहुंच जाता. लेकिन यहां जिस धर्म का टीका लगा कर पैदा हुआ हूं, वहां, मेरे लिए भगवान के दर की सीढ़ी चढ़ना गुनाह था. चींटी को चीनी खिलाने वाला मेरा धरम.

और एक दिन मैं साहस कर मंदिर में घुस ही गया. बात यह हुई कि छुट्टियों में मैं ननिहाल जाया करता. वहां महार-मांगों को पानी मिलना बड़ा मुश्किल. महार-मांग औरतें कुएं पर पानी की भीख मांगते घंटों खड़ी रहतीं. अगर कभी किसी पानी भरने वाली को तरस आ ही गया तो एक-दो घड़े पानी मिल जाता. कई बार इस करुण दृश्य का मैं साक्षी रहा हूं. मन में आता जा कर कुएं के पानी में गंदगी घोल आऊं. एक दिन यों ही बैठा था कि पास ही हनुमान-मंदिर में भीड़ देखी. चल दिया. उस तरफ कोई आदमी हनुमान की मूर्ति के सामने खड़ा हाथ में चप्पल लिये मूर्ति से लड़ रहा था. उसे मां-बहन की गालियां दे रहा था. सुशिक्षित था. अब सोचता हूं कोई 'सत्यशोधक समाज' का कार्यकर्त्ता होगा. गांव उसे पागल करार दे रहा था. आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चल कर यह हर किसी प[illegible] जब वह गाली देता या मूर्ति की तरफ चप्पल ले कर दौड़ता, तब हंसी की आवाज गूंज उठती. मुझे लगा, जब सारे गांव के सामने एक आदमी भगवान को चप्पल से पीट सकता है, मां-बहन की गाली दे सकता है, तो मेरे मंदिर-प्रवेश से कोई प्रलय तो नहीं होने वाला. मैं अंदर चला गया. गांव के लिए मैं नया था. पहले किसी ने पहचाना नहीं. फिर किसी ने पूछा—कौन हो?

—कसबे के यहां आया हूं. मेरे मामाजी हैं.

—यानी महार? चल उठ, महार, भ्रष्ट कर दिया! गंदा कर दिया मंदिर!

खबर चारों तरफ पहुंच गयी.

—पकड़ो साले को! बड़ा घमंड हो गया है इन लोगों को! खंभे से जकड़ देने का सुझाव. मेरे हाथ पैर पसीना-पसीना हो जाते हैं. लाल अंगार-सी आंखें एक नजर मुझे निहारती हैं. और फिर चटाख से एक झापड़ गाल पर जड़ दिया जाता है.

मेरी नजरें भगवान से लड़ने वाले आदमी को ढूंढती हैं. लेकिन अब वह कहीं दिखायी नहीं देता! नानी किसी तरह मुझे बचा लेती है.

* *

सातवीं पास कर लेता हूं. आगे? कोई सलाह देता है, स्कूल-मास्टर बन जाओ. लेकिन मुझे तो आगे पढ़ना है. पड़ोसी तालुके में अस्पृश्यों का बोर्डिंग है. मैं वहां प्रवेश पाने के प्रयास में लग जाता हूं. और सफल भी हो जाता हूं. थाली, लुटिया, टीन का बक्सा लिये पहुंच जाता हूं. बंबई से आये हुए ट्रस्टी इंटरव्यू करते हैं. मेरी गांधी टोपी, खादी के पाजामे, कुरते की चर्चा चलती है. मजाक उड़ाया जाता है. असली बात तो यह है कि मुझे ये कपड़े पहले वाले सर्वोदय छात्रालय से मुफ्त में मिले हुए हैं. मुझसे सवाल किया जाता है—तुम्हारी जाति?

—हरिजन! झिझकते हुए मेरा उत्तर.

सब चौंक जाते हैं. बेटा, ऐसा नहीं कहते, हरिजन तो गांधी की दी हुई गाली है. अपने आपको महार कहो, बेटा.

मेरी समझ में कुछ नहीं आता. इससे पहले प्राइमरी स्कूल के ब्राह्मण अध्यापक ने मुझसे कहा था, तुम हरिजन हो. यहां यह रीति. जो हो, मुझे छात्रालय में प्रवेश मिल जाता है. और फिर यहीं मेरा परिचय होता है डा. आंबेडकर के सुदृढ़, अडिग, दर्शन से. 'जनता' के अंक पढ़ने में आते हैं.

एक दिन आंबेडर जयंती के अवसर पर लड़के मेरी गांधी टोपी जला देते हैं. न जाने क्यों, मन दुख, विषाद से कोसों दूर खड़ा है.

पचास-साठ छात्र हैं. आसपास के देहातों से आये हुए. दो-तीन चमार, दो महादेव कोली, एक मांग, बाकी सारे महार. पहले वाले छात्रालय के कोली लड़कों की तरह यह रोब नहीं जमाते, बस यहां सारे भीगी बिल्ली बने हुए हैं. महार लड़कों के हाथ में. इसी बात का संतोष है. पढ़ता हूं.

दया पवार : कवि-कहानीकार

दीवाली की छुट्टियों में घर जाता हूं. मां की हालत मुझसे देखी नहीं जाती. अकाल का विकराल रूप. महार अब चमड़ी फाड़ने जैसे काम नहीं करते. मां गुजारा करे तो कैसे. इसी चिंता में मैं लौट आता हूं. छात्रालय में खाना पकाने वाली बाई काम छोड़ कर चली गयी है. मां का खयाल आता है. मैं छात्रावास के संचालकों से चार बातें कह कर मां को बुलवा लेता हूं.

* *

लेकिन जब से मां आयी है, मेरा जीना दूभर हो गया है. दूसरे लड़के हमेशा इसी पहरे पर कि कहीं मेरी मां छिप कर मुझे खिलाती तो नहीं रहती! मैं मां से मिलना बंद कर देता हूं. वह भी काम के बोझ के नीचे दबी जा रही है. खाना खाने बैठते हैं, तो रसोई की बुराई शुरू हो जाती है—कैसा खाना है. दाल है कि पानी? बिच्छू के डंक-सी बातें. कभी-कभी ये खुद ही जा कर मुट्ठियां भर-भर कर नमक डाल दिया करते हैं और शोर मच जाता है कि बाई को पकाना नहीं आता. वैसे गांव के सुनार, ब्राह्मण, दर्जी जाति के लड़कों का बर्ताव मेरे साथ अच्छा था. वे कभी घर ले जाते, खिलाते-पिलाते. मेरा खयाल है, यही एक बात ऐसी मिली जिंदगी में जिसने मुझे टूटने नहीं दिया.

पर आज भी वह जानलेवा वाकया मन में ताजा है. धड़कन अचानक तेज हो जाती है. पसीना-पसीना हो जाता है सारा बदन, आंखों से झड़ी लग जाती है. छात्रावास में मां को आये हुए दस-पंद्रह दिन हो चुके हैं. स्कूल से लौट कर और अपनी थाली-लुटिया ले कर खाने के दालान में पहुंचा. लड़के बैठे हैं. परोसने की जिनकी बारी है, वे परोस रहे हैं. मुझे देखते ही चिल्ला उठते हैं.

मैं हैरान रह जाता हूं. प्रार्थना खत्म होती है. पर कोई खाने को तैयार नहीं. सब बार-बार चिल्ला रहे हैं. बोर्डिंग सुपरिंटेंडेंट आते हैं. वह भी नहीं समझ पा रहे हैं कि आखिर बात क्या है. कोई बोलता नहीं. मैं उठ कर रसोईघर में झांकता हूं. और मुझे देखते ही गले लग कर मां रोने लगती है.

—क्या हुआ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

बड़ी देर तक कुछ नहीं बोलती. फिर उससे रहा नहीं जाता और कह पड़ती है —मैं छूने की नहीं हूं.

मेरा अंग-अंग सुलग उठा है. तेजाब की अनगिनत धाराएं बह चलीं. जी करता है अपने काले मुंह ले कर मां धरती के पेट में छिप जायें. क्यों यहां जन्मे हम? क्यों न बर्फ ढंके सुनसान ठंडे प्रदेश के वासी बने? वहां ये बातें तो नहीं. रात भर जख्मी दिल लिये छटपटाता रहता हूं. छटपटाता रहता हूं.

★ ★

कोई मुझे जोर-जोर से हिला रहा है.—दादा, दादा, उठिए तो! मेरी छह साल की बेटी मुझे जगा रही है. अतीत का बोझ उतार कर मैं उठ बैठता हूं.

—दादा, आप रो रहे हैं! वह मुझे अचरज भरी निगाहों से देखती है. मेरी आंखें सजल हैं.

—नहीं तो, बेटी. कचरा चला गया होगा आंख में! बस.

—दादा, मुझे 'मनाचे श्लोक' ला दीजिए. गुरुजी ने कहा है. मुझे याद आता है रामदास का श्लोक. . .मुझे याद आता है . . .

अत्यंत दोष त्या विटाला। त्या विटालाचायि पुतला।
तेथे निर्मलतेचा सोहला। केवी घडे।।
वरि वींर दिसे वैभवाचे। अंतरी पोतडे नरका चे।
जैसे झाकणे चर्मकुंडाचे। उघड़ताची नये।।

मूर्तिमान गंदगी (इस नश्वर देह में) विशुद्धता कहां! चमड़ी के इस कुंड (देह) की ऊपरी जगमगाहट के अंदर नरक की गंदगी भरी हुई. इसके बहकावे में न आओ. उस लोक की असलियत पहचानो!

मानव के प्रति यह कैसी घृणा! यह घृणा का दर्शन आज स्कूलों-कालेजों में सिखाया जाता है. इस दर्शन के मंथन में से 'नये मानव' की अपेक्षा कैसे करें? कड़वे घूंट मैं तो निगल गया. कितनी सारी मेरी पुश्तों ने निगले हैं. और अब यह मेरी बच्ची? इसी परंपरा की अगली कड़ी. जाने किस प्याले में वह कड़वा घूंट इसको पीना पड़ेगा. वही अनुभव बाना बदल कर आयेगा. आग लगा दें विषमता का जहरीला दर्शन पिलाने वाले हमारे इन धर्मग्रंथों को. विचारों का यह ज्वालामुखी मेरे मन में घुमड़ता रहा. □□□

(अनुवाद : रेखा देशपांडे)

दो घटनाकथाएं

समाजवादी भारत : दुर्गावतार

सवर्णों ने कमलेश को दुर्गा का अवतार घोषित किया और फिर उनमें से एक ने उसके साथ बलात्कार किया. यह ११-वर्षीय हरिजन बालिका हिमाचल प्रदेश के सिरपुर जिले के सराहम गांव की थी.

कमलेश अपने मां-बाप के साथ गांव के किसी मेले में जा रही थी. तभी गुंडों ने उसका अपहरण कर लिया और उसे घने जंगल की एक गुफा में ला कर पटक दिया. दिन भर उसे वहीं घुटना पड़ता था और रात को वह दुर्गा का अवतार बना दी जाती. उसे पहाड़ की ऊंची चोटी पर बिठाया जाता. उसके चारों ओर ज्वाला प्रज्ज्वलित होती.

अंधविश्वास के मारे हजारों ग्रामीण आते, चढ़ावा चढ़ाते, मनौतियां मांगते, मगर किसी भक्त को देवी के पास जाने की इजाजत नहीं थी.

एक सामाजिक कार्यकर्ता धरमसिंह आनंद और पुलिस के एक सब-इंस्पेक्टर का संदेह दही की तरह जमा रहा. वे एक दिन जंगल में घुसे, उस गुफा पर छापा मारा और अपहरण कर्ताओं को दबोच लिया.

यह प्रपंच एक कांग्रेसी कार्यकर्ता का था, जो प्रति माह दो सौ रुपये राजनीतिक पेंशन के रूप में पा रहा था. वह काफी बूढ़ा था. कमलेश के बयान के अनुसार उसने दो बार बलात्कार किया. मगर डाक्टरी जांच से यह साबित नहीं हो सका. शायद इसलिए कि वह बूढ़ा कांग्रेस का मामूली कार्यकर्ता ही नहीं था, उसके संपर्क बड़े-बड़े नेताओं से थे. और बजाय इसके कि सामाजिक कार्यकर्ता को प्रोत्साहन दिया जाता, उसका तबादला करने की धमकी दी गयी. □□□

समाजवादी भारत : विद्यापीठों की हालत

यह घटना नयी दिल्ली की है. श्रीनिवासपुरी कॉलोनी के कस्तूरबा बालिका विद्यालय की.

विद्यालय के होस्टल में उस दिन जन्माष्टमी का उत्सव मनाया जा रहा था. उत्सव के बाद १७ वर्षीय हरिजन बालिका प्रेमलता प्रिंसिपल को प्रसाद देने गयी. प्रिंसिपल ने उसे झिड़का—हरिजन हो कर तुमने प्रसाद बांटने की हिम्मत कैसे की? दूसरे दिन सुबह प्रेमलता अपने बिस्तर से गायब थी.

दौड़धूप मची. थोड़ी देर बाद एक नौकर ने बतलाया कि प्रेमलता की लाश ट्यूबवेल में पड़ी है. पुलिस आयी. मामूली खानापूर्ति के बाद मामला साफ हो गया.

बाद में सही बात पता लगी. फिर तो पुलिस और जनता के बीच ऐतिहासिक झड़प हुई. शांति और व्यवस्था के नाम पर १५० व्यक्ति गिरफ्तार कर लिये गये. □□□

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

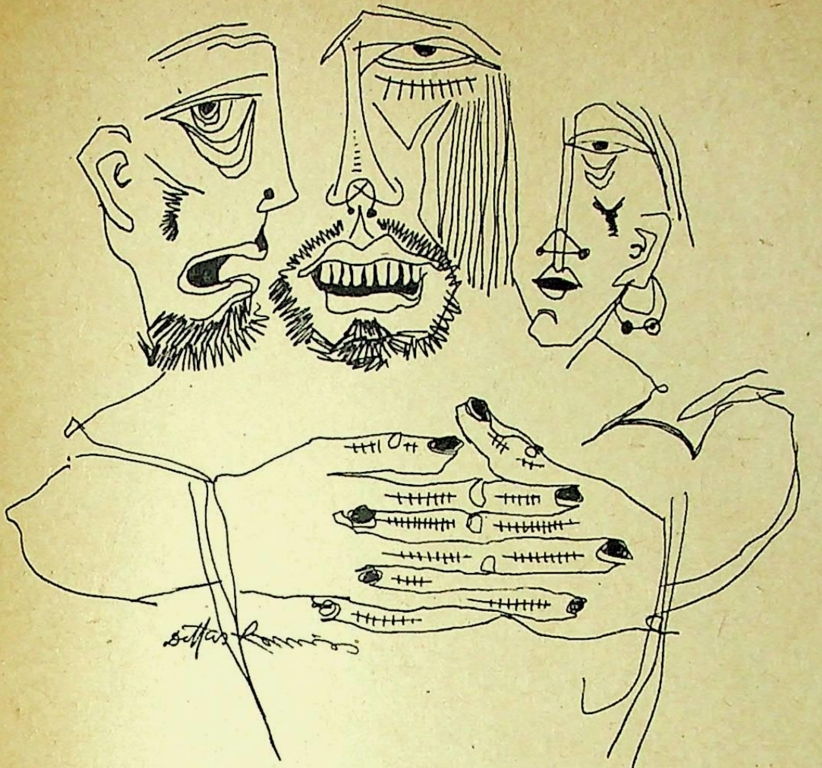

● दत्तात्रय एस. राणे

एक लघुकथा

एक गांव, एक पनघट !

इस बस्ती में पीने का पानी नहीं था. दोपहर के समय चार अछूत स्त्रियां मिट्टी के बरतनों के साथ कुएं पर आयीं. पूरे गांव में यही एक सार्वजनिक कुआं था, जिससे पानी मिल सकता था. बड़ी हिम्मत करके वे आगे बढ़ीं. . .एक ने पानी खींचा–अचानक वहां दो दूसरी स्त्रियां आ पहुंचीं, वे ऊंचे कुल की थीं. इनको पानी भरते देख सरपंच की पत्नी ने गाली दे कर कहा—बहुत चर्बी चढ़ गयी है! कुआं भ्रष्ट कर दिया. हरामजादी...!

पानी भरने वाली ने बड़ी मिन्नत से कहा—बाईजी, दो दिन से पानी नहीं है, बच्चे प्यासे हैं. . .

दूसरी स्त्री ने कहा—लेकिन हमसे मांगा क्यों नहीं, बेशर्म-बेसवा!

—बहन, गाली मत दो. . .

—बहन की बच्ची! सरपंच की पत्नी को जोश आ गया. उसने लात मार कर घड़ा फोड़ डाला और पानी भरने वाली के बाल पकड़ कर नीचे पटक दिया. साथ वाली बीचबचाव के लिए दौड़ी. गिरते-गिरते उस स्त्री ने सरपंच की पत्नी की साड़ी पकड़ी थी जिससे वह फट गयी. उसने शोर मचाया—देखो, देखो, यह हरामी महार अभी हमें मारने लगे हैं! सारा गांव जमा हो गया. सरपंच गुस्से में भर गया. अछूत स्त्रियां जान बचा कर भागीं.

—जला दो महारवाड़ा. . .!

—अच्छी धुलाई करो. . .!

लाठियां हाथ में लिये भीड़ अछूतों की बस्ती पर पहुंची. दो-तीन झोपड़े जला दिये. जो लोग हाथ आये उन्हें पीट डाला. किसीका हाथ तोड़ दिया, किसीका सिर फोड़ दिया. सारी बस्ती रोने-चिल्लाने से भर गयी.

सरपंच अपने आफिस में आये. ग्रामपंचायत के सेक्रेटरी ने कहा—साहब, आज यह तो बुरा हुआ, क्योंकि आज शाम को हमारा ग्राम-गौरव समारोह है और अस्पृश्यता-निवारण कार्य का पारितोषिक हमारे गांव को समाज-कल्याण मंत्री द्वारा दिया जायेगा.

रात के आठ बजे थे. पंचायत आफिस के सामने गांव के लोग जमा थे. मंत्री महोदय को पुष्पहार पहनाये गये. सामने दो-तीन लोग हाथ और माथे पर पट्टियां बांधे बैठे थे. मंत्री महोदय के हाथों चांदी की ढाल दी गयी, एक हजार का चेक दिया गया.

—आपके गांव ने हजारों साल का कलंक धो दिया है! एक गांव, एक पनघट! यह घोषणा अब हमारी जीवननिष्ठा है! कैमरे चमके. नारे लगे. समारोह समाप्त हुआ. पंचायत आफिस में चाय-पानी चल रहा था. हरिजन मेंबर जमीन पर बैठे थे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

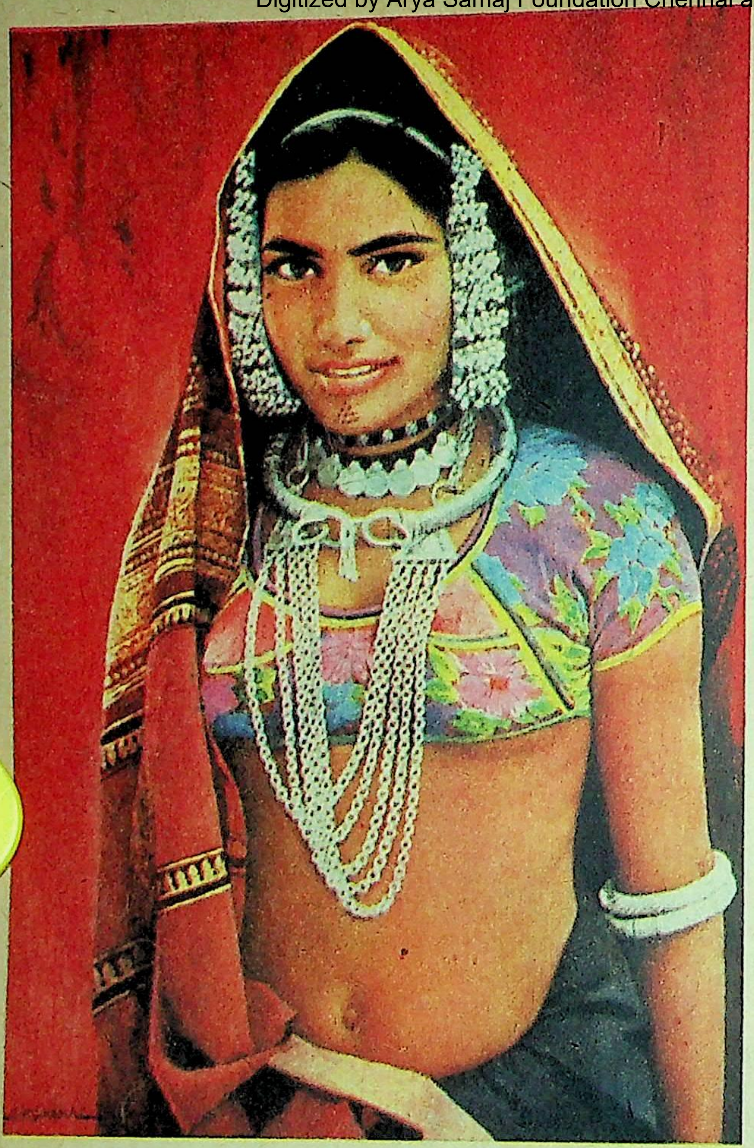

अडवानी आर्लीकान के सौजन्य से

दुमंजिला घर ★ वामन होवाळ

एस. टी. की बस में जरूर कोई खराबी आ गयी थी, तभी वह घाट ऐसे चढ़ी थी, जैसे उसके प्राण निकले जा रहे हों. और फिर दवाखाने के करीब पहुंचने से पहले ही अड़ियल टट्टू की तरह अड़ गयी. गांव अब बहुत दूर नहीं रह गया था. यही कोई मील-डेढ़ मील. लेकिन ड्राइवर खीज उठा था. कंडक्टर असहाय-सा चुप्पी साधे बैठा था.

कंडक्टर ने सभी पुरुष यात्रियों से नीचे उतरने को कहा. फिर सभी ने जोर लगा कर बस को ढकेला. जरा-सी गति मिलते ही बस चालू हो गयी. यात्री एक-दूसरे को धकियाते हुए ऊपर चढ़े. कंडक्टर के घंटी बजाते ही बस मंथर गति से आगे बढ़ी. गांव के मोड़ पर बस अंडा देती मुर्गी की तरह कराही और ठांय से मुजाबा पाटिल के बाड़े के सामने खड़ी हो गयी. रुकते-रुकते भी उसने एक जोरदार हिचकोला दे ही दिया. इस हिचकोले से लोग ऐसे डोले, जैसे ठेस लगने पर सिर पर रखे मटके का पानी.

बस की छत पर रखे एक बड़े संदूक को उठाते हुए हमाल चिल्लाया —किसका संदूक है यह?

बदन से धूल झटकते हुए बयाजी बोला—मेरा है. छोड़ो नीचे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमाल ने दांत से होंठ चबाते हुए वह वजनी संदूक नीचे छोड़ा और बयाजी ने उसे बीच में ही थाम लिया. इस संदूक में बयाजी अपनी सारी गृहस्थी बंबई से लाया था. अब वह बंबई में रह कर क्या करता? पिछले तीस साल उसने गोदी में ईमानदारी से काम किया था. महीने पहले वह नौकरी से निवृत्त हुआ था.

बयाजी ने उम्र के भले ही साठ साल पूरे कर लिये लेकिन स्वास्थ्य उसका अभी भी बढ़िया था. हमाल को पंद्रह नये पैसे थमाये और सिर पर संदूक लाद कर बयाजी घर की ओर बढ़ गया. बरतन-भांडों के अलावा संदूक में वह और भी बहुत-सा सामान भर लाया था.

कदम के घर के पास उसका सामना भुजाबा से हो गया. यह भुजाबा गांव का माना हुआ ठग था. सिर के बोझ को गरदन से जमाते हुए बयाजी बोला—नमस्कार पाटिल, सब ठीक-ठाक तो है?

जाति से बयाजी महार था. रीति के अनुसार उसे 'जोहार माई-बाप' कहना चाहिए था. बयाजी के मुंह से 'नमस्कार पाटिल' सुन कर भुजाबा भड़क उठा—क्यों? नमस्कार पाटिल कहने से बामन कुल की पैदाइश लगती है क्या? बुद्ध होते ही अपनी जगह भी भूल गये?

बयाजी समझ नहीं पा रहा था कि वह क्या जवाब दे. एक पल सोचा कि सिर पर का भारी संदूक भुजाबा की खोपड़ी पर पटक दे. लेकिन ऐसा करना भी संभव नहीं था. अब वह अपने गांव पांढरी लौट आया था.

जरा नरमाई से बोला बयाजी — पाटिल, पांढरी गांव की मिट्टी में कदम रखते ही आपने नजर टेढ़ी कर ली. अब तो आखिरी दम तक मुझे यहीं रहना है.

—क्यों, नौकरी पर नहीं लौटोगे? भुजाबा ने पूछा.

—पाटिल, सर्विस पूरी हो गयी. साठ पार कर चुका... बयाजी ने सिर का बोझ जरा-सा ऊपर उठाया और फिर धीरे से टिका लिया.

—हूं...तब तो फंड वगैरा के पैसे भी मिल गये होंगे? भुजाबा टटोलने लगा.

—हां. कुछ अभिमान से बयाजी ने कहा.

—कितने? किसी लालची की तरह भुजाबा ने पूछा.

—मिले हैं थोड़े-से. रोज मजूरी वालों का क्या फंड और क्या पैसा! बयाजी का जवाब था.

—अरे आंकड़ा बता पट्ठे, आंकड़ा! नाटकीय अंदाज में भुजाबा ने कहा.

—मिले हैं, यही कोई दो-ढाई हजार रुपये! बयाजी ने सच्ची रकम बता दी.

और अचानक झूठी सहानुभूति जताते हुए भुजाबा बोला—अरे बयाजी, खोपड़ी पर बोझ है तेरे. पहले घर जा. फिर फुरसत से बातें करेंगे.

—अच्छा-अच्छा, कहते हुए बयाजी घर की ओर चल पड़ा.

उस पल बयाजी ढाई हजार रुपये नकद रकम का मालिक था. वह महार हो या बुद्ध, इससे क्या होता है? मीठी बातें कर बयाजी महार को, छीः छीः नव बुद्ध को चार-पांच सौ से मूंड़ सका तो भी बहुत है. इसी की योजना बनाते हुए भुजाबा ने अपने बाड़े में प्रवेश किया.

जो-जो रास्ते में मिला-बोला, उसे हालचाल बताते हुए बयाजी चबूतरे तक आया. इस चबूतरे को बुद्ध लोग अब 'बुद्ध विहार' कहने लगे थे. 'बुद्ध विहार' के पास चिंदियों की गेंद से सड़क पर खेल रहे लड़कों ने बयाजी को देखते ही खेल बंद किया और 'बैजू नाना आया...बैजू नाना आया' का ढिंढोरा पीटते हुए उसके घर की ओर लपके. बयाजी के आगमन का समाचार सुनते ही उसकी ८५ वर्षीय मां हड़बड़ा कर उठी. 'बयाजी आया' सुन कर वह खिल उठी.

दरवाजे पर आते ही बयाजी की पत्नी ने हृदय की प्रसन्नता आंचल से ढांप ली और आगे बढ़ कर सिर से पेटी उतारी. नाती टांगों में घुस कर लाड़ लड़ाने लगे. आसपास के लड़के 'बैजू नाना' को कुतूहल से निहारते खड़े रहे.

—अरे पिल्लो, घर में तो चलो... बयाजी बोला.

बुढ़िया झुकी. कमर संभालते बाहर आते हुए बोली—जरा वहीं रुक जा.

बुढ़िया ने आगे बढ़ कर रोटी के टुकड़े पर पानी छिड़का और बयाजी पर से उतार कर फेंक दिया.

★ ★

बयाजी की गृहस्थी सुचारु रूप से चल रही थी. उसे आठ संतानें थीं. छह बेटे और दो बेटियां. बेटियां ब्याही जा चुकी थीं और बच्चों वाली भी बन गयी थीं. दो बड़े बेटे खेती-बाड़ी देखते. मंझले दो बेटे सरकारी नौकरी में थे. उनसे छोटा स्कूलमास्टर था और छठवां अभी पढ़ रहा था. बयाजी आने वाला है सुन कर नौकरी वाले दोनों बेटे, पढ़ने वाला बेटा और दोनों बेटियां अपने पिता से मिलने पहले ही घर आ पहुंचे थे. बयाजी अपनी जीवन भर की कमाई में से उनके लिए क्या लाया होगा, सब यही अनुमान लगा रहे थे.

बयाजी ने दूसरे दिन पेटी खोली तो उसमें सिर्फ कुछ बरतन-भांडे और फोटो नजर आये.

बड़ी बेटी यह देख कर बोली—नाना, हमारे लिए कुछ भी नहीं लाये?

दो-तीन बच्चों की मां बन जाने के बावजूद अपनी बेटी का यह बाल-सुलभ सवाल सुन कर बयाजी हंस पड़ा. सब बच्चों पर नजर फेर कर वह बोला— बच्चो, तुम्हारे लिए कपड़े लाता तो वे फट जाते. गहने लाता तो वे आज न कल खिया जाते. मेरी कमाई से सदा के लि कुछ बन जाये, यही इच्छा है.

इतना कह कर बयाजी चुप हो गया. बड़ा बेटा देवगुणी है. वह बोला—लेकिन आप क्या करना चाहते हैं, यह तो बताइए!

—बच्चो, इतना बड़ा परिवार है अपना! मेरी कमाई से एक घर बन जाये, यही इच्छा है. घर दोमंजिला हो. इस दड़बे में कैसे गुजारा होगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

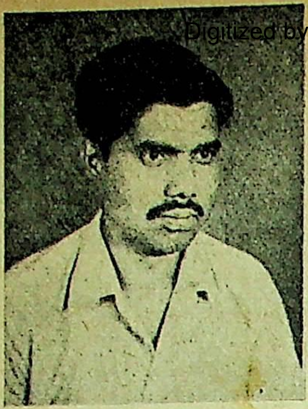

वामन होवाल : कहानीकार

बयाजी के प्रस्ताव से सभी बच्चे खुश हो गये. इरादा पक्का हो गया और वर्ष प्रतिपदा के शुभ मुहूर्त पर दुमंजिले घर की नींव खोदी गयी.

बयाजी दोमंजिला घर बना रहा है, खबर गांव में ऐसे फैली जैसे किसी ने ढिंढोरा पीटा हो. गांव में अब तक सिर्फ कोंडी पाटिल का घर ही दोमंजिला था. बयाजी जैसा महार मजदूर उनकी टक्कर का घर बना रहा है, यह सुन कर कोंडिबा पाटिल गुस्से से भर उठा. और भी कुछ लोग बुदबुदाने लगे—महार अपनी औकात भूल गया.

नींव की भराई चल रही थी. दत्ताराम वडार ने घर बनाने का 'कंटराट' लिया था. नींव के खड्डों में कीचड़, पत्थर, गिट्टी भरी जा रही थी. काम तेजी से बढ़ रहा था.

कोंडिबा को देखते ही बयाजी ने 'जय राम जी की' की और हंसते हुए बोला—इस दोमंजिले घर का काम आपके आशीर्वाद से शुरू किया है, पाटिल.

—वैजू, हाथ में दो पैसे होन पर आदमी को बहकना नहीं चाहिए. दोमंजिला घर बना कर क्या तुम हमारी बराबरी करना चाहते हो? कोंडिबा ने पूछा.

—नहीं नहीं. . .ऐसी कोई बात नहीं, पाटिल. . . बयाजी को दिन में तारे नजर आने लगे.

—तो फिर कैसी बात है? आदमी को अपनी औकात पहचाननी चाहिए.

—ऐसी कोई बात नहीं है, पाटिल. . .बड़ी इच्छा है कि अपना घर हो. . .फिर मैं संतोष से आंखें मूंद लूं, बयाजी घिघियाते हुए बोला.

—अरे भई, घर बनाने को कौन मना करेगा? बना ले, आगे-पीछे बरामदा और बीच में घर! दोमंजिला बना कर क्यों पैसा बेकार बरबाद करता है!

—लेकिन. . .बयाजी बुदबुदाया.

—हां, अगर तुझे गांव में रहना न हो तो बात अलग है. फिर जरूर तू दोमंजिला घर बना. अब जो भी कुछ करना, सोच समझ कर करना! कोंडिबा आखिरी चेतावनी दे कर चलता बना.

बहुत सोच-विचार के बाद बयाजी ने दोमंजि मकान का इरादा त्याग दिया. आगे-पीछे बरामदा औ बीच में घर! यही सही. काम शुरू हुआ. दीवारें उठ गयीं, आगे-पीछे के बरामदे बन गये. बीच का घर ज ऊंचा कर अंदर-ही-अंदर एक और छत बना कर अ अंदरूनी माला बना लिया. उस माले पर जाने के लि रसोईघर में जीना बनाया गया. बाहर से देखने पर को अनुमान नहीं लगा सकता था कि अंदर माला होगा.

* *

घर बन कर तैयार हो गया. गृहप्रवेश समारो धूमधाम से करने का निश्चय हुआ.

बयाजी ने नये घर के सामने शानदार मंडप ड वाया. उस मंडप की सजावट में बयाजी के बेटे दो दि से लगे हुए थे. दूर-पास के गांवों से मेहमान आ चुके थे.

दिन ढलते ही मंडप के चारों कोनों में गैसबत्ति जगमगाने लगीं. उस पीले-सुनहरे उजाले ने वातावरण एक अलग ही रंग भर दिया था. मेहमान गप्पों में व्यस्त थे, कि कोंडिबा पाटिल आ पहुंचा. उसके साथ मुजाब ठग था. विठोबा घायकुंते, परसू मार्तंडा और अन्य चा पांच दादा लोग भी थे. दुल्हन की तरह सजा नया शानदा घर, आगे सजा-धजा मंडप, हंसते हुए चेहरे देख क इन्हें जैसे किसी चिंता ने ग्रस लिया. रसोईघर के जी से बयाजी उन्हें ऊपर ले गया. वह अंदरूनी माला दीवा खाने जैसा दिखायी दे रहा था. दीवारों पर नी तैलरंग था. उस रंग की एक अनोखी मधुर सुग महक रही थी. दीवार पर भगवान गौतम बुद्ध, ब बाबासाहेब आंबेडकर, कर्मवीर भाऊराव पाटिल, महात्म ज्योतिबा फुले आदि महान व्यक्तियों की तस्वी लगी थीं.

पाटिल मंडली के बैठने के लिए बयाजी ने कं बिछाया. पाटिल चुपचाप बैठ गया. उसके साथी अनिच्छा से ही बैठे. बयाजी ने उन्हें पान-सुपारी पाटिल ने स्वीकार तो की लेकिन तुरंत पान-सुपा बयाजी को लौटाते हुए वह बोला—हूं, बढ़िया सब कुछ!

—लेकिन पान-सुपारी तो खाइए. . .बयाजी अ मंजस से बोला.

नकली हंसी ओढ़ते हुए मुजाबा बोला— मान रख लिया. हो गया. पान-सुपारी खानी ही चाहि ऐसा थोड़े ही है. अब हम चलते हैं. कोंडिबा पाटि मुजाबा और उनके साथी तुरंत निकल पड़े. सीढ़ि उतरते हुए मुजाबा को लगा जैसे वह सीढ़ियों पर से लुढ़कता हुआ गिरा जा रहा है.

—महार चढ़ गया है. इसे ठीक करना हो इस अंदाज में सबने एक-दूसरे को इशारे किये.

मेहमानों को बयाजी ने हलवा-पूरी का मीठा भो कराया. पान-सुपारी के साथ गप्पें चबायीं जाने और फिर सामाजिक भजनों का गायन शुरू हुआ.

बयाजी मंडप में डोलता फिर रहा था. कभी कि के पास बैठ जाता और हालचाल पूछने लगता.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर फानूस ... की तरह बिखरे पड़े थे. भजन अब पूरे रंग में आ चुका था. "बाई म्यां स्वप्न पाहिले [illegible] छाती" (सखि, मैंने रात एक सपना देखा और मेरा मन भर आया). जैसे बेमतलब भजनों की बजाय मंडली सामाजिक भजन गा रही थी.

कालेकर बापू मास्तर अपनी पहाड़ी आवाज में गा रहा था—

भीमरायाच्या गोड मुखींचा उपदेश ध्यानी घ्यावा रे,
उद्धारास्तव आम जगाच्या शरण बुद्धाला जावा रे!

(भीमराय के मधुर मुख से प्राप्त उपदेश मान कर दुनिया के उद्धार के लिए बुद्ध की शरण जाइए.)

वातावरण में एक अनोखा जोश और रंग भर गया था कि अचानक विपरीत घट गया.

बयाजी के नये घर में आग लग गयी. आग चारों ओर से अचानक भड़क उठी. बरामदे में बैठी महिलाओं में एकदम हल्ला मचा. मेहमान तुरंत उठ कर हड़बड़ायी हुई महिलाओं को जानवरों की तरह बाहर खींचने लगे. बयाजी तो जैसे पागल हो गया.—मेरा घर. . .अरे मेरा दुमंजिला पर. . .दुछत्ती मंजिल वाला घर जल गया. . .किसने. . .?

—मेरा घर. . .मेरा घर. . . रटते हुए बयाजी जलते घर में घुस गया. जीने से ऊपर चढ़ा, दीवार पर टंगी बुद्ध, बाबासाहेब की तस्वीरें उसने झटपट नीचे फेंकीं. और फिर जैसे ही उतरने के लिए जीने की ओर आया, जलता हुआ जीना ढह गया.

पास के कुएं से गगरिया भर-भर कर लोग-बाग उस भयानक आग पर पानी उलीच रहे थे. लेकिन आग काबू में नहीं आ रही थी.

—बयाजी, नीचे कूदो. . .नीचे कूदो! लोग पुकार रहे थे. औरतें-बच्चे चीख-चिल्ला रहे थे. जीना खाक हो जाने के कारण उस माले पर जाने की कोई राह नहीं थी. लपटों से झुलसता हुआ बयाजी इधर-उधर भागता फिर रहा था—मेरा घर. . .मेरा घर. . . रट रहा था.

और इतने में वह माला धराशायी हो गया. बयाजी नीचे गिरा. लोगों ने उसे खींच कर बाहर निकाला.

बयाजी का पूरा शरीर झुलस गया था. उसका सारा शरीर दहक रहा था. सूखा गला बार-बार पानी मांग रहा था. प्राण कंठ में आ अटके थे. बयाजी की पुतलियां घूमने लगीं. उसका बड़ा बेटा आगे बढ़ा. दुख-दर्द पर काबू पाते हुए उसने पूछा—नाना, आपकी कोई इच्छा शेष है?

—और कुछ नहीं. . .एक दुमंजिला घर बनाओ. . . बयाजी इतना ही बोल पाया और उसकी गरदन लटक गयी. बयाजी का शरीर शांत हो गया.

बयाजी की मां तार स्वर में चीख रही थी—तेरे बाप के हाथ से मिट्टी नहीं मिली. कम-से-कम तेरे हाथ से तो मिल जाती. . .ए बयाजी, अरे मुझसे बोल ना!

बयाजी की पत्नी का विलाप जारी था—किस बैरी ने बदला चुकाया? अरे जल जाने दो यह घर, पहले मेरे मालिक को बचाओ!

घटनाकथा

समाजवादी भारत : नक्सल-पंथ की आड़

सवर्णों ने हरिजनों पर किये गये अत्याचारों को वाजिब ठहराने के लिए नक्सलपंथियों की आड़ भी ली.

जब बलिया जिले के भरौली गांव के हरिजनों ने गत वर्ष जून में सवर्णों के खेतों पर नाममात्र की मजदूरी पर काम करने से इनकार कर दिया तो उन्होंने हरिजनों को मारा. दिन-दहाड़े उनके झोपड़े जला दिये. यह सब हुआ पुलिस की मदद से. फिर भी चैन नहीं मिला तो स्थानीय अधिकारियों ने हरिजन खेत-मजदूरों के इस विद्रोह को नक्सली रंग देने की कोशिश की.

इसके कुछ ही दिन पहले बलिया जिले के नारायणपुर गांव में भी ठीक इसी तरह की घटना को नक्सली रंग देने की नाकाम कोशिशें हुईं. वहां एक हरिजन की हत्या की गयी. कई हरिजनों को पीटा गया. यह बात खुल न जाये, इसलिए स्थानीय पत्रकारों को भी धमकाया गया. □

इस घटना से सारा घर लूला-लंगड़ा हो गया था. सब लोग पानी डाल कर बुझाये हुए चूल्हे की तरह ठंडे हो गये थे.

सुबह पाटिल-पटवारी, एक पुलिस सिपाही और कुछ पंच आये. सब जानकारी हासिल करने के बाद उन्होंने पंचनामा किया: 'पेट्रोमैक्स भड़कने से लगी आग में बयाजी की मृत्यु हुई.'

★ ★

बयाजी का अंतिम संस्कार समाप्त कर लोग मुंह लटकाये लौट आये.

सब लोग मंडप में खिन्न मन से बैठे थे. उसी समय बयाजी का बड़ा बेटा एक कुदाली, फावड़ा और तीन-चार टोकरियां ले कर आया. उसने कुदाली से एक चौकोर खींचा. और जमीन खोदना शुरू कर दिया.

बड़ा बेटा कुदाली से जमीन खोद रहा था. दूसरा फावड़े से मिट्टी भर रहा था. और बाकी मिट्टी उठा कर फेंक रहे थे.

चकित हो कर अतिथियों ने पूछा—बेटा, इस दुख की घड़ी में तुम लोग यह क्या कर रहे हो?

—इसके बिना हमारे पिता की आत्मा को शांति नहीं मिलेगी.

—लेकिन क्या? कर क्या कर रहे हो तुम?

—घर की शुरुआत. अंदरूनी माले वाले नहीं, दुमंजिले घर की शुरुआत! बयाजी के बड़े बेटे का जवाब था. और दुमंजिले मकान की नींव खोदने का काम छहों भाइयों ने दृढ़ निश्चय के साथ शुरू कर दिया. □□□

(अनुवाद : मालती चौधरी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनादि बंध

★ नामदेव लक्ष्मण ढसाळ

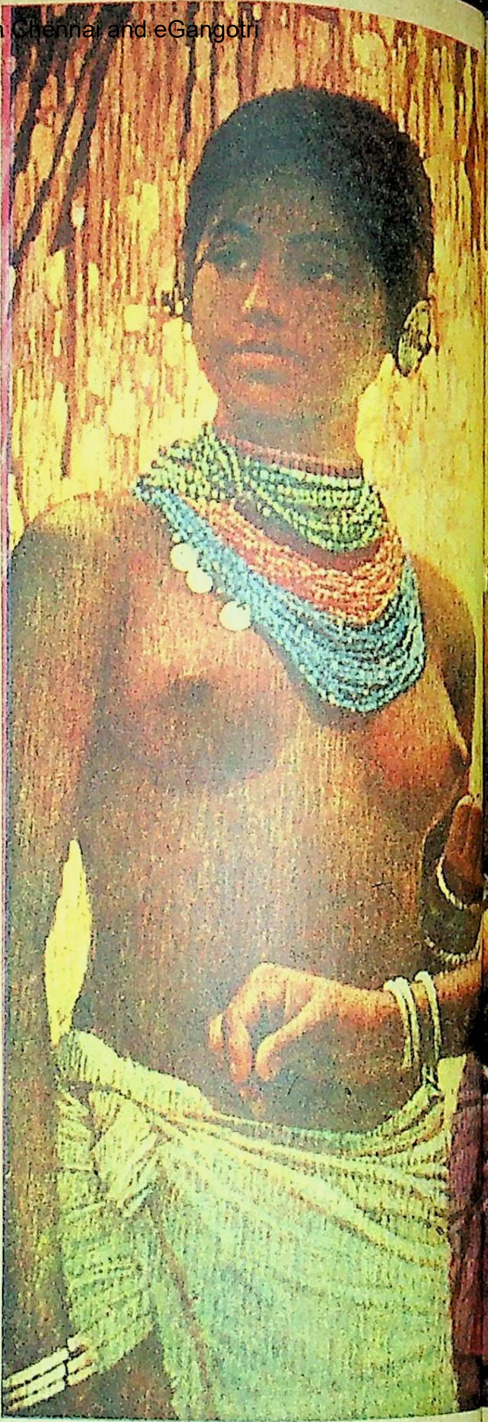

उस झुंड के साथ दूसरे दिन सोते समय वहां की विशाल दीवार के बारे में वह गंभीरतापूर्वक सोचने लगा. और उस दीवार के सहारे रात बिताने वाले लोगों से उसने कहा—अब तुम इस दीवार के सहारे सोने की आदत छोड़ दो, नहीं तो किसी दिन जान गंवानी पड़ेगी. कुछ लोगों ने इसे पागल का प्रलाप समझ उपेक्षा कर दी.

कुछ लोगों ने उसे डांटा—कहां से चला आया है. बे लौंडे ? चल, दीवार पकड़ ले. और कुछ उसे तिरस्कृत करते हुए चीखे, हमारी कई पीढ़ियों ने इस दीवार के सहारे जिंदगी काटी है. इसी के नीचे वे पैदा हुए, पले बढ़े और मर गये. इसी के आसरे उन्होंने नीड़ बनाये, अंडे-बच्चे पैदा किये.

उनकी आवाजों में जरा भी मृदुता नहीं थी. परंपरा के बोझ के नीचे वे मर्यादा से भी ज्यादा झुक गये थे. अंधे हो गये थे. समाजशास्त्र की भाषा में उनका रूपांतर कोयलों में हो गया था. आत्मशक्ति जैसे उनमें पैदा हो ही नहीं सकती थी. उनके हर शब्द में सिर्फ पूर्वजों की संस्कृति के अस्तित्व की ध्वनि ही गूंज रही थी. उस दीवार से अनादिबंधन था. इस जन्म-जन्मांतर के बंधन से बंधे से गये थे. वह दीवार उनके लिए अपने पूर्वजों की एकमात्र निशानी थी. पुरखों की इस देन को वे पूरे जतन से संभाले हुए थे. लगता था जैसे इस दीवार से उन्हें अपने बाल-बच्चों से भी ज्यादा प्यार है. उनके व्यवहार से लगता कि दीवार को छोड़ना अपने आप को छलना होगा.

और उनके व्यवहार को नजरअंदाज करते हुए वह आगे बोला—इस खोखली दीवार की बजाय तुम अपने अस्तित्व के बारे में ज्यादा सोच-विचार करो. और वे क्रोधित हो उठे जैसे किसी ने उनके उद्देश्य पर आघात कर दिया था. उसे घृणापूर्वक देखते रहे. रात भर हंगामा करते रहे. एक स्वर में पागलों की कहानियां कहते-सुनते रहे.

उसके लिए पलकें झपकना भी मुश्किल हो रहा था. इस झुंड में वह अकेला महसूस कर रहा था. उसे लग रहा था जैसे किसी तेज हथियार से उसकी चमड़ी उतारी जा रही हो. वह तिलमिलाने लगा. बढ़ता हुआ चंद्र-प्रकाश उसके लिए निरर्थक हो गया. डोलते हुए पेड़ और निश्चल इमारतें, सब कुछ लुप्त हो गया था. उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

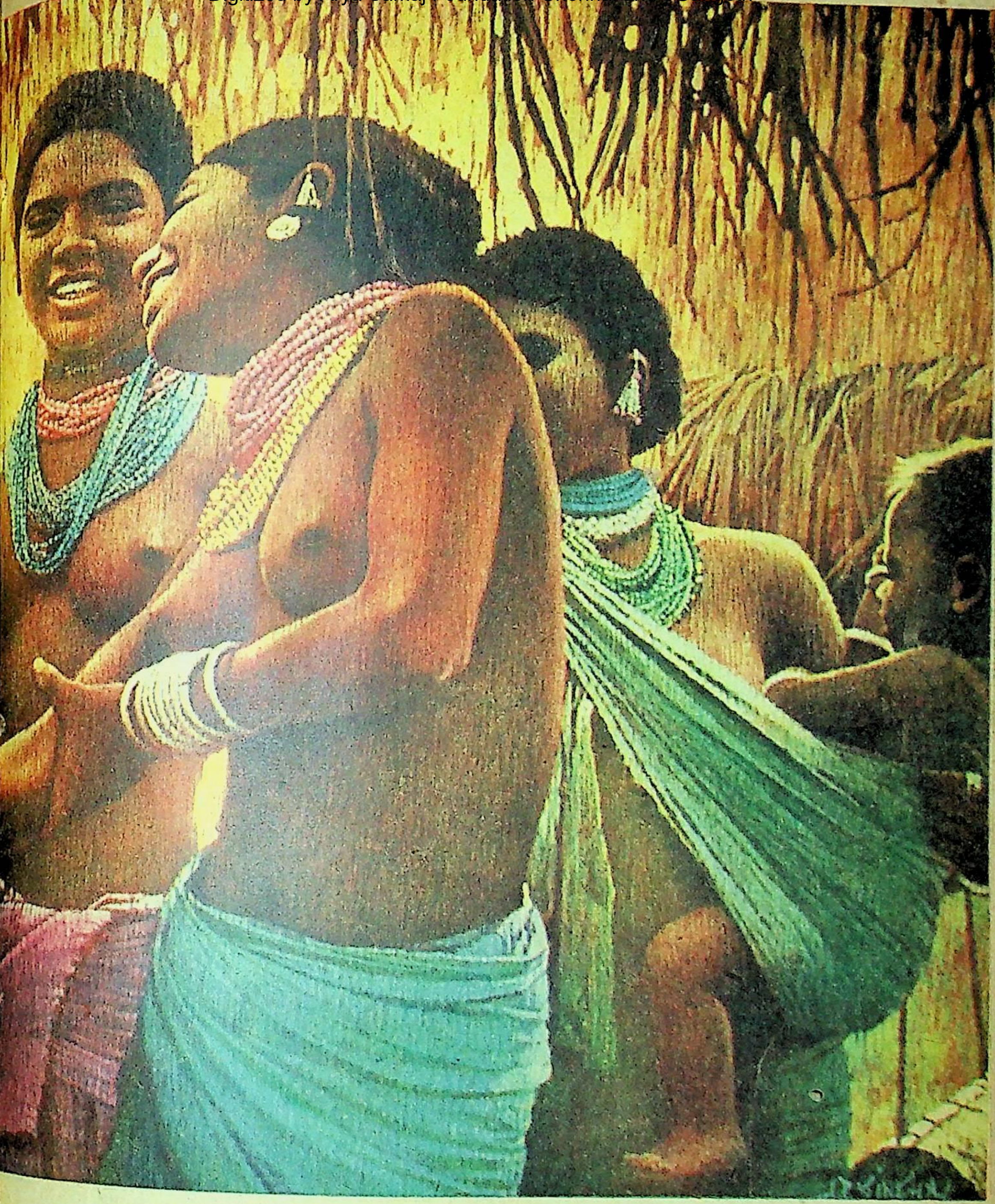

रहा था जैसे घनघोर अंधियारे में से मानवों की विशाल भीड़ उसे ग्रसने चली आ रही है.

परेशान होकर वह बिछौने में उठ बैठा. बगल में सोये हुए बूढ़े को जोरों से हिला कर उठाया और पूछा—दीवारों के अंदर रहनेवाले अमीरों के वैभव का उद्गम कहां है?

बुड्ढा दाढ़ी के बाल नोंचता हुआ बोला—तकदीर, बेटा तकदीर! इन शब्दों को सुनकर वह दंग रह गया. अचानक उसकी नसों में रक्तप्रवाह तेज हो गया. वह मन ही मन बुदबुदाया—साला बुड्ढा, मसान पहुंचने की तैयारी है फिर भी. . . .हाथ में तलवार होती तो साले की गर्दन धड़ से अलग कर देता. उसने पच्च से थूक दिया. बुड्ढे को उपेक्षित कर वह बिछौने में लेट गया.

भारतीय आदमी की औसत आयु पचास वर्ष.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

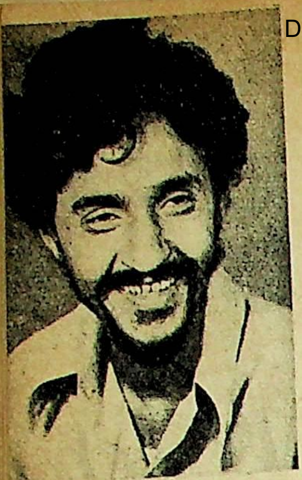

नामदेव लक्ष्मण ढसाल : कवि और पैंथर नेता

ारी आयु पूरा परिश्रम करने पर भी वह कितनी संपदा तोड़ लेगा ? उसमें कितनी ईमानदारी होगी? उसकी ोपड़ी को जैसे गिरमिट छेदने लगा. विशाल यंत्र, ारखाने, इमारतें, मोटरें, ऐशोआराम, मांसल युवतियां, बरे कुत्ते उसकी आंखों के आगे घूमने लगे. शरीर पसीने तर हो गया. वह अब नींद की जरूरत महसूस रने लगा. लेकिन सोना उसके लिए संभव नहीं था. स बूढ़े से तो वह १०० साल पहले वाला बूढ़ा अच्छा जसे उसने अभी नहीं देखा था, सिर्फ किताबों में पढ़ा ा. बुढ़ापे के बावजूद शास्त्रीय पद्धति से वस्तुस्थिति ा विवेचन करता था.

एक. . .दो. . .तीन. . .चर्च का घंटा बजता जा रहा था. ेकिन उसकी पसंद का चेहरा नहीं बन पा रहा था. इस ंद्व को गति देने वाली स्वरावलि दूर कहीं उभर रही थी.

इतिहास के अध्ययनकर्ता जानते हैं कि शुरू-शुरू में पूंजी का संचय खुलेआम लूटपाट कर के ही हुआ है. धूर्त लोगों ने सोना-चांदी, अन्य मूल्यवान वस्तुएं और धन-संपत्ति बड़ी मात्रा में लूटी. तरह-तरह के हथकंडों से सामाजिक मिल्कियत की जमीन हड़पी और प्राचीन काल के इस पाप के कारण ही बहुसंख्य लोगों में दरिद्रता जन्मी. अतएव बहुसंख्यकों के सामने अपने आपको बेचने के अलावा कोई रास्ता ही नहीं बचा. एक आवारा कुत्ता उसके पास आया. उसके खुले हाथ को चाटने लगा. कुत्ते की गर्म गीली जीभ के स्पर्श से उसे कुछ राहत महसूस हुई. उस घटाटोप अंधेरे में भी वह दीवारों के पार की इमारत को आंखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा. वे इमारतें उसे अजीब तटस्थ और उदासीन लगीं. वह दूर सितारों में खो गया. पिछले दो दिनों से वह यहां आ टिका था. लेकिन किसी ने भी उससे नाम-पता नहीं पूछा था. अपने जैसा ही कोई आसरे का खोजी है! इससे ज्यादा उन दीवाराश्रितों ने उसकी ओर ध्यान देने की जरूरत नहीं समझी थी.

--रंडी. . .दर्द होता है. . .उसने उठ कर अगल-बगल निहारा. चार हाथ की दूरी पर महारोगी युगल संभोग के लिए लिपट-चिपट रहा था. उस अंधेरे में जुडवां जैसे जुड़े हुए वे सड़े शरीर उसे ड्रैगन जैसे लगे. उसे उबकाई-सी आ गयी. शरीर गल गया लेकिन मन अभी नहीं गल पाया. उसमें अभी भी भूख बरकरार है. और ये दीवार से माथा फोड़ने वाले लोग? शरीर मजबूत होने के बावजूद उनकी सारी भूख ही मर गयी. उनके मन महारोगी हो गये. शोषकों के खिलाफ वे कभी उठ ही नहीं सकते. भूख लगने पर आक्रोश व्यक्त नहीं कर सकते. वह उठा, शरीर के निचले हिस्से पर फटी चादर लपेट कर चल पड़ा.

एक-एक मुर्दे को वह लांघ रहा था. तेजी से आगे बढ़ने लगा. एक अजीब-सी अनुभूति उसे होने लगी. दीवार से लगे सारे मैदान में हंगामा होने लगा. लंगड़े, लूले, अवैध, अंधे, खूनी, चोर, बटमार, गंजेड़ी, शराबी, जिनकी जिंदगी को कैंसर ने जकड़ लिया. हर चीज पर जिनकी लार टपकने लगती है, उन सबके धड़ गोलाकार घूमने लगे. वह रोमांचित हो उठा. पूर्व दिशा में सफेदी उभरने लगी थी.

* *

उस दीवार से उसे जल्द दूर चला जाना था. आवागमन के रास्ते पर वह ज्यादा देर ठहर नहीं सकता था. यह दीवार लुकाछिपी खेलने के उपयुक्त थी इसलिए उसने किसी तरह दो दिन इस झुंड के बीच काटे थे. अब उनके बीच रहना खतरे से खाली नहीं था. पुलिस उसकी खोज में थी. 'पूंजीवादी सत्ता उखाड़ फेंको'-जैसे आशय के पत्रक कुछ दिन पहले उसने और उसके मित्रों ने प्रसारित किये थे. इस कांड के अन्य लोग गुनाह कबूल कर छूट गये थे. क्योंकि उनके पास खाने के लिए बहुत-कुछ था.इस बहुत-कुछ का संस्कार वे झटक नहीं पाये थे. एक ही आघात में वे झुक गये थे. कहीं न कहीं उनके पैरों तले जमीन थी. लेकिन उसकी कई पीढ़ियां झुक-झुक कर राख हो गयी थीं. राख होने के लिए मन अंधा होना चाहिए. समय ने उसके मन को अंखें दे दी थीं. और इसलिए उसने जिद ठान ली थी. माईबाप सरकार की पकड़ में नहीं आ रहा था. और उसके पकड़े न जाने के कारण उनके अंतिम हित में बाधा आने वाली थी.

मशीन, जानवर, इमारतें, पेड़, जमीन, पहाड़, की तरह आदमी भी किसी की मिल्कियत बन जाय, यह उसे पसंद नहीं था. और इस देश की माई-बाप सरकार ठीक इस तरह व्यवहार कर रही थी. आदमी को यही व्यवहार मिल रहा था. मुट्ठी भर लोगों को बहुसंख्या का मालिक बना रही है. उनकी सारी जिंदगी चाकरी करते बीत गयी. अछूत के रूप में बीत गयी. अब वह राजमार्गों पर स्वाभिमानपूर्वक घूमना चाहता है. अपनी बाहुओं के बल पर जी सकता है, यह दिखाना चाहता है. उसके कानों में महात्मा फुले गूंजने लगे. डा. आंबेडकर की गर्जनाएं घूमने लगीं. सब महार, मांग, भंगी मोहल्ले-गांव की सीमा के अंदर स्पर्श कहलाने वाले जानवरों के बीच बसाये जाने चाहिए. बाधा पहुंचाने वालों को खौलती कढ़ाई में डुबो देना चाहिए. जो वर्ण-द्वेषियों के सिर कलम कर गांव की सीमा पर टांग देने चाहिए क्योंकि यह लोग समझने की सीमा पार कर चुके हैं. वर्ण श्रेष्ठता की घोषणा कर वे विशेष अधि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कार, प्रतिष्ठा, धन-संपत्ति, सत्ता सदा के लिए केंद्रित कर लेते हैं. वह दौड़ पड़ा. वह दीवार, वे दीवाराश्रित दूर-दूर होने लगे और अचानक वायरलेस का सायरन गूंजने लगा. क्या हो रहा है, यह समझने से पहले खाकी ड्रेस वाले तस्कर उस पर टूट पड़े और उठा कर गाड़ी में बिठा दिया.

इस दौरान वह बिल्कुल खामोश रहा. 'चलो ड्राइवर', बस इतना ही सुनायी पड़ा. विचार-चक्र भी उतनी ही तेजी से घूमने लगा. सब असंगठितों को संगठित करना चाहिए. उन्हें वर्ग-संघर्ष सिखाना चाहिए. उत्पादन पद्धति के अनुसार समाज के दो वर्ग हैं. एक वर्ग कामगार, किसान, अछूत, महिलाएं और दूसरा इन सबका मालिक, भूस्वामी, पूंजीपति, साहूकार, जमाखोर आदि मुट्ठी भर लोग. इन लोगों के खिलाफ पहले वर्ग के लोगों को लड़ना चाहिए. लेकिन वे संगठित नहीं हैं. धर्म, जाति, श्रेणी नामक दीवारें उनके बीच खड़ी हैं. दुनिया की किसी भी दीवार से इनकी तुलना नहीं की जा सकती. यह अदृश्य दीवारें खून में समायी हुई हैं. उन्हें गिराना चाहिए, उन्हें रौंदना चाहिए, उनकी होली जलानी चाहिए. कुदाली-फावड़ों के वार किये जाने चाहिए.

★ ★

वह होश में आया. गाड़ी का जायजा लेने लगा. सिपाहियों के चेहरे खुशी से दमक रहे थे. उनके चेहरे देखने लगा. कोई काला, कोई खुरदरा, कोई लंबोतरा, कोई चौकोनी, कोई दढ़ियल तो कोई सफाचट. लेकिन उसे एक ही साम्य नजर आ रहा था. सब जैसे बीमार कुत्तों के चेहरे हों! उसने आंखें बंद कर लीं. वह अपने बारे में सोचने लगा. वह अकेला विद्रोही है. घर-बार, मां-बाप, भाई सब उसके कारण संकट में फंस गये थे. उसने अपने शरीर पर हाथ फेरा. लगा जैसे वह पूर्णतः नग्न हो. उसके कपड़े गल गये थे. लाचार बनाने वाली माया, स्नेह, प्रेम सब कुछ समाप्त हो गया था. वह अंदर ही अंदर हुंकार रहा था. मेरे अंदर से आंधी उठनी चाहिए. वह अकेला है. पूना जैसे शहर में घूमने पर समझ में आ जाता है कि उसे क्या-क्या नष्ट करना है, किस-किस से टक्कर लेनी है. वह कांप उठा. समाज के सब स्तरों से यह आंधी उठनी चाहिए. समाज व्यवस्था का सबसे निचला स्तर अछूत इस आंधी में अग्रदूत होना चाहिए. लेकिन यह कैसे संभव है? उन्होंने अपने लिए दरवाजे सदा के लिए बंद कर रखे हैं. कुछ कहते हैं, इस सब के लिए बहुत समय चाहिए.

मैं यह नहीं कहता कि यह सारा परिवर्तन मेरी अपनी जिंदगी में ही हो जाय. लेकिन वह दिन ज्यादा से ज्यादा पास लाने के लिए कम से कम मुझे तो तीव्र से तीव्रतर होना चाहिए. अपने आप को नपुंसक परिवार के जतलाते हैं. सोये हुए को दो लातें जमा कर उठाया जा सकता है लेकिन जो सोने का ढोंग कर रहा हो उसे कैसे जगाया जाये? सब निर्बुद्धि हैं. हलदी के आधे टुकड़े में पीले होने वाले. वे कभी भी क्रांति में नहीं कूदेंगे. पुरानी नींव खोद कर नया घर नहीं बनायेंगे. पुराने को ही लीप-पोत कर संतुष्ट हो जायेंगे. मैं, मुझे कम से कम अपने लिए ही क्रांतिप्रवण होना होगा. तभी यह सनात दीवार टूटेगी. मुझे शोषण की अनुभूति है. मेरी चम रक्तहीन है.

कस्टडी में उसे कब ढकेला गया, मालूम नहीं पड़ा.

—आइए जनाब.

—किस खुशी में बिना भाड़े की खोली में तशर लाये?

वह होश में आया. सवालिया चेहरे पर से न हटाकर बोला—राजकैदी हूं.

वे कुछ कुछ चकित हुए. फिर दूर हट गये.

वह दूसरे कैदियों से नाम पूछने लगा, गुनाह पू लगा.

—मैं चीनाशंकर.

—मैं खटमल.

—मैं चट्टान.

—मैं मर्डरबाज.

—मैं कैंचीबहादुर.

—मैंने एसिड फेंका.

—मैंने पुलिस को जिंदा जलाया.

कस्टडी का इतिहास बोल रहा था. उसने लोगों को पास बुलाया.

उनके हाथ थामे, उन्हें निहारा, उनके सिर सूं वह कस्टडी सूंघी और उसकी नजर दीवारों घूमने लगी. दीवार पर तस्वीरें ही तस्वीरें. गुनाहग भावनाओं की तस्वीरें. किसी ने आंबेडकर चि किया था तो किसी ने साइ बाबा. किसी ने माओ, कि ने शर्मिला, किसी ने सरस्वती, किसी ने नग्न शरी किसी ने इंद्रियों का आकार. किसी ने बलात्का किसी ने बंदूकधारी, किसी ने चाकूबाज. उसने दो के हाथ झटक दिये और जमीन पर कुछ खोजने लग उसे एक कील मिल गयी. उसका खून गरम होने लग आंखों के सामने दुनिया की क्रांतियां साकार होने लग रूस, चीन, क्यूबा, श्रीलंका, बांगला देश, वियतना फ्रांस. . .और वह होश खोने लगा. कस्टडी की दीवा पर हिसाब लिखने लगा. हल करने लगा.

कस्टडीवासी चकित होकर उसे देख रहे थे. भयभी हो रहे थे. और उसे फिर दो दिन पहले वाली वह दीवा याद आ गयी. उस दीवार के पार के अमीर याद आ आश्रित याद आये. वह तेजी से ठहरने वाली दीवा की नींव चित्रित करने लगा. गिर गयी, गिर गयी, दीवा गिर गयी. वे नपुंसक मर गये. देखो, उस दीवार व रौंदते हुए मुक्ति-सेनाएं चली आ रही हैं. ए अमके इस टुकड़ी का लेफ्टनंट बन जा, तमके तू उस आर्टिल टुकड़ी का कर्नल बन. उस कस्टडी के एक गुनाहगा पर वह उंगली रखने लगा. गुनाहगारों को प्रज्ज्वलि करने लगा.

उस पुलिस स्टेशन के सिपाही और अधिकारी दौड़ धूप करने लगे. बेचारे समझ नहीं पा रहे थे कि व अनादिबंध तोड़ रहा है. □□□

(अनुवाद : लच्छीराम चौधरी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंकर राव खरात ★ पत्र

स समय मैं छोटा था. गन्ने रखाने जाया करता था. पढ़ने नहीं जाता था. रात का समय था. मेरे पिता घर में बैठे हुए थे. इतने में गेनबा तराल ने आकर मेरे घर ़ पत्र दिया. पिता ने वह पत्र हाथ में लिया और बाहर कल आये. गेनबा तराल ने मेरे पिता से कहा—अरे मा, तेरे नाम से यह 'पतर' आया है, देख! पिता ने ो हाथ में ले लिया और आंखें फाड़ कर उसे देखने लगे.

बात तो दरअसल यह है कि आज तक मेरे पिता को सी ने कोई पत्र भेजा ही नहीं था. जो भी खबर आती, ़ के मुंह से दूसरे के मुंह जाती. उस समय यही एक स्तविक रूप में डाक से आया पत्र था. मेरे पिता ने व का मजदूर-महार होने के नाते डाक के कागज-पत्र ़ गांव से दूसरे गांव के पाटील-तलाटी, मामलतदार-लदार-फौजदार को गांव के काम से पहुंचाने का काम वश्य किया था. इसी में उनका आज तक का जीवन ता था. और पत्र भेजने जैसा कोई था भी तो नहीं!

मेरी बहन अपने पति के घर थी. पति का काम ा था कि डाक से पत्र आने की आशा ही नहीं थी. , पिता की एक बहन बंबई रहती थीं. अब इस ायु में वह पत्र से क्या समाचार भेजती. उसने तो बई जाने के बाद कभी कोई पत्र भेजा ही नहीं. वैसे त्र भेजने योग्य कोई घटना घटी भी तो नहीं थी.

पिता ने तत्काल गेबा से पूछा—गेनबा, यह 'कागद' झे ही आया है न?

—हां, तुम्हें ही.

—इस पर मेरा नाम रामा तात्या महार ही ़खा है न?

—फिर क्या! इस पर पता भी अपने गांव का ा है.

और वह इत्मीनान से छप्पर में बैठ गया और मेशा की भांति बोला—रामा, जरा तंबाकू तो दो.

किसका पत्र है, जानने के लिए मैं भी बाहर निकला. लट-पलट कर देखने के बाद मेरी भी अकल काम नहीं र रही थी.

पिता ने तंबाकू देकर गेनबा से पूछा.

—गेनबा किसका 'कागद' है यह भला?

—मुझे क्या मालूम! मेरे हाथ आया, तुम्हारे ास लाया. खरसुंडी के बाजार में डाकिये ने रामोशा ो दिया था.

—उसे पूछना तो चाहिए था कि पत्र में क्या लेखा है.

—हां, यह तो है, मैं ही पूछना भूल गया.

ऐसा कहकर गेनबा ने पड़ोस के छप्पर की ओर ुका. पिता ने पत्र मेरे हाथ में दिया. दीपक के उजाले में उस पर पुनः दृष्टि डाली.

—इस पत्र में कुछ अधिक लीपापोता नहीं गया है.

—ऐसा कहते हो! गेनबा ने अचरज से पत्र हाथ में ले लिया और रोशनी में उस पर दो ही सतरें लिखी देख कर चमत्कारिक रूप से बोला—रामा, तुझे पत्र आया भी तो आधा ही आया, देख.

अब पिता के मन में संदेह घर कर गया.

—सच कहते हो, पत्र आया. भी तो आधा!

—अब तलाटी से पढ़वाये वागैर क्या पता क्या लिखा है.

—यह भी सही है. सबेरा होते ही तलाटी के पास जाता हूं.

—किंतु रामा तलाटी आज और कल गांव में नहीं है!

—ऐसी बात, फिर कहां जाकर पढ़वाएं?

—क्यों न अपने गांव के बामन मास्टर के पास जाओ.

—ऐसा ही करूंगा, सबेरे उठने के साथ ही चला जाऊंगा.

गपशप के बाद गेनबा अपने घर लौट गया.

★ ★

दूसरे दिन सबेरे मेरे पिताजी सबेरे ही पत्र लेकर घर से निकल पड़े. मैं भी साथ गया. दोनों सीधे मास्टर के घर पहुंचे.

सबेरे के पहर मास्टर के दरवाजे पर रंगोली की हुई थी. हम दरवाजे पर खड़े रहे, कोई न दिखा तो पिता ने पुकारा—मास्टर हैं क्या, घर में?

—कौन है रे?

—मैं रामा महार हूं, जी!

मेरे पिता की यह आवाज सुनते ही मास्टर की पत्नी चटपट बाहर आ पहुंची. उसका ध्यान ज्यों ही मेरे पैरों की ओर गया, वह चीख पड़ी—ये लड़के, नीचे देख! दिखता नहीं, तूने रांगोली मिटा दी!

ऐसा सुनते ही मैं झटके से दूर जा खड़ा हुआ मानो विच्छू ने डंक मार दिया हो.

इस पर वह पुनः बड़बड़ायी—मरे! चलते समय आंखें फूट जाती हैं.

—उसे मालूम न था, बच्चा ही तो है! पिताने कहा.

अब कहीं जाकर मास्टर की पत्नी ने भीतर आवाज लगायी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

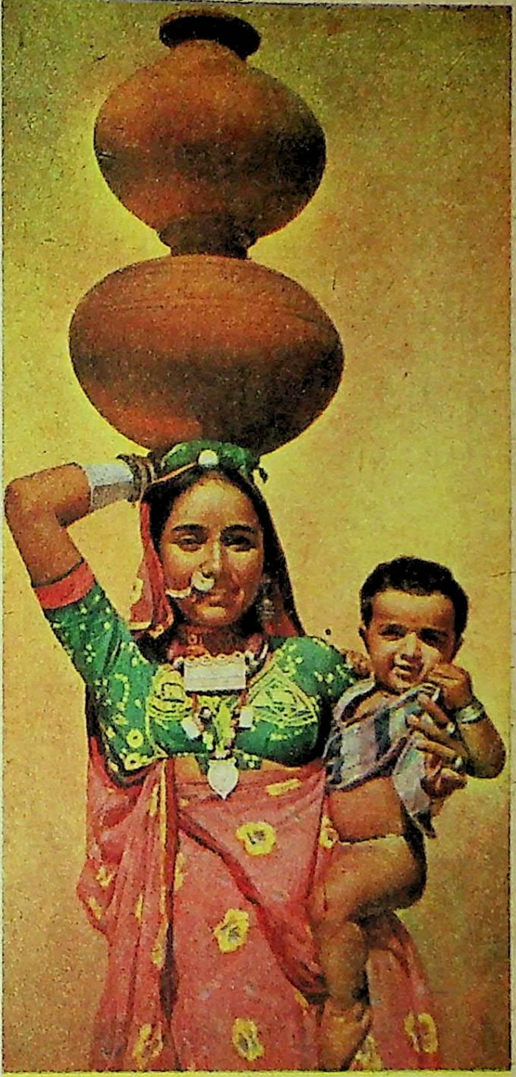

अडवानी आर्लीकान के सौजन्य से

—अजी, भीतर क्या कर रहे हैं आप? दरवाजे पर महार खड़ा है. चार लकड़ियां ही कटवा लीजिये. घर में ईंधन है ही नहीं.

फिर मेरे पिता की ओर मुड़ कर बोली — हमारा ईंधन खतम हो गया है. लकड़ी के चार टुकड़े तो काट दे!

इतने में ही मास्टर बाहर आये.

—क्यों राया, सबेरे-सबेरे ही दरवाजे से आ लगे?

—हां, ऐसा ही एक काम आ पड़ा, पिता बोले.

भीतर जाते-जाते मास्टर की पत्नी बोल गयी—सुना, महार से लकड़ी कटवा लो, दरवाजे की ओट में रखी है.

—ठीक है, ठीक है! क्या चार लकड़ियां काटने के लिए रामा न कहेगा, मास्टर सहज भाव से बोले फिर पिता की ओर गर्दन मोड़ कर कहा, क्यों कैसा काम है?

—कोई बड़ा काम नहीं है? यही 'कागद' पढ़ कर बताना है कि क्या लिखा है इसमें.

ऐसा कहकर उन्होंने अपनी बंडी की जेब से पत्र बाहर निकाला और ऊपर से ही मास्टर के हाथ पर रखनेवाले थे कि मास्टर ने काम बतलाया—अरे रामा! घर में ईंधन के लिए लकड़ी के चार टुकड़े तो काट दे!

—मैं कहां 'नहीं' कह रहा हूं. कुल्हाड़ी तो दीजिये! चार टुकड़े काट देता हूं.

—अजी, वह कुल्हाड़ी कहां है? आज के लिए चार टुकड़े कटवा लूं!

इस पर भीतर से कर्कश आवाज आयी—अजी, आजके लिए क्या, चार-आठ दिनों के लिए कटवा लीजिये.

यह सुनते ही पिता ने स्वयं से बड़बड़ा कर कहा—तेरे बाप के घर का महार है क्या, अच्छा पकड़ा गया!

* *

सचमुच ही यह क्रोध आने जैसी ही बात थी. किंतु कोई दूसरा रास्ता भी तो न था. पत्र पढ़वाने का काम नहीं होता था तो भी गांव के मास्टर के घर जाने पर लकड़ी तो काट ही दी जाया करती थी. पिता ने पहले भी कभी मना नहीं किया था, यह बात जुदा है. आज तो वे काम से आये थे. पत्र पढ़वा लेना था. किंतु आज वे खुशी से लकड़ी काट कर देनेवाले नहीं थे. ऊपर से मास्टर की पत्नी के बोल सुन कर वे खीझ उठे और बड़बड़ाने लगे.

हमारे तो सिर्फ दो आंखें थीं, किंतु मास्टर के शिक्षण द्वारा चार थीं. ऊपर से वह गांव का ब्राह्मण मास्टर था. इतने में फिर से दहलीज के भीतर पैर रख कर मास्टर ने पत्नी से पूछा—अजी, लकड़ी तो कटवा लेता हूं. किंतु कुल्हाड़ी कहां है?

—वहीं वाजू के कोने में तो पड़ी है! भीतर से कर्कश आवाज आयी.

सुनते ही मास्टर ने कुल्हाड़ी ला पटकी और पिता से बोला—रामा, चटपट चार दिन की लकड़ी काट दे! फिर मैं तेरा पत्र पढ़ देता हूं. तब तक मैं स्नान कर आता हूं, पानी ठंडा हो रहा है!

—मास्टर लकड़ी भी तो दीजिये! क्या काटूं? पिता ने कहा.

इस पर मास्टर ने कोने में पड़ी हुई भारी लकड़ी दिखलाई —अरे, वह कोने में पड़ी लकड़ी काट!

—मास्टर, इसे वहां से हटाये बिना तो बड़ा समय लगेगा!

—अरे रामा, लकड़ी हटाना क्या हमारा काम है!

—अजी, उसे बीचोबीच आरी से चीर लेनें से टुकड़े करने में सरलता होगी.

—तू भी ठीक कह रहा है किंतु आरी कहां से लायी जाये? ईंधन कब मिलेगा, भोजन कब तैयार होगा, और मैं स्कूल कब जाऊंगा?

पिता ने फिर कहा—अरे जैसा है, वैसे ही काट दे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—किंतु मास्टर, ऐसे तो मेरा पसीना निकल जायेगा.

—अरे, निकलने भी दे आज के दिन!

पिता बेचारे क्या करते, बोले—अरे, कभी आज तक आपके काम को न कहा है!

—हां, अब तुम ठीक-ठीक बातें कर रहे हो!

अब पिता ने पत्र मास्टर के हाथ में देने के लिए उद्यत हो कहा—यह पत्र तो पहले देख लीजिये.

—अरे नहा कर निकलते ही पत्र पढ़ दूंगा, तब तक तू लकड़ी भी काट लेगा.

—अजी, किंतु एक नजर तो डाल दीजिये जरा!

यह कहकर पिता ने पत्र ऊपर से मास्टर के हाथ पर गिरा दिया. किंतु मास्टर ने उसे पढ़ा नहीं, लेकर भीतर चले गये. पत्र रख कर स्नान के लिए जाते-जाते कह गये—लकड़ी काटने के साथ ही पत्र पढ़ दूंगा! जल्दी से काट दे.

* *

पत्र पढ़ाने के लिए पिता को लकड़ी काटना ही था. वैसे पत्र पढ़वाने के बदले लकड़ी काटनी कोई विशेष बात न थी. मास्टर के घर बिना प्रयोजन आते-जाते पिता ने अनेक बार काटकर लकड़ियों का ढेर लगा दिया था. इस अर्थ में आज का काम भी विशेष काम नहीं था.

पिता ने बंडी निकाल कर रख दी. धोती को ऊपर चढ़ा लिया. आगे बढ़ कर लकड़ी के कुंदे को हाथ लगा कर एक ओर खींचना शुरू किया. मैंने भी हाथ लगाया. अब लकड़ी कोने से एक ओर बाहर की ओर लग गयी थी.

अब उन्होंने कुल्हाड़ी लकड़ी पर टिकाई, हथेली थूक से गीली की, दूसरी हथेली पर मली, फिर कुल्हाड़ी के बेंट को कस कर पकड़ा. अब वे लकड़ी पर कुल्हाड़ी का वार करने लगे, टुकड़े कट-कट कर अलग गिरने लगे.

पिता जब कुल्हाड़ी को ऊपर उठा कर लकड़ी पर गिराते तो उनके हाथ के उठने और गिरने के साथ-साथ उनके पेट की पसलियां भी दिख जातीं.

उनका शरीर पसीने से नहा गया था. मुंह पर आ रहे पसीने को रह-रह कर वे हाथ से पोंछते जाते थे.

* *

इस तरह लकड़ी पर कुल्हाड़ी चलाते-चलाते पिता ने लकड़ियों का ढेर लगा दिया. खोंसी हुई धोती को अब उन्होंने नीचे गिरा दिया.

बंडी उठा कर पहन ली. सिर पर पगड़ी पहन ली और दरवाजे की सीढ़ी पर बैठ कर भीतर की ओर आवाज दी—मास्टर, ओ मास्टर!

शंकरराव खरात, कहानीकार, उपन्यासकार

साथ ही मास्टर बाहर आ निकले और पूछा—क्यों रामा, लकड़ी काट ली न?

—वह देखिये, ढेर के ढेर!

मास्टर ने शाबासी देते हुए कहा—बहुत अच्छे! यह तो कई दिन चलेगी. फिर कभी आये तो आठ दिन के लिए काट देना!

—ठीक है, उसकी चिंता न करिये. हां अब तो उतना पतर पढ़ दीजिये.

—अरे वह तो मैं पढ़ना भूल ही गया!

इतना कह कर मास्टर ने कोने में रखा हुआ पत्र उठा लिया और आश्चर्य से बोले—अरे, यह पत्र तो आधा ही है! क्या हुआ?

अब मास्टर ने वह पत्र अपनी आंख के नजदीक किया. बार-बार मुंह ही मुंह में पढ़ते गये, फिर मास्टर के होठ हिले और वे पिता से पूछने लगे—अरे रामा, बंबई में तेरी कोई बहन थी?

—हां, थी! धोंडाबाय!

—अरे उसे पिछले मंगलवार को देव-आज्ञा आ गयी, आज दस दिन हो गये.

—हे भगवान, धोंडाबा चली गयी, क्या कह रहे हैं! चकित होकर पिता ने मास्टर से फिर कहा, मास्टर, पूरा कागज जरा साफ-साफ पढ़ दीजियेप्पु तो.

अब मास्टर ने वह पत्र नजर के सामने रखा और एक-एक शब्द अलग करके पढ़ा—

रामा तात्या महार को दंडवत—

तेरी बहन धोंडाबाई को इस मंगलवार देव-आज्ञा आ गयी. सूचना दे रहा हूं!

मास्टर ने पत्र को जोर से पढ़ कर पिता के शरीर पर फेंक दिया. पिता चुप हो गये. गर्दन झुका कर वे सीढ़ियों पर से उठे और मास्टर के घर से बाहर निकल पड़े.

रास्ते में अपनी डबडबायी आंख को उन्होंने पोंछ लिया. □□□

(अनुवाद : रेखा सिंह)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सवर्णों की पुलिस

गत वर्ष बंबई के वरली क्षेत्र में हरिजनों की ३० चालों पर हमला हुआ. पुलिस भी इस हमले में शामिल थी.

हमले का कारण सवर्णों ने यह बताया कि हरिजनों की इन चालों में हिंदू देवी-देवताओं का अपमान होता है, गो कि यह बात सही नहीं थी: ब्लिट्ज के संवाददाता के अनुसार वे कई देवी-देवताओं के पूजक थे. अगर हरिजनों ने इनका अपमान भी किया होता तो भी इन्हें किसने यह हक दिया था.

बात कुछ दूसरी ही थी. उन हरिजनों ने एक सभा में यह निर्णय लिया था कि वे चुनाव का बहिष्कार करेंगे. इसके अलावा इस सभा में कोई दूसरा मुद्दा उठा ही नहीं था. लेकिन हरिजनों के इस निर्णय के दूसरे दिन ही हमले होने लगे. ये हमले आकस्मिक नहीं थे, जैसा कि पुलिस बता रही थी. ये हमले, वरली के निवासियों ने नहीं किये थे, जैसा कि पुलिस का बयान था. ये हमले नियोजित ढंग से पुलिस की छत्रछाया में, उसके सहयोग से हुए. एक दिन हमला हुआ. बाहर हल्ला मचा तो सरकार ने बयान दिया कि अब स्थिति शांत है. ऐसा नहीं था. फिर हमले हुए--लगातार तीन दिनों तक. शांति समिति के एक सदस्य को, जो अपने घर में अपने बच्चे का जन्मदिन मना रहा था, पुलिस ने बाहर खींच लिया. उसे मारा. उसे पुलिस थाने लाया गया. उसने बार-बार कहा कि मैं शांति समिति का सदस्य हूं. लेकिन शांति समिति के सदस्य होने से क्या बनता-बिगड़ता है, वह हरिजन तो था. □

नागरिकता से वंचित

महाराष्ट्र के दो हरिजन परिवारों ने स्थानीय अधिकारियों को १९७३ में दरखास्त दी थी कि उन्हें नागरिकता के अधिकारों से वंचित कर के गुलाम घोषित कर दिया जाये.

इनमें से एक परिवार के लोगों को गांव के सवर्णों ने बुरी तरह पीटा. उनका घर जला दिया. दूसरे परिवार को गांधी-शताब्दी वर्ष में खोदे गये कुएं से पानी नहीं लेने दिया गया. उस परिवार के लोगों को भी पीटा गया. उनकी झोपड़ियां जला दी गयीं.

दरखास्त के साथ इस परिवार ने झोपड़ी के मुआवजे में मिले पच्चीस रुपये भी वापस कर दिये.

गनीमत है सरकार हरिजनों को मुआवजा दे देती है. वह भी कम नहीं, पूरे पच्चीस रुपये का. □

मरो तो मरो

गत वर्ष सितंबर में औरंगाबाद जिले के कोले गांव में १२ नवबौद्ध आंत्र शोथ से मर गये.

अस्पताल में एक हरिजन महिला--घायल और खून में नहायी हुई.

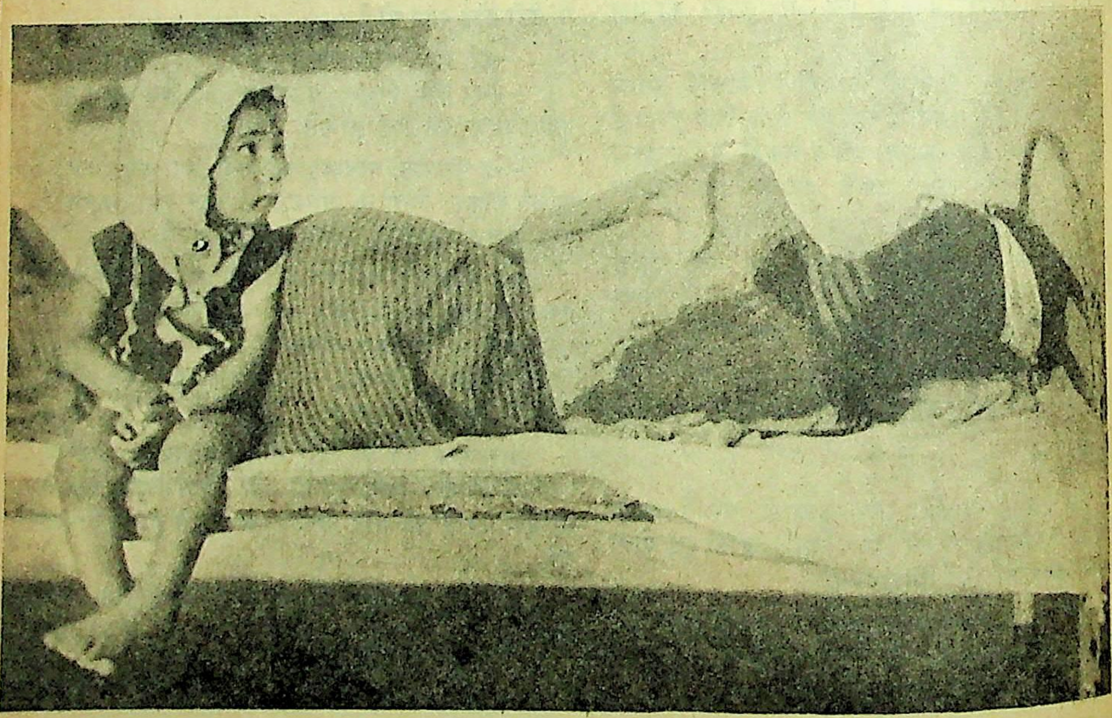

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका कारण यह था कि सवर्णों ने हरिजनों को अपने कुएं से पानी लेने से रोक दिया था, इसलिए मजबूरन उन्हें गंदा, जहरीला पानी पीना पड़ा. □

समाज से बाहर

कोल्हापुर जिले के कागल तालुका के एक गांव में ४० हरिजन परिवारों को सवर्णों ने भूखा मार डालने में कोई कसर नहीं छोड़ी. उन्हें आठ दिनों तक राशनकार्ड पर अनाज नहीं दिया गया. उन्हें दैनिक जरूरत की सारी वस्तुओं से वंचित रखा. उनका सामाजिक बहिष्कार किया.

उनका कुसूर यह था कि वे सवर्णों के मोहल्ले से गुजर रहे थे. सवर्णों को यह बरदाश्त नहीं हुआ. उनका एक आदमी आया और उसने हरिजन पुरुषों और महिलाओं को पीटा. हरिजनों ने उस आदमी को पकड़ कर पुलिस के हवाले कर दिया.

इसका जवाब एक नहीं, तीस सवर्णों ने दिया. वे सवर्ण, रात को हरिजनों के मोहल्ले में घुसे. उन्होंने आदमियों को तो मारा ही, औरतों पर भी अपने हाथ की खुजली मिटायी. उनके घरों के सामान को तोड़-फोड़ डाला. इस काम की अगुआई कर रहा था प्राथमिक स्कूल का सवर्ण अध्यापक!

उस बीस वर्षीय हरिजन युवक के हाथ-पैर बांध कर उसे पेड़ से लटका दिया गया. नीचे आग जलायी गयी. वह तड़पता रहा, तड़पता रहा. इतना तड़पा कि बेहोश हो गया. होश में आया, तब भी वह पेड़ से लटक रहा था और नीचे थी दहकती आग. और थे कुछ तमाशबीन, जो सिर झुकाये नाटक देख रहे थे.

किसी तरह रमेश को पेड़ से उतारा गया. वह अगले दिन दोपहर तक कराहता रहा, तब पुलिस के सिपाही आये. उन्होंने रमेश के हाथ-पैर खोले और चलते बने.

उसके बाद आये वे लोग, जिन्होंने उसकी यह गत बनायी थी. वे उसे अगली सुबह पास के एक गांव में ले गये. उसके अगले दिन फिर पुलिस का सिपाही आया. अब उसके साथ एक और आदमी भी था. उसे अस्पताल में भरती किया गया.

यह अस्पताल था गाजियाबाद का. हरिजन युवक रमेश था—असरोली बादशाहपुर गांव का. यह घटना थी १५ अप्रैल १९७४ की. और सवर्णों की नजर में उसका गुनाह था, उसकी अंधी वफादारी.

वह बचपन से ही भवर सिंह के यहां काम कर रहा था, जो लंबी-चौड़ी जमीन-जायदाद के मालिक थे. एक दूसरा परिवार भंवर सिंह का दुश्मन था और वह भंवर सिंह को जलील करने पर तुला था, जिसका शिकार बना रमेश. रमेश को लालच दे-दे कर भंवर सिंह के प्रतिद्वंद्वी ने अपने यहां काम करने को बुलाया, परंतु वह नहीं माना, जिसकी उसे यह सजा मिली. □

राजनीति मत करो

हरिजन कुसूर करते हैं अगर वे सवर्ण के खिलाफ चुनाव में खड़े होते हैं. इसकी सजा मौत भी हो सकती है.

पूना जिले के बावड़ा गांव के एक नवबौद्ध खानूदास कांबले ने जिला परिषद के चुनाव में एक सवर्ण के विरुद्ध नामांकनपत्र भर दिया.

इसकी सजा सारे हरिजनों को मिली. १० दिनों तक सवर्णों ने उनका सामाजिक बहिष्कार किया. इस काम में महाराष्ट्र सरकार के एक मंत्री के भाई शाहजीराव पाटिल भी थे.

हरिजनों को, जो करीब-करीब सभी खेतिहर मजदूर थे, सवर्णों ने कोई काम नहीं दिया. उन्हें भूखों मार कर भी उन्हें संतोष नहीं हुआ तो उन्होंने हरिजनों के कुएं में जहर डालने की कोशिश की, जो किसी तरह नाकामयाब हुई. □

अपने बेटे के साथ एक हरिजन महिला, जिसका पति सवर्णों की घृणा का शिकार हो गया.

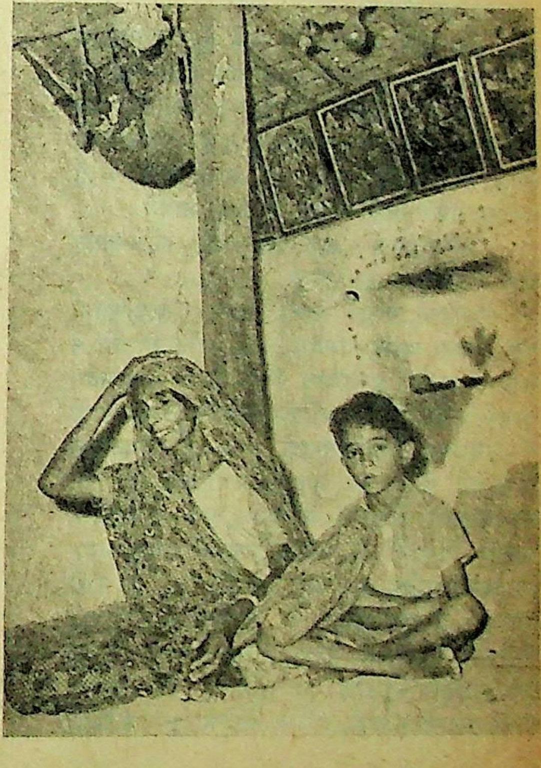

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दलित साहित्य की पहली मासिक पत्रिका : अस्मितादर्श

(संपादक-प्रा. गंगाधर पानतावणे.)

नयी साहित्यिक प्रवृत्तियों के प्रसार तथा नये विचारों के आदान-प्रदान के लिए 'अस्मितादर्श' का जन्म हुआ था. पिछले सात वर्षों से वह सफलतापूर्वक अपने ध्येय में लगी हुई है और अब तो यह कहा जाने लगा है कि 'अस्मितादर्श' समय की मांग है.

डा. बाबा साहेब आंबेडकर का मानवतावाद, उनकी विज्ञाननिष्ठा और उनके अंतर्मन का विद्रोह 'अस्मितादर्श' की प्रेरणाशक्ति हैं. इसलिए साहित्य में जिन शोषितों, दलितों और बहिष्कृतों का नाम भी लेना उचित नहीं माना जाता था, उनके चित्रण के लिए नहीं, बल्कि उन्हीं के लिए और उन्हीं के द्वारा साहित्य-निर्माण कराने का प्रयत्न यह पत्रिका कर रही है. नयों को अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना ही पड़ता है. उनमें जो सच्चे होते हैं और विरोध को पचा सकते हैं, वे ही विकसित हो पाते हैं. दलित साहित्य भी अपवाद नहीं है.

अब वाणी मुखर होने लगी है. सामाजिक ज्ञान की दुखती हुई रगें अक्षरबद्ध होने लगी हैं. गांव की सीमा के बाहर के दुख घेरा तोड़ कर उभरने लगे हैं. ये दुख अपने अंदर मानव की खोज कर रहे हैं. इनमें जो सच्चे होंगे, वे ही डटे रह सकेंगे. झूठे मुखौटे नष्ट हो जायेंगे.

'अस्मितादर्श' इन सब की खोज-खबर लेती हुई बढ़ती जा रही है.

साहित्य, समाज, कला, शिल्प, तत्वचिंतन, धर्म, शिक्षा आदि विषयों पर 'अस्मितादर्श' ने सामाजिक लेख प्रकाशित किये हैं. प्रा. जनार्दन वाघमारे के नीग्रो साहित्य संबंधी लेख मराठी में सर्वप्रथम 'अस्मितादर्श' में ही प्रकाशित किये गये थे. आनंद कुमारस्वामी, डा. डी. डी. कोसंबी जैसे विद्वानों के कला, धर्म व साहित्य संबंधी विचारों ने इसी पत्रिका में स्थान पाया. डा. बाबा साहेब अंबेडकर के विचारों पर इसी पत्रिका में कुछ लेखों के माध्यम से चर्चा की गयी थी. महार तथा अन्य शोषितों के जीवन-कार्यों तथा साहित्य-निर्माण का परिचय इसी पत्रिका द्वारा कराया गया है. दलित लेखकों और कवियों के दहकते अनुभवों को ललित लेखों का स्वरूप दे कर छापने का श्रेय इसी पत्रिका को है. सामाजिक बंधनों को स्वीकार करने वाले प्रसिद्ध दलितेतर लेखकों के लेखों के समानांतर प्रसिद्ध दलित लेखकों के लेख भी इस पत्रिका में पढ़ने को मिलते हैं. उदाहरणार्थ प्रा. वा. ल. कुलकर्णी, तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री जोशी, ग. त्र्यं. माडखोलकर, दि. के. बेडेकर, पु. ल. देशपांडे, कुसुमाग्रज, प्रा. विंदा करंदीकर, दिलीप चित्रे, प्रा. रा. मि. जोशी, प्रा. शांता शेलके, डा. भालचंद्र फडके, प्रा. शरदचंद्र मुक्तिबोध, प्रा. रा. रं. बोराडे, आदि के साथ-साथ शंकरराव खरात, प्रा. म. मि. चिटणीस, डा. वानखेडे, केशव मेश्राम, वामन निंबालकर, दया पावर आदि लेखकों के लेख छापने का सौभाग्य 'अस्मितादर्श' को मिला है. आज २० से २५ दलित लेखक-लेखिकाएं लेखनकार्य कर रहे हैं जिनमें से कई तो प्रसिद्धि के शिखर तक पहुंच चुके हैं.

'अस्मितादर्श' की मान्यता है कि दलित साहित्य का अपना स्वतंत्र क्षेत्र होना चाहिए. दलित साहित्य के अनुकूल तथा प्रतिकूल, दोनों प्रकार के विचार व्यक्त करने वाले अनेक विद्वानों के लेख 'अस्मितादर्श' में प्रकाशित हो चुके हैं. परंतु दलित साहित्य को प्रकाश में लाने का एकमात्र ध्येय ले कर चलने वाले तथा साहित्य-सृजन को मात्र साधन मानने वाले प्रा. गंगाधर पानतावणे के समर्थ संपादन ने 'अस्मितादर्श' को मराठी साहित्य-संसार में स्वतंत्र स्थान प्राप्त करा दिया है.

और अब इस सफलता के बाद 'अस्मितादर्श' ने प्रकाशन के क्षेत्र में भी कदम बढ़ा दिया है. अब तक फ. मुं. शिंदे के 'जुलूस' तथा वामन निंबालकर के 'गावकुसावाहेरील कविता' शीर्षक दो कविता-संग्रह यह प्रकाशन संस्था प्रकाशित कर चुकी है. प्रा. गंगाधर पानतावणे के समीक्षात्मक लेखों का संग्रह 'मूल्यवेध' के प्रकाशन की तैयारियां भी चल रही हैं. □

दलित साहित्य

दलित लेखक 'विद्रोह-विद्रोह' की आवाज उठाते हैं, पर यह विद्रोह है आखिर किसके खिलाफ? विद्रोह का अर्थ द्वेष नहीं होता. विद्रोह का अर्थ होता है—क्रांति. दलित लेखकों का विद्रोह प्रस्थापित साहित्य व नैतिक मूल्यों के विरुद्ध है. 'कला के लिए कला' के विरुद्ध सनातन रूढ़ियों, परंपराओं और जातीयता के विरुद्ध. परंतु यह विद्रोह समाजाभिमुख होने के कारण और द्वेष पर आधारित न होने के कारण बांझ नहीं है...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार में जितने भी क्रांतिकारी हुए हैं वे सभी दलित लेखकों के आदर्श हैं, फिर वे भले ही साहित्य के क्षेत्र में हुए हों चाहे अन्य क्षेत्रों में हुए हों. चार्वाक से ले कर महात्माफुले और बाबा साहेब अंबेडकर तक उनके आदर्श हैं. नीग्रो साहित्य व नीग्रो लेखक भी उनके आदर्श हैं क्योंकि नीग्रो लेखकों ने भी मानवीयता, मानवीय हकों, समता वगैरह के प्रश्न बड़े प्रमाण में उठाये हैं. □

चाल संस्कृति

चालों और सार्वजनिक नलोंका नाता अटूट है. तीस-पेंतीस किरायेदार और घंटेभर चलने वाला एक नल. पूरा पड़ना तो खैर कठिन है, पर फिर भी समझा-बुझा कर लाइन वगैरह लगा कर पानी भरना चलता ही रहता है. मैं अपनी इस चाल में रहने आया उसके दूसरे ही दिन की बात है. मेरे लिए तो वह अनुभव नया नहीं था पर मध्यमवर्गीयों की चाल में यह मेरा अनुभव नया ही था. सुबह नल आने की खबर सुनते ही घर-घर से बालक बूढ़े और स्त्रियां नल की तरफ भागे. मेरी पत्नी भी कलसा ले कर नल पर पहुंची. वह बड़ी देर तक खड़ी इंतजार करती रही. मैं गैलरी में खड़ा यह सब देख रहा था. आखिर पत्नी अपने प्रयत्नों में सफल हुई, पर जैसे ही उसने नल में अपना कलस लगाया, आसपास की औरतें दूर खिसक गयीं और नल के पास एक तरफ बरतन मांजने वाली स्त्री बोली—ओ बाई साहेब ! जरा संभाल कर, हमारे बरतनों पर तुम्हारा पानी न गिरे. पत्नी चुप थी और कलसा भर जाने पर एक तरफ हट गयी. फिर कलसा उठा कर वह घर की तरफ आने लगी तो मैंने देखा कि नल पर बरतन मांजने वाली उस सुसंस्कृत बाई ने एक बालटी भर कर पानी नल पर उंडेला और एक कलसा भर कर नल के फर्श पर फैलाया और तब कहीं जा कर उसने अपने बतन नल के नीचे रखे. □

राबता

बात है १९५० की. औरंगाबाद जिले के नलणी गांव के अछूतों से खूब बेगार ली जाती थी. अगर कोई अफसर तांगे या बैलगाड़ी में बैठ कर निकलता तो गांव के एक महार को तो उस तांगे या बैलगाड़ी के आगे-आगे भागना पड़ता था और दूसरे महार को साहब के मुर्गे, जूते, पेटी, बिस्तर वगैरह सिर पर लाद कर पीछे-पीछे दौड़ते चलना पड़ता था. यानी आगे भी महार, पीछे भी महार और दोनों को उसके वाहन की गति से भागना पड़ता था. इस परिपाटी से लोग बड़े दुःखी थे.

एक बार नलणी में कालूबाबा का मेला भरा. मेले में जिले के अधिकारीगण भी आये थे और इन अधिकारियों की टहल में दो-दो, तीन-तीन महार लगाने पड़े. इस पद्धति को 'राबता' कहते थे. इसी मेले में मराठवाड़ा के उत्साही नेता भाऊ साहेब उर्फ बी. एस. मोरे भी गये थे. महारों के बाड़े में आ कर पुलिस और उसके जमादार खूब गाली गलौज करते थे और अफसरों की सेवा के लिए महारों को पकड़ कर ले जाते थे. भाऊ साहेब मोरे के खयाल में यह बात आयी तो वे वहां पहुंचे और कड़क कर पुलिस वालों से बोले—वो कौन-सा हुद्देदार है, उसको यहां भेज दो. उनकी तेजी देख कर पुलिस के सिपाही तो लौट गये पर उन्होंने अपने इंस्पेक्टर को भेज दिया. खूब तकरार हुई—श्री मोरे बोले, महारों को ले जाना है तो लिख कर दो, नहीं तो एक भी महार 'राबता' के लिए नहीं जायेगा. खूब गरमा गरमी हुई पर फिर उसके बाद 'राबता' की प्रथा बंद हो गयी. □

अनुष्ठान

मेरे बचपन की घटना है. बरसात के दिन थे, पर पानी था कि बरसना ही नहीं चाहता था. गांव वालों को बड़ी चिंता होने लगी. इसलिए उन्होंने गांव के पाटील के साथ मंत्रणा की और रामोशा को डौंडी पीटने का आदेश दिया. रामोशा ने डौंड़ी पीटी. "सुनो रे सुनो, कल सुबह मारुती को पानी चढ़ाया जायेगा सब हाजिर रहें. . ." दूसरे दिन लोग कामधाम छोड़ तालाब की तरफ चल दिये तो हम बच्चे भी साथ हो लिये.

मंदिर में पहुंच कर सब शांत हो गये तो पहले पंडित ने कुछ मंत्र बोले और फिर तालाब में उतर पड़े. उसके बाद जैसे मेड़ें अपने बाड़े में कूदती जाती हैं वैसे ही सब जन तालाब में कूदने लगे. तालाब का पानी गंदा हो गया, फिर भी सभी बड़े भक्तिभाव से स्नान कर रहे थे.मैं तालाब में घुसना ही चाह रहा था कि पीछे से आवाज आयी—अरे ओ,तू तालाब में मत घुसना. तू महार का लड़का है ना. तुम लोगों को तालाब से दूर रहना चाहिए. दूर खड़ा रह, मैं तुझे पानी देता हूं. कहने वाला एक सभ्य व्यक्ति था. उसने तालाब से पानी ला कर मेरे शरीर पर उड़ेल दिया. पानी डालते समय वह बहुत होशियारी बरत रहा था जिससे उसके ऊपर पानी का एक छींटा भी न पड़ जाये. पवित्र हो कर मैं मारुती के मंदिर की तरफ गया तो वहां पर भी मुझे रोक दिया गया. मेरे मित्रों ने मंदिर में जा कर पानी चढ़ाया पर मुझे तथा मेरे जातिभाइयों को मंदिर की सबसे निचली सीढ़ी भिगो कर ही संतोष कर लेना पड़ा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानी ✶ भास्कर चंदन शिव

ूरी दोपहर, जलती धूप. . .झुलसते हुए कोमल बूढ़े पेड़. . . कमर से टूटे हुए सूखी लकड़ियों के गट्ठर द्विप. . . .और कहीं-कहीं रेती के पेट में सड़ांध पैदा रनेवाला हरा पानी . . .मर कर सड़ी सूखती हुई ढकों की, मछलियों की और केकड़ों की लाशें. . . .

सात-आठ महार कंधों पर कुदाल-फावड़े लिये पानी ो खोज करते घूम रहे हैं. कहीं पनियारी जगह नहीं मिल ही थी. यहां खोदें या वहां खोदें? कहां खुदाई करें? ानी चाहिये. . .

—अण्णा, दो बाल्टी इस मटकी में डालो जी. . .

—बाईसाब, एकाध बाल्टी देती हो. . . .

हम अपना खुद का झरना खोदें नदी में. . .इस वचार से महार जगह ढूंढ़ रहे थे. कहीं न कहीं गहरी ागह देख कर परस डेढ़ परस कुआं खोदे. . .लेकिन वैसी ागह अब तक मिली नहीं थी. लगातार खोज-खबर ाल रही थी.

—सदान्ना, यहां जम सकता है यार, रेती भी ीली है. . .ज्योती कुदाल से कुरेदते हुए बोला.

—पर यह कुआं गांववालों से देखा जायेगा?

—क्यों?

—". . . ."

—हां रे. . .लेकिन क्यों रुकावट डालेंगे?

—छी-छी: सदान्ना हमेशा फटे में पैर डालता है! चलो रे बच्चो, चलो. . .

और महार खुले बदन से रेती निकालने लगे-ऊपर से धूप, पेट के गड्ढे में भूख की आग. . .लेकिन पानी! . . .पानी ! ! ! पानी चाहिये था. पेट की, भूख की आग रोकने के लिए महार रुक-रुक कर खोद रहे थे. खुली पीठें झुलस रही थीं. पसीना बह रहा था.

—बच्चो, जरा आराम करो. . .बैठो. . .तमाखू खायें. . .

—सदान्ना, आराम नहीं, हराम नहीं. . .आराम बस ऊपर जाने पर ही. . . .

—अरे बाबा, इतना खोदकर फिर पत्थर कूटने पर जाना है. . .

—तुम खोदो भाई. . .मैं जरा बैठूंगा. . .मां कसम सात-आठ दिनों से छाती में दरद होता है. और सदान्ना तमाखू मलने लगा. बच्चे खोद रहे थे. जैसे-जैसे नमी लगती बल आ रहा था, जोश आ रहा था और मन संदेह से भरा जा रहा था. बच्चों का कहना मुश्किल था, वही कड़क कर बोलते थे.

—मां की. . .सदा करना भी नहीं चाहता और दूसरों को भी खुले मन से कोई काम नहीं करने देता.

बोले या न बोले इस कैंची में जकड़ा सदा बैठ गया था.

इतने में दाम्या चिल्लाकर बोला—अरे-अरे. . .रे. वह देखो पानी. . .तैयार नाली-सा झरना आया, . . . और नाचते-हंसते ऊपर आया. सभी जमा होकर पानी की ओर देख रहे थे. तालियां बजाकर हंस रहे थे.

—अरे सदान्ना, देखते क्या हो. . .नारियल-गुलाल लाओ. . .भागो-भागो. . .लेकिन सदा बैठा रहा, देखता रहा.

—अरे ए सदा, मां की. . .उसे नदी की चुड़ैल तो नहीं दिखायी दी? अरे उठ, अरे ये, पानी तो देख. . . पानी, पानी. . .

—बच्चो, भगवान देता है लेकिन करम आड़े आते हैं. . .उसे क्या करें? हूंऽऽ, और सदा ने पच् से तमाखू थूक दी. भारी कदमों से वह झरने के पास आया. पानी को देखा. . .मन भर कर लहलहाया. . .लेकिन यह पानी रहेगा? पीने के लिए मिलेगा? आंखें सरीखी पानी पर तैर रही थीं और आंखों का पानी देख रही थीं. पल भर सदा वैसे ही खड़ा रहा. . .खंभे की तरह. . .आंखें नहीं ठहरती थीं. . .शीतल हो रही थीं. . .सारा तनबदन सिहर रहा था. हिलने-डुलने को मन नहीं होता—अकेलेपन से सदा बाहर आया और नीचे झरने में उतर कर पानी के किनारे बैठा. पेटू की तरह पेट भर भर के पानी पिया. संतोष से डकारें देता बाहर आया, गांव के रास्ते से चलने लगा.

गांव की पगडंडी की घास नंगे पैर को झुलसा रही थी. और सदा चल रहा था. मन में न जाने कौन-सी बातें खोज-खोज कर आती-जाती रहीं, उसे पागल कुत्ते की तरह तड़पाती रहीं.

—इसलिए मैं बार-बार बच्चों को बोल रहा था, बाबा. . .यहां झरना मत खोदो—अब नीचे की ओर गांववालों का झरना है. यह बच्चों को पता नहीं था. . . कल गांववाले भड़क गये तो. . .

सदा अपने ही मन से बोल रहा था. . .और रास्ता रोक कर चमरौटी में आया. . .घर के पास नीम के नीचे रुका. निश्वास छोड़कर फटे रूमाल से चेहरे का पसीना पोंछा, खखारकर गला गीला किया, जेब से थैली निकाल कर तमाखू-चूना मलने लगा. . . . गांव से नारियल-गुलाल लाये संता ने आकर कुछ पूछा. सदा का ध्यान टूटा-मुंह में तमाखू डाल खखारकर बोला.

—हां. . .अभी-अभी-आकर बैठा हूं. . .बैठ जरा. . .

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—सदान्ना, मुझे तुम्हारी बात जंचती थी लेकिन दस लोगों को कौन रोके? इसलिए चुप रहा.

पैर से मिट्टी साफ कर संता बैठ गया.

—अरे अभी गांव में गया था नारियल-गुलाल लाने तो भगा बनिया भड़क गया, यार.

—क्या कहा?

—मड़वो, झरना खोद कर आये हो लेकिन भरो, पानी कैसा भरते हो? मां की. . .हमारा पानी भ्रष्ट करने के लिए ऊपर ही अपनी . . .मां. . .ऐसा बोलते हुए दांत कटकटाने लगा.

—संतू, यही मेरे मन में आया था. . .चोखा को जरा कहा भी था लेकिन वह सभी मुझे लताड़ने लगे. . .कहा . . .करो कुछ भी. . . .जवान खून है तो क्या हुआ?

दोनों कुछ पल चुप. अचानक कहीं से एक अकेला कौआ कांव्. . .कांव्-चिल्लाया और सदा के सामने झूलती सूखी नीम की डाली पर बैठ गया. सदा की नजर नारियल से उड़कर कौओ की ओर गयी और अपने आप से वह बोला—क्यों बाबा, तेरा सराप सच्चा हो गया यार. . .और अब कौन-सा सराप देते हो? अरे बचे-खुचे जानवर मर गये. . .अब क्या रहा है? दो अब इस बचे-खुचे पानी को सराप!

सदा के बोल पर संता रोनी हंसी हंसने लगा—क्या बोले? फिर दोनों बारी-बारी से मुंह ताकने लगे. पल भर यही रहा—संता, जा नारियल चढ़ाकर तो आ, निश्वास छोड़कर सदा बोला और वहीं सो गया.

★ ★

दिन ढल गया. अंधेरा फैला . दिये जलने लगे. चूल्हे जले. बड़े आदमी खाना खाकर बोलने लगे. . . हमेशा सूने रहनेवाले रास्ते एक भाषा बोलने लगे.

—घेड़ों को मस्ती आ गयी.

—उन्होंने जानबूझ कर ऊपर की ओर झरना निकाला.

—बुलाओ सरपंच को. . .

—छि :-छि. . .खुद हम चलकर उनके घर क्यों जायें? घेड़ों को बुलाओ गांव में. . . .

—बुलावो-बुलावो! एक साथ चिल्लाहट.

रामा येसकर चमरौटी में निकला. उसका खरगोश-सा दिल घबड़ा गया. सदान्ना-संताजी चाचा, संभा भाई, चोखा चचेरा भाई—सभी रिश्तेदार जातिबंधु, कैसे बुलायें? क्या कहे? मैं येसकर गांव का नौकर! गांव का कहना मानना पड़ेगा लेकिन अब क्या करे? दिमाग में मधुमक्खियों का छाता फूट गया और मन पर भिनभिनाने लगा. . . धड़कता मन . . .

रामा के बदन में चलते-चलते पसीना छूट गया.

रामा कहां चले? गुनहगारों को बुलाने? तू कौन है? तुझे पानी नहीं चाहिये? मरने पर कौन कंधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'एरोकॉम' गद्दे और कुशन-गद्दियों में आराम व सुख-चैन का पूरा समाधान है। नर्म व गुदगुदे, बच्चों के मनभायें — मजबूती व सुदृढ़ता से बड़ों को भी ललचायें !

हजारों सूक्ष्म कॉयर के रेशों पर वैज्ञानिक विधि से लेटेक्स रबर की परत चढ़ा कर नर्म व गुदगुदा बना लिया जाता है, इसीलिये तो इसकी रग रग में आपके आराम व सुख-चैन का ख्याल समाया है। वर्षों इस्तेमाल के बाद भी इनका आकार नही बिगड़ता। घर घर को आरामदेह बनायें— कम दाम में शान बढ़ायें, लम्बे समय तक साथ निभायें !

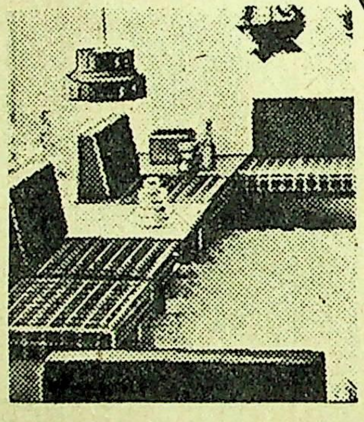

गद्दे, कुशन-गद्दिया, तकिये, बाथ मैट, कार्पेट अंडरलेज और फर्नीचर ब्लॉक से घर सजाइये— आरामदेह बनाइये।

व्यापार संबंधी पूछताछ आमन्त्रित है !

इन्डियन लेटक्स फॉइबर कार्पोरेशन,
३०, चितरंजन एवेन्यू,
कलकत्ता-१२.
फोन : २३-६८३२/२३-७३०८;
टेलेक्स : ०२१-७०९४
स्टील चेम्बर्स, भड़ोच स्ट्रीट, बम्बई-२.
फोन : ३२०२६०/६८/६९; ३८३९९८
टेलेक्स : ०११-३१६७
२३, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-६
फोन : २७-८५७१; टेलेक्स : ०३१-२०६६
२४, नॉर्थ बीच रोड, मद्रास-१.
फोन : २५-५८४; टेलेक्स : ०४१-७३२२.
फैक्टरी : सातशंख,
ज़िला : पुरी, उड़ीसा
फोन : साखीगोपाल २९.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देगा ? गांव वाले? फिर-फिर? . . .दुःख-दर्द में कौन आयेगा ? रामा चमरौटी में आया. [illegible] में खड़ा रहा. पागल सा हो गया.

—कौन खड़ा है रे—रामा दादा. . .अंधेरे में क्यों अकेले खड़े हो ? . . .संभा पास आया.

—संभा, गांव भड़क गया है तुम सब पर. तुम्हें सभी को बुलाया है चौपाल पर. . .रामा घुट-घुट कर लेकिन हिम्मत से बोला.

—क्या कहते हैं चौधरी? संभा बुदबुदाया.

—क्या कहते—अपने झिरे को पानी लगा और उनका शायद सूख रहा है.

—लेकिन वो झिरा तो पहले से सूख गया था. . .

—लेकिन तुमने जानबूझ कर झिरा भ्रष्ट करके ऊपर झिरा खोदा है. . .

—हूं, जाओ आगे! आते हैं कहो, जाओ. रामा वापस घूमा और संभा सदान्ना के पास गया.

रात को देर से बैठक जमी. एक ओर गांव वाले दूसरी और महार . . .धेड़, बीच में गैस बत्ती जल रही थी. गुटों-गुटों में बातचीत हुई और कुछ देर बाद चौधरी कड़कती आवाज में बोला—अरे -ए सदा—क्या किया तुमने? बच्चों को अच्छी राह बता कर देखते रहने की उम्र है तुम्हारी—या उनके दिमाग में गोबर मिलाने की?

—झिरे की बात करते हैं ना आप? सदा आगे बढ़ा.

—झिरे की नहीं—हमारी शादी की बात है. . .ये देखो-चौधरी तिरछे बोला और सभी खिलखिलाकर हंस पड़े. सदा शरमा गया. संभा के होठ दांतोंतले जा रहे थे. . .कान की पर्तें गर्म होने लगीं. . .

—ये झिरा खोदने को किसने कहा? नदी क्या तुम्हारे बाप की जागीर है? कल सरकार हमारी छाती पर बैठ जाये तो?

—अब आप ही कहें, हम पानी पियें तो कहां से पियें?

—नदी में झिरा खोदा इसका मतलब नदी बांध कर तो नहीं लाये हम. . . गांव वालों ने बड़े-बड़े पेड़ तोड़ डाले तब सरकार नहीं आयी और अब. . .संभा बड़ी मुश्किल से बोला.

—अजी सरपंच, ये सरकार के जंवाई हैं, इनका रूठना -मनाना आप नहीं करोगे तो कौन करेगा ?

चौधरी के कहने पर फिर हंसी का धमाका. . . पागलों की तरह.

—सदा, तुम ही बोलो, ऊपर के झिरे का भ्रष्ट पानी नीचे हमारे झिरे में नहीं आयेगा? फिर जानबूझ-कर यह बुरायी की है या नहीं ? भगा बनिया जल कर बोला .

पल भर सभी चुपचाप. मुंह से कान लगे —कान मुंह को—जलती हुई बत्ती की सूंऽऽसूं आवाज. . .बढ़ कर एक सूरने लगा—चौधरी ने एक-दो की ओर नजरें घुमायी. वे झट से उठ कर चल दिये—पल भर से भगा बनिया उठा—लोग कुलबुलाने लगे —चौधरी खंखार कर बोला—क्यों, सरपंच मुंह सिल गये क्या उनके? भगा क्या झूठ कहता है? जानबूझ कर ऊपर झिरा बनाया इन्होंने. . .इतनी देर मुट्ठी भींचे संभा भड़क कर बोला— यह बिल्कुल झूठ है!

ऐसी नीचता हमारे सपने में भी नहीं थी. . .भड़के सदा को झट से खींच कर सदान्ना सबूरी से बो —चौधरी इसकी बात दिल पर मत लाना. अपने समय की बात अभी नहीं रही—नहीं तो हम चौपाल की फर्श पर भी नहीं बैठते. . .बोलते-बो सदान्ना ने संभा की चिमटी ली और संभा के पास बै

रामचंदर उछल कर बोला—अजी, अब तक पा से अपना बाट झर कर इस फरसी तक आ गया होग

—महारों के चार लड़के मुंह दबा कर हंसे अं बत्ती के पीछे गर्दन छुपाने लगे.

—अरे तुम्हारी ऐसी-तैसी. हमारा मजा उड़ाते हो?

—भंडवो! क्या समझते हो तुम? उठो-उठो सरपं सुनो इनकी बातें और लगाव मस्का!

फेंटा झटकते चौधरी उठा. दांत-होंठ मींच कर चल गया-महार सहम कर देखने लगे. मन से दब गये—मु कान से और कान मुंह से —भय कहने लगा . . .सभी दिल धड़कने लगे.

★ ★

रात ढल चली. ठंडी हवा चमरौटी में घुस आकाश साफ हो चला. झोपड़ी-झोपड़ी हिलने लगी बोलने लगी—मुर्गी खाने खुले और स्त्रियां मटकी ले क पगडंडी से चलीं. ताजा पानी, अपना पानी. . .मन नाच लगा. पेट के गड्ढे में. . .चलो-पानी ही सही! . . .कह लगे.

एक-एक बाई चली और कतार लग गयी.

सभी जाने वाली, आने वाली मटकी कहीं नज नहीं आयी. . .स्त्रियां बच्चे और मर्द. . .घर में जित बर्तन थे सब ले कर दौड़े थे. पूरी दौड़ . . .दौड़. . !

लेकिन सभी लोग नदी में -धुंधले उजाले में—झिर ढूंढ़ रहे थे. कोई नीचे, कोई ऊपर-गंगामुख रख संमुख-लेकिन झिरा नहीं मिल रहा था—सारी चमरौटी (महार-वाड़ा) ढूंढ़ रहा है झिरा. . .पर वह कहां अटक गया ? कहां गया ? कहां गया पानी का झिरा ?

एक ही जगह जमा कर रखी हुई मटकियां आकाश में भूखे मुंह खोल कर पड़ी थीं—गर्दन से गर्दन मिलाये. . . पानी-पानी. . .कहते हुए ! ! □□□

दलित साहित्य : एक टिप्पणी

दलित साहित्य में मानवता, विज्ञान के प्रति निष्ठा और विद्रोह तीनों के दर्शन होते हैं. इनके मूल में जाया जाये तो पता चलेगा कि इनके पीछे व्यक्ति और समाज से संबद्ध मानवीय नैतिकता की प्रखर शक्ति काम कर रही है. मानवता इसी प्रखर शक्ति का नाम है. विज्ञान के प्रति निष्ठा का अर्थ है जादू-टोना, पाप-पुण्य और अज्ञान का सशक्त विरोध और विद्रोह का अर्थ है आज की बाजारू ऊंच-नीच प्रवर्तक हिंसक समाज व्यवस्था के विरुद्ध क्रांति.

—वि. के. बेडेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केशव मेश्राम ★ पत्तल

गुरों की झंकार अखंडरूप से जारी थी. बीच-बीच में पगलाए-से कुत्ते जान की बाजी लगाकर भौंक ते थे. अंधेरे में डूबे मुतहा पेड़ों पर कुछ विचित्र सर-हट होती और फिर एकाध पक्षी चीत्कारता, फड़-ाता तीर-सा उड़ जाता. क्षण भर अजीब शांति फैल ती. जुगनू भरमाए-से ऊपर-नीचे होते रहते और फिर से झींगुरों की एक सुर में आवाज शुरू हो ती.

मिल से रातपारी के लोग अभी-अभी लौटे थे. दत के मुताबिक वे अब खा-पीकर सोने की तैयारी थे. कोई-कोई खाट पर बैठा भक-भक कर चिलम घुआं उड़ा रहा था. आधी रात में अब मिलिंद नगर चेतना धीरे-धीरे बुझ रही थी. कोई-कोई अभी तक गवान. . .हे भगवान' का स्मरण लेटे-लेटे ही किये जा ा था. सात-आठ घंटे बुनाई मशीन के सामने खड़े कर धागे जोड़ने से आंखे जल रही थीं, शरीर में होता था और पांवों की ऐंठन से लोग 'राम. . .रे, कर बिस्तर पर हाथ-पांव पटकते थे. शेष सभी को द के अजगर ने धीरे-धीरे निगल लिया. . . अब लिंद नगर एकदम शांत था.

घुंघरुओं की आवाज करती साइकिल-रिक्शा मिलिंद र के एक कोने पर आ चुकी. यों भी भीतर आने के ए रास्ता न होने से रिक्शा वहीं तक आ सकती थी. सना नीचे उतरा, पर रिक्शा दूर लौट जाने पर उसने धेरे में जोरदार जमुहाई ली और आलस झटक दिया. फी दिनों से मन में आयोजित योजना पक्की कर वह स कुबेला में वापस आया था. ढाई-तीन महीनों से सके मन पर पड़ा भारी बोझ उतर गया जान पड़ता . उसने फिर से इधर-उधर देखा और दूसरी ओर थत अपने घर की ओर चल पड़ा. सारा मिलिंद नगर रान और बेजान लग रहा था. टेढ़े-मेढ़े घर अंधेरे में चित्र लगते थे. सर्दी-गर्मी से बचने और रैन बसेरे लिए ही ये घर बनाए गए थे. विशेषकर बस्ती के स छोर पर मांगों (एक अस्पृश्य हरिजन जमात) के पांच-सात घर तो डरावने और उदास लगते थे. कसना कुछ आगे आया. एक घर के चबूतरे के ामने आने पर उसकी गति अपने आप धीमी ो गयी. सीने की धड़कन बढ़ गयी. बिजली-सा एक मत्कारी प्रवाह धड़कता हुआ उसके सारे शरीर से ोकर निकल गया. उसमें डर था, घिन थी. शर्म भी ी और आसक्ति भी थी. उसके कदम अनजाने सम्हल ाए. उसने उस पर घर की ओर पेट से गिरने वाले जंतु ी भांति देखा. मन ही मन बड़बड़ाया—साली टांगे फैलाकर सोई होगी. एक उच्छ्वास ले कर उसने गर्दन ो झटका दिया और फिर उसके अनुभवी पांव अंधेरा कुचलते अपने खुद के घर की ओर चल पड़े.

किसना तीस-पैंतीस साल का गबरू जवान था उस बस्ती में खा-पीकर मस्त रहनेवाले जो गिने-चुने घर थे, उनमें पहला घर किसना का ही था. काफी जमीन-जायदाद थी. आम के पेड़ थे. संतरे के बाग थे. पचास-साठ मील दूर स्थित इस सारे ऐश्वर्य का वह अकेला मालिक था. बूढ़े मां-बाप अभी तक जीवित थे. वे गांव में अपने इकलौते बेटे के लिए माया बटोर रहे थे. मिलिंद नगर में ऐसा कुछ न था जो किसना के पैर बांधे रखता. सारी महारों, मांगों की बस्ती थी. अधिकांश लोग मिल में काम करते थे. दिन पारी, रात पारी, दस तारीख को वेतन, पच्चीस को एडवांस, रविवार को बाजार-हाट. . .उस दिन बस्ती में मटन की जोरदार बास छा जाती, ज्यादातर बाप-बेटे ऊंचे कर्कश स्वरों में बोल उठते. स्तनों को नोचने वाले बच्चों को सम्हाले, गर्भ से लटके पेट को ढांकने की खास फिक्र न करनेवाली स्त्रियां हाथ-नचा-नचा कर एक दूसरों को जीभर गालियां देतीं. कभी बीच में चूल्हे पर उबलनेवाले मटन का अंदाज लेकर 'हरजाई, कमीनी, रंडी. . .' जैसे शब्दों की बौछार करती रहती थीं. शायद ही कोई रविवार ऐसा बीता हो जब कि दो-एक लोगों को खून बहने तक मार न पड़ी हो.

किसना गांव का होते हुए भी गांव का नहीं था. उसका खाना-पीना दीवारों के भीतर सीमित रहता था. उसके घर का किसी से कोई काम न पड़ता था, उल्टे वह मिलिंद नगर में ब्याज पर पैसे उठाता था. लोग उसे किसना सेठ के रूप में ही जानते थे. कभी कोई शराब की सनक में किसना को भी गाली दे जाता. बात यह थी कि किसना के बच्चे बचते नहीं थे. उसके घर चार-पांच बार प्रसव हुए थे लेकिन दस-बारह दिनों में ही बच्चे को मिट्टी की ओट करना पड़ता था. टोटके-टूनगो, दवा-दारू सभी तो उपाय किये गए थे लेकिन होनी नहीं टली थी. गांव के सयाने लोगों की दूसरी औरत लाने की सलाह वह मानता नहीं था. यदवदी के मायके में यानी उसकी ससुराल में उसका छोटा साला निम पागल था. दूसरी शादी करने पर ससुराल का मलीदा डूब जाता . दो-चार किताबें पढ़ा किसना यों विचारवान था. लेकिन लोगबाग इस कमी को उजागर करते थे. 'बच्चे बचें तो कैसे ! बाप-दादों का पाप का पैसा गांव के साथ चल नहीं सकता. अपना ही रुआब. . . नतीजा और क्या होगा!' कुछ दिन तो किसना सहन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता रहा, फिर शहर से पांच-सात तगड़े गुंडे लाकर गाली-गलौज करने वालों की हड्डी खींच कर नरम की. पुलिस में रपट लिखाकर, इंस्पेक्टर को दस-दस के कुछ नोट देकर आठ-दस दिन के लिए कुछ लोगों को हवालात में रखवा दिया. तभी से कोई उसके रास्ते न जाता था.

कई बार उसके मन में आया था कि ऐसी जगह छोड़ कर शहर की अच्छी, पक्की जगह में जाकर रहे. उसने प्रयत्न भी किया था. लेकिन वहां उसकी जाति का पता चलने पर उसका ठीक से उठना-बैठना भी कठिन हो गया था. तब उसे फिर से अपने मिलिंद नगर वाले बड़े घर में लौट आना पड़ा था.

★ ★

गत वर्ष से किसना एक नयी उलझन में फंस गया था. यश्वदी के पांचवें प्रसव के समय हमेशा की दाई बूढ़ी अनशी मालिश और टहल के लिए आती थी. बच्ची मर जाने से उसकी पत्नी पहले ही अधमरी हो चुकी थी, फिर उधर उसकी मां काफी बीमार थी. बूढ़ी अनशी का ही किसना को सहारा था.

अनशी अब एकदम बूढ़ी हो चुकी थीं. दमें की बीमारी से वह और भी बेजार थी. इधर पांच-सात महीनें पहले अनशी पर संकट का पहाड़ टूट पड़ा था. उसकी इकलौती बेटी शिती उसके आश्रय में आयी थी. उसका पति और दो छोटे बच्चे पूर्णा नदी की बाढ़ में बह गए थे. उसका पति प्रवाह में बहता लट्ठा रोकने के लिए पानी में घुसा था. किनारे पर भीगते बैठे बच्चे बारीक आंखों से बाप की करामात देख रहे थे. शिती 'ग्रहण' मांगने गयी थी. . . .और बच्चे जिस मिट्टी की कछार पर बैठे

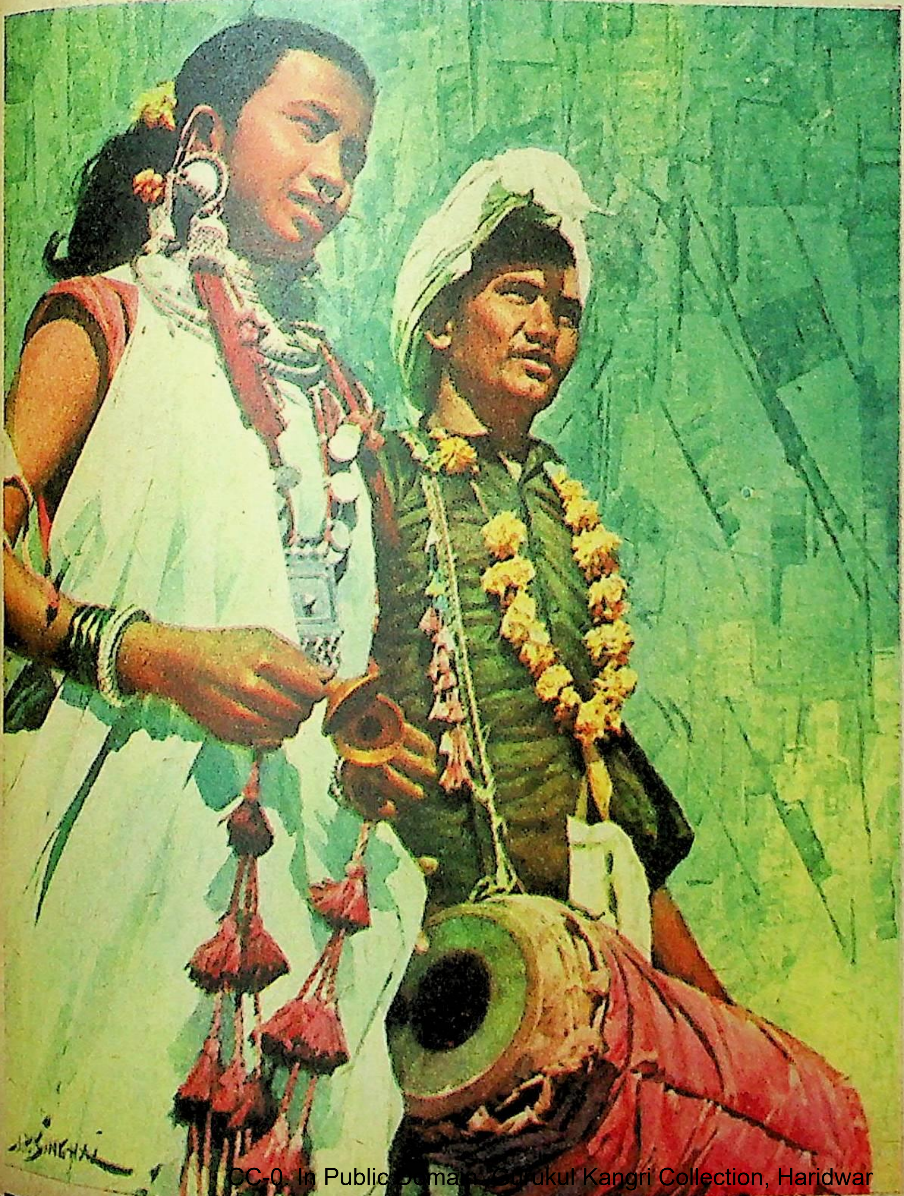

अडवानी आर्कीकाल के सौजन्य से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे, वह एकाएक ढह गयी. बच्चे जोर से चीखे. बीच नदी में चट्टान की ओट में खड़ा उसका पति सपाटे से बच्चों को बचाने के लिए लपका था. लेकिन सामने से बहता हुआ बबूल का तना उसके जबड़े पर टकराया और वह स्वयं बह उठा. 'मांग डूब गया' की चीख पुकार फैली. दो-एक अव्वल तैराक थे, लेकिन मांगों को छुए कौन? आगे कहीं किनारे लग ही जाएंगे. सब वापस लौट पड़े. मांगों के घरों पर तो आफत टूट पड़ी थी. शिती के शोक की सीमा न थी. तीन साल के दूसरे लड़के और पति की लाशें कहीं किनारे आ लगी थीं. एक लड़के का क्या हुआ, कुछ पता न चला. गांव से पंद्रह-बीस मील दूर कहीं उसने अपने पति को मिट्टी दी और वह अनशी के घर यानी मां के घर आ गयी. अनशी और शिती तीन-चार दिन तक जोर-जोर से रोती रहीं लेकिन रो कर पेट तो भरनेवाला नहीं था. बूढ़ी अनशी को अपना ही पेट भरना दूभर था, ऊपर से शिती आ गयी थी. घुटनों पर हाथ धरे अल्यूमीनियम का पतीला लिये अनशी मांगने जाती. उस मौके पर किसना ने यश्वदी की उतरी तीन साड़ियां और चोलियां बूढ़ी को ला दी थीं. मिलिंद नगर के अधिकांश घर बस किसी तरह जी भर रहे थे. उन्हें मांगों के घरों के सुख-दुःख से मतलब न था. सड़ा-बासा, दाना-पानी, पैसा-धेला मिलने के लिए अनशी को एक ही घर था, किसना का! उसे वह देवता जान पड़ता. यही बुढ़िया किसना के बच्चे मरने के कारण भगवान को मोटी-मोटी गालियां दिया करती थी. और चूंकि बुढ़िया का किसना के घर से ज्यादा अपनापन था इसलिए बाकी घरों से उसे अधिक कुछ न मिलता.

जब शिती रांड होकर आयी तो अनशी बूढ़ी तो एकदम पगला ही गयी थी. लेकिन उसके मन में कुछ समाधान भी था. उसके मन में यह स्वार्थी विचार आया कि अब अगर मैंने दुःख-बीमारी में जमीन पकड़ ली तो बच्ची सम्हाल तो लेगी. शिती आने पर भी महीने भर तक बाहर की सारी दौड़ अनशी ही करती रही. फिर शिती भी उसके साथ बाहर आने-जाने लगी थी.उसने अपनी मां से, प्रसव कराने की, रक्त से सने हाथ निविकार रूप से साफ करने की, गर्भ से बाहर पड़नेवाला प्राणी के चारों ओर लिपटी नाल छुरी से सहज निःसंकोच काटने की, जच्चा की मालिश करते-करते थोड़ा तेल निकाल लेने की, बच्चे के कान में नारियल का तेल डालते समय हाथ-पांवों में चुपड़ लेने की, और कपास के बड़े फाहे में नारियल का तेल सोखकर नागबेल के पत्ते में लपेट ला कर घर के दिये में निचोड़ने की विद्या भलीभांति सीख ली थी. चिकनी सुपारी, अजवायन, गरी, गुड़ की भेली कभी मांग कर और कभी चुपचाप घर लाने तथा प्रसव उलझनपूर्ण न होने पर भी भागदौड़ कर या चिढ़कर वातावरण में सरगर्मी पैदा करने की कला में भी अब शिती सिद्धि पा चुकी थी.

यह सब उसने चार-पांच महीनों की अवधि में हुए आठ-दस प्रसवों से सीख लिया था.लेकिन अभी तक किसी ने उलझे जच्चा को छुड़ाने के लिए [illegible] शिती को कभी एक बार

न बुलाया था, इसलिए उसका मन कड़ुवा था. मां अब कितने दिनों की साथी है? एकाध दिन उसका भला-बुरा होने पर अपना क्या होगा? बस्ती पांच-सात घरों की है. घर बसाने की सोचे तो यहां सभी बासी टुकड़ों तक के मोहताज ठहरे. . .उसके मन में इन विचारों की भीड़ लगी रहती . मां के साथ वह किसना के घर जाती रहती थी.

* *

उस दिन बूढ़ी अनशी को भोर से ही हरारत थी. किसना के घर पांचवी बार हुई बच्ची को जिलाने के लिए अनशी ने अपने सारे पैंतरे दांव पर लगाए थे. उसने अपने अन्नदाता की घरवाली की बड़े मन से सेवा की थी, इतनी सेवा कि बच्ची के दुःख से कातर यश्वदी तक ने कहा था— तू बिचारी क्या करती. तूने कौन-सा कष्ट उठा रखा, लेकिन मेरे भाग में ही संतान नहीं... प्रसव के बाद जच्चा की दो-ढ़ाई महीने देखभाल और मालिश करा सकने की हैसियत मिलिंद नगर के एक ही घर की थी. किसना दुःखी पत्नी को किसी बात की कमी न पड़ने देता था. बुखार से तपती बूढ़ी अनशी अपनी नयी विधवा हुई बेटी को कहीं अकेली न भेजती लेकिन किसना के यहां तो जाना ही था. उस दिन शिती गयी और उसने बूढ़ी मां के कमजोर हाथों की मालिश की अपेक्षा जच्चा को कहीं अधिक सुख दिया. यश्वदी शिती पर एकदम खुश हो गयी . आज उसकी नस-नस तेल पीकर तृप्त हो चुकी थी. उसने खुश होकर शिती को अपने घर बनी मुर्गी की गरेबी दी. गेहूं के आटे की तेल चुपड़ी रोटी और मुर्गी की गरेबी शिती और अनशी ने पेट भर खाया.

आठ-दस दिन में यश्वदी चूल्हे के पास बैठी-बैठी थोड़ा-बहुत काम करने लगी थी. किसना की चचाजात बहन अपने गांव लौट चुकी थी. अच्छा खाने की इच्छा होने पर किसना करीम के, होटल से डिब्बा भरवा लाता, बाकी बचता सो शिती को दे दिया जाता. वह भरपेट खाती. जन्म से कभी ऐसा खाना तो मिला नहीं था.

अब अनशी की तबीयत भी कुछ सुधर चली थी. लेकिन तीन-चार दिन मिला सुख और अच्छे अन्न की सुस्ती उसे उठने न देती थी. बोली—अब तू ही जाया कर, मैं पूरी तरह अच्छी नहीं हो पायी. मां के स्वीकार कर लेने पर शिती मन में आनंदित हो उठी थी.

अब उसे भी आत्मविश्वास हो चला था. कभी-कभार उसे अपनी सात-आठ साल की गृहस्थी की याद हो आती तो एक उदासीनता भर जाती. अब दूसरों की मेहरबानी पर ही जीना होगा, वह अपने मन को समझाती, उसके चार-पांच घंटे तो किसना के ही घर बीतते थे. कपड़े धोना, बर्तन मलना, साफ-सफाई, अनाज पीसना, और मालिश आदि कितने ही काम वह किया करती थी. मालिश के बाद यश्वदी अपने पलंग पर गहरी नींद सो जाती. शिती का काम चलता रहता. किसना के नहाने के लिए वही पानी भी तपाती थी और ऐसे ही...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—किस्ना दा लट्ठे कहां रखे हैं? उसने नहाने का पानी चूल्हे पर चढ़ाते समय शिती ने पूछा.

—पीछे की पौर में हैं, ले ले. उसने चबूतरे पर बैठे-बैठे नीम की दतून चबाते हुए कहा.

शिती ने दो-तीन दरवाजे खोलकर देखे लेकिन ईंधन की लकड़ी कहीं दिखाई न दी. उसने फिर से किसना के नाम की पुकार लगायी. 'आया आया' कहता किसना भीतर गया और बिलकुल परले सिरे की एक पौर खोल कर उसे लकड़ियों का ढेर दिखाया. लकड़ियों का इतना बड़ा, साल भर तक चलनेवाला अंबार देखकर शिती चकरा गयी. वह भीतर घुसकर झुककर लकड़ी निकालने लगी. किसना ने दो-चार बार भीतर-बाहर के चक्कर लगाए और फिर उसके दोनों पंजों ने शिती के स्तनों को समेट लिया. क्षणभर वह चकरायी, घबड़ायी. लेकिन किसना के गोरे, चिट्टे मर्दाने आलिंगन में अपने आप निढाल हो गयी—छोड़ो न, कोई आ जाए तो, भाभी क्या कहेगी. . .? उसके ओठों से अपने ओठ छुड़ाती वह किसी तरह बोली. किसना ने उसकी साड़ी की कांच खोली जो एक लकड़ी में फंस गयी थी. उसकी देह एक पढ़े-लिखे आदमी द्वारा शालीनता से, धीमे से भोगी जा रही थी. वह तृप्ति से बौरा रही थी.

ज्वार उतर जाने पर किसना बहुत शर्मिंदा हुआ. . . अगर वह जरा भी प्रतिकार करती तो. . .तो ऐसा कुछ होता ही नहीं. उसकी पृष्ठाकृति से वह असंयमी बन गया था. ग्लानि के स्वर में बोला—शिती, यह मैंने अच्छा नहीं किया, मुझे ही मेरी लाज आती है. शिती ने उसकी ओर विचित्र दृष्टि से देखा. धोती की तिन्नियां डाल कछौटा मारा. चोली की गांठ संवारी. आंचल से चेहरे का पसीना पोंछा और हंसते हुए धीमी लेकिन साफ आवाज में बोली—क्या अच्छा-बुरा लिये बैठे हो, जिसका दानी-पानी उसे मिल गया. . .और किसना के गोरे उघाड़े शरीर की तरफ देखते हुए लकड़ियां उठाये उसका मोर्चा चूल्हे की ओर मुड़ गया.

किसना और शिती के बीच यह नया नाता न केवल निर्मित हुआ वरन अब किसना अपने शरीर की मांग को सब कुछ समर्पित करनेवाली शिती की यश्वदी से तुलना करने लगा. आठ-दस दिन में एक बार संपर्क में आए बिना अब उन्हें चैन न मिलता.

अच्छे खाने-पीने का रंग शिती के शरीर पर चढ़ता जा रहा था. प्रकृति ने भी उसे किसी कठिनाई में नहीं डाला था, कि सिवाय बूढ़ी अनशी की उसके मासचक्र पर कड़ी नजर थी. बेफिक्री और सहजता से उनकी दुनिया चल रही थी. यश्वदी को छठवीं बार गर्भ रहने पर किसना ने उसका अलग तरह से प्रबंध करना निश्चित किया था. इस बार उसे गांव या उसके नैहर में न रखकर अलीचपुर में रहनेवाले यश्वदी के मामा के यहां अस्पताल में प्रसव कराने की बात निश्चित की गयी. जब पांचवां महीना बीता तो वह औरत को एलीचपुर पहुंचा आया.

अनशी और शिती ने उसे समझाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया लेकिन उसने किसी की न सुनी. अनशी को अपनी आमदनी डूबने और दो-तीन महीने के ठाठ

कैलाश मेश्राम : कवि और कहानीकार

लुट जाने का दुःख था. किसना बुढ़िया को खूब जानता था. उसने बूढ़ी अनशी से कहा—बुढ़िया, फिक्र क्यों करती ह? कोई कमी न पड़ने दूंगा. तुम या शिती पहले की तरह झाड़ने-बुहारने के लिए आती रहो. मैं पैसे दूंगा. तुम दोनों का काम चलता रहेगा. ठीक है? उसके दयालु शब्दों की बारिश से अनशी का मन सराबोर हो उठा. . .और शिती ने कल्पना की आंखों से भारी-भरकम पलंग के नरम गद्दे पर पड़ा अपना विवस्त्र शरीर देखा.

शुरू-शुरू में शिती सुबह या दोपहर में जाती और पांच मिनट में लौट आती. कहती—वे सोए हैं. अनशी सोचती कहीं इस तरह वे 'ना' न कर दें. वह शिती के पास रिरयाती—क्यों री, अच्छा खाने-पीने को मिलने लगा तो मस्ती चढ़ आयी क्या?

शिती भी शिकायत के स्वर में कहती—ओ मां, उनके बर्तन रात को होते हैं. मुझे अंधेरे में कुत्तों का बड़ा डर लगता है.

—अरे बेटी, अपना घर समझ कर काम करना चाहिए. वह तो भगवान का औतार समझो. तुम्हारे भाई जैसा है. देर होने पर तुम्हें छोड़ जाया करेगा. वह कहां गांववालों को घास डालता है.

फिर शिती इस तरह किसना के घर जाती जैसे अनशी के कहने से ही उसे जाना पड़ रहा हो. मुलायम गद्दों, पर, दिये की रोशनी में खुलकर शरीर लुटाकर, अन्न, पैसे, कपड़ा आदि लेकर तृप्त मन और शरीर के साथ वापस लौटती. शिती और किसना की इच्छा होती कि रात भर आलिंगनबद्ध हो लेटे रहें.

जब शिती ने किसना को बताया कि गत दो-महीनों से उसका मासचक्र चूक गया है तो उसकी नींद हवा हो गयी. अगले वाक्य से तो वह डगमगा ही गया था. शिती ने कहा था—मुझे तो अच्छा घर चाहिए ही था. आकर तुम्हारे पैरों के पास रहूंगी. तुम्हारे लोग भी दो दिन बड़बड़ा कर चुप बैठेंगे.

किसना का सीना धड़क उठा था. मन विचित्र दृश्य दिखा रहा था. मस्तिष्क तेजी से अपने काम में लगा था. चिंता का घूंट निगलकर वह सहज शब्दों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे, वह एकाएक ढह गयी. बच्चे जोर से चीखे. बीच नदी में चट्टान की ओट में खड़ा उसका पति सपाटे से बच्चों को बचाने के लिए लपका था. लेकिन सामने से बहता हुआ बबूल का तना उसके जबड़े पर टकराया और वह स्वयं बह उठा. 'मांग डूब गया' की चीख पुकार फैली. दो-एक अव्वल तैराक थे, लेकिन मांगों को छुए कौन? आगे कहीं किनारे लग ही जाएंगे. सब वापस लौट पड़े. मांगों के घरों पर तो आफत टूट पड़ी थी. शिती के शोक की सीमा न थी. तीन साल के दूसरे लड़के और पति की लाशें कहीं किनारे आ लगी थीं. एक लड़के का क्या हुआ, कुछ पता न चला. गांव से पंद्रह-बीस मील दूर कहीं उसने अपने पति को मिट्टी दी और वह अनशी के घर यानी मां के घर आ गयी. अनशी और शिती तीन-चार दिन तक जोर-जोर से रोती रहीं लेकिन रो कर पेट तो भरनेवाला नहीं था. बूढ़ी अनशी को अपना ही पेट भरना दूभर था, ऊपर से शिती आ गयी थी. घुटनों पर हाथ धरे अल्यूमीनियम का पतीला लिये अनशी मांगने जाती. उस मौके पर किसना ने यश्वदी की उतरी तीन साड़ियां और चोलियां बूढ़ी को ला दी थीं. मिलिंद नगर के अधिकांश घर बस किसी तरह जी भर रहे थे. उन्हें मांगों के घरों के सुख-दुःख से मतलब न था. सड़ा-बासा, दाना-पानी, पैसा-धेला मिलने के लिए अनशी को एक ही घर था, किसना का! उसे वह देवता जान पड़ता. यही बुढ़िया किसना के बच्चे मरने के कारण भगवान को मोटी-मोटी गालियां दिया करती थी. और चूंकि बुढ़िया का किसना के घर से ज्यादा अपनापन था इसलिए बाकी घरों से उसे अधिक कुछ न मिलता.

जब शिती रांड होकर आयी तो अनशी बूढ़ी तो एकदम पगला ही गयी थी. लेकिन उसके मन में कुछ समाधान भी था. उसके मन में यह स्वार्थी विचार आया कि अब अगर मैंने दुःख-बीमारी में जमीन पकड़ ली तो बच्ची सम्हाल तो लेगी. शिती आने पर भी महीने भर तक बाहर की सारी दौड़ अनशी ही करती रही. फिर शिती भी उसके साथ बाहर आने-जाने लगी थी.उसने अपनी मां से, प्रसव कराने की, रक्त से सने हाथ निर्विकार रूप से साफ करने की, गर्भ से बाहर पड़नेवाला प्राणी के चारों ओर लिपटी नाल छुरी से सहज निःसंकोच काटने की, जच्चा की मालिश करते-करते थोड़ा तेल निकाल लेने की, बच्चे के कान में नारियल का तेल डालते समय हाथ-पांवों में चुपड़ लेने की, और कपास के बड़े फाहे में नारियल का तेल सोखकर नागबेल के पत्ते में लपेट ला कर घर के दिये में निचोड़ने की विद्या भलीभांति सीख ली थी. चिकनी सुपारी, अजवायन, गरी, गुड़ की भेली कभी मांग कर और कभी चुपचाप घर लाने तथा प्रसव उलझनपूर्ण न होने पर भी भागदौड़ कर या चिढ़कर वातावरण में सरगर्मी पैदा करने की कला में भी अब शिती सिद्धि पा चुकी थी.

यह सब उसने चार-पांच महीनों की अवधि में हुए आठ-दस प्रसवों से सीख लिया था.लेकिन अभी तक किसी ने उलझे जच्चा को छुड़ाने के लिए [illegible] शिती को कभी एक बार न बुलाया था, इसलिए उसका मन कड़ुवा था. मां अब कितने दिनों की साथी है? एकाध दिन उसका भला-बुरा होने पर अपना क्या होगा? बस्ती पांच-सात घरों की है. घर बसाने की सोचे तो यहां सभी बासी टुकड़ों तक के मोहताज ठहरे. . .उसके मन में इन विचारों की भीड़ लगी रहती . मां के साथ वह किसना के घर जाती रहती थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

* *

उस दिन बूढ़ी अनशी को भोर से ही हरारत थी. किसना के घर पांचवी बार हुई बच्ची को जिलाने के लिए अनशी ने अपने सारे पैंतरे दांव पर लगाए थे. उसने अपने अन्नदाता की घरवाली की बड़े मन से सेवा की थी, इतनी सेवा कि बच्ची के दुःख से कातर यश्वदी तक ने कहा था—तू बिचारी क्या करती. तूने कौन-सा कष्ट उठा रखा, लेकिन मेरे भाग में ही संतान नहीं... प्रसव के बाद जच्चा की दो-ढ़ाई महीने देखभाल और मालिश करा सकने की हैसियत मिलिंद नगर के एक ही घर की थी. किसना दुःखी पत्नी को किसी बात की कमी न पड़ने देता था. बुखार से तपती बूढ़ी अनशी अपनी नयी विधवा हुई बेटी को कहीं अकेली न भेजती लेकिन किसना के यहां तो जाना ही था. उस दिन शिती गयी और उसने बूढ़ी मां के कमजोर हाथों की मालिश की अपेक्षा जच्चा को कहीं अधिक सुख दिया. यश्वदी शिती पर एकदम खुश हो गयी . आज उसकी नस-नस तेल पीकर तृप्त हो चुकी थी. उसने खुश होकर शिती को अपने घर बनी मुर्गी की गरेबी दी. गेहूं के आटे की तेल चुपड़ी रोटी और मुर्गी की गरेबी शिती और अनशी ने पेट भर खाया.

आठ-दस दिन में यश्वदी चूल्हे के पास बैठी-बैठी थोड़ा-बहुत काम करने लगी थी. किसना की चचाजात बहन अपने गांव लौट चुकी थी. अच्छा खाने की इच्छा होने पर किसना करीम के, होटल से डिब्बा भरवा लाता, बाकी बचता सो शिती को दे दिया जाता. वह भरपेट खाती. जन्म से कभी ऐसा खाना तो मिला नहीं था.

अब अनशी की तबीयत भी कुछ सुधर चली थी. लेकिन तीन-चार दिन मिला सुख और अच्छे अन्न की सुस्ती उसे उठने न देती थी. बोली—अब तू ही जाया कर, मैं पूरी तरह अच्छी नहीं हो पायी. मां के स्वीकार कर लेने पर शिती मन में आनंदित हो उठी थी.

अब उसे भी आत्मविश्वास हो चला था. कभी-कभार उसे अपनी सात-आठ साल की गृहस्थी की याद हो आती तो एक उदासीनता भर जाती. अब दूसरों की मेहरबानी पर ही जीना होगा, वह अपने मन को समझाती, उसके चार-पांच घंटे तो किसना के ही घर बीतते थे. कपड़े धोना, बर्तन मलना, साफ-सफाई, अनाज पीसना, और मालिश आदि कितने ही काम वह किया करती थी. मालिश के बाद यश्वदी अपने पलंग पर गहरी नींद सो जाती. शिती का काम चलता रहता. किसना के नहाने के लिए वही पानी भी तपाती थी और ऐसे ही...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—किस्ना दा लट्ठे कहां रखे हैं? उसने नहाने का पानी चूल्हे पर चढ़ाते समय शिती ने पूछा.

—पीछे की पौर में हैं, ले ले. उसने चबूतरे पर बैठे-बैठे नीम की दतून चबाते हुए कहा.

शिती ने दो-तीन दरवाजे खोलकर देखे लेकिन ईंधन की लकड़ी कहीं दिखाई न दी. उसने फिर से किसना के नाम की पुकार लगायी. 'आया आया' कहता किसना भीतर गया और बिलकुल परले सिरे की एक पौर खोल कर उसे लकड़ियों का ढेर दिखाया. लकड़ियों का इतना बड़ा, साल भर तक चलनेवाला अंबार देखकर शिती चकरा गयी. वह भीतर घुसकर झुककर लकड़ी निकालने लगी. किसना ने दो-चार बार भीतर-बाहर के चक्कर लगाए और फिर उसके दोनों पंजों ने शिती के स्तनों को समेट लिया. क्षणभर वह चकरायी, घबड़ायी. लेकिन किसना के गोरे, चिट्टे मर्दाने आलिंगन में अपने आप निढाल हो गयी—छोड़ो न, कोई आ जाए तो, मामी क्या कहेगी...? उसके ओठों से अपने ओठ छुड़ाती वह किसी तरह बोली. किसना ने उसकी साड़ी की कांच खोली जो एक लकड़ी में फंस गयी थी. उसकी देह एक पढ़े-लिखे आदमी द्वारा शालीनता से, धीमे से भोगी जा रही थी. वह तृप्ति से बौरा रही थी.

ज्वार उतर जाने पर किसना बहुत शर्मिंदा हुआ... अगर वह जरा भी प्रतिकार करती तो.. .तो ऐसा कुछ होता ही नहीं. उसकी पृष्ठाकृति से वह असंयमी बन गया था. ग्लानि के स्वर में बोला—शिती, यह मैंने अच्छा नहीं किया, मुझे ही मेरी लाज आती है. शिती ने उसकी ओर विचित्र दृष्टि से देखा. धोती की तिन्नियां डाल कछौटा मारा. चोली की गांठ संवारी. आंचल से चेहरे का पसीना पोंछा और हंसते हुए धीमी लेकिन साफ आवाज में बोली—क्या अच्छा-बुरा लिये बैठे हो, जिसका दानी-पानी उसे मिल गया.. .और किसना के गोरे उघाड़े शरीर की तरफ देखते हुए लकड़ियां उठाये उसका मोर्चा चूल्हे की ओर मुड़ गया.

किसना और शिती के बीच यह नया नाता न केवल निर्मित हुआ वरन अब किसना अपने शरीर की मांग को सब कुछ समर्पित करनेवाली शिती की यश्वदी से तुलना करने लगा. आठ-दस दिन में एक बार संपर्क में आए बिना अब उन्हें चैन न मिलता.

अच्छे खाने-पीने का रंग शिती के शरीर पर चढ़ता जा रहा था. प्रकृति ने भी उसे किसी कठिनाई में नहीं डाला था, कि सिवाय बूढ़ी अनशी की उसके मासचक्र पर कड़ी नजर थी. बेफिक्री और सहजता से उनकी दुनिया चल रही थी. यश्वदी को छठवीं बार गर्भ रहने पर किसना ने उसका अलग तरह से प्रबंध करना निश्चित किया था. इस बार उसे गांव या उसके नैहर में न रखकर अलीचपुर में रहनेवाले यश्वदी के मामा के यहां अस्पताल में प्रसव कराने की बात निश्चित की गयी. जब पांचवां महीना बीता तो वह औरत को एलीचपुर पहुंचा आया.

अनशी और शिती ने उसे समझाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया लेकिन उसने किसी की न सुनी. अनशी को अपनी आमदनी डूबने और दो-तीन महीने के ठाठ लुट जाने का दुःख था. किसना बुढ़िया को खूब जानता था. उसने बूढ़ी अनशी से कहा—बुढ़िया, फिक्र क्यों करती ह? कोई कमी न पड़ने दूंगा. तुम या शिती पहले की तरह झाड़ने-बुहारने के लिए आती रहो. मैं पैसे दूंगा. तुम दोनों का काम चलता रहेगा. ठीक है? उसके दयालु शब्दों की बारिश से अनशी का मन सराबोर हो उठा.. .और शिती ने कल्पना की आंखों से भारी-भरकम पलंग के नरम गद्दे पर पड़ा अपना विवस्त्र शरीर देखा.

कैलाश मेश्राम : कवि और कहानीकार

शुरू-शुरू में शिती सुबह या दोपहर में जाती और पांच मिनट में लौट आती. कहती—वे सोए हैं. अनशी सोचती कहीं इस तरह वे 'ना' न कर दें. वह शिती के पास रिरयाती—क्यों री, अच्छा खाने-पीने को मिलने लगा तो मस्ती चढ़ आयी क्या?

शिती भी शिकायत के स्वर में कहती—ओ मां, उनके बर्तन रात को होते हैं. मुझे अंधेरे में कुत्तों का बड़ा डर लगता है.

—अरे बेटी, अपना घर समझ कर काम करना चाहिए. वह तो भगवान का औतार समझो. तुम्हारे भाई जैसा है. देर होने पर तुम्हें छोड़ जाया करेगा. वह कहां गांववालों को घास डालता है.

फिर शिती इस तरह किसना के घर जाती जैसे अनशी के कहने से ही उसे जाना पड़ रहा हो. मुलायम गद्दों, पर, दिये की रोशनी में खुलकर शरीर लुटाकर, अन्न, पैसे, कपड़ा आदि लेकर तृप्त मन और शरीर के साथ वापस लौटती. शिती और किसना की इच्छा होती कि रात भर आलिंगनबद्ध हो लेटे रहें.

जब शिती ने किसना को बताया कि गत दो महीनों से उसका मासचक्र चूक गया है तो उसकी नींद हवा हो गयी. अगले वाक्य से तो वह डगमगा ही गया था. शिती ने कहा था—मुझे तो अच्छा घर चाहिए ही था. आकर तुम्हारे पैरों के पास रहूंगी. तुम्हारे लोग भी दो दिन बड़बड़ा कर चुप बैठेंगे.

किसना का सीना धड़क उठा था. मन विचित्र दृश्य दिखा रहा था. मस्तिष्क तेजी से अपने काम में लगा था. चिंता का घूंट निगलकर वह सहज शब्दों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने बोला—अरी, मैं खुद ही जा कर अनशी को बताऊंगा. गा-बजा कर तुझे घर लाऊंगा. गांव में बूढ़े-बूढ़ी को और यश्वदी को भी बताऊंगा. मैं भी अब रह नहीं पाता हूं. . .और इन शब्दों से शिती में छिपी बैठी आदिम स्त्री पूरी तरह खो गयी. वह उसके लिए चाहे जो करने को तैयार हो गयी.

किसना दो दिन बाहर गांव जाने की बात कह कर चला गया था. अगले महीने यानी पंद्रह दिन बाद वह स्वयं कहने वाला था इसलिए ओठों पर आयी आनंद की यह बात शिती ने बूढ़ी अनशी से कहना रोक रखा था. किसी प्रकार भी किसना का मन न दुखे, इसकी वह पूरी कोशिश कर रही थी.

★ ★

किसना शहर में भटक रहा था. काफी तिकड़म से उसने सादिल्ला का पता चलाया था. सादिल्ला भी एक ही औलिया था. लोग मुर्गी, कबूतर या तीतर पालते हैं लेकिन सादिल्ला सांप पालता था. कैसा ही विषैला सांप वह हाथ से पकड़ लेता था. उसके बड़े बंगले के सामने सांप पेटी-पिटारियों में भरे पड़े रहते थे. नागपुर तक की प्रयोगशालाओं में वह सांप भेजा करता था. सर्पदंश पर वह उपचार भी करता था.

सादिल्ला से एकांत में मिलने के लिए किसना को काफी देर बैठे रहना पड़ा था. उसके विश्वासपात्र कुछ लोगों को मिन्नतें कर और पैसा खिला कर किसना ने अपना बना लिया था. अपने हाथों कुछ गलत हो रहा है, इस बात का ज्ञान किसना को अस्वस्थ किये दे रहा था. किंतु अब बातें इस हद तक आगे बढ़ चुकीं थीं कि पीछे कदम रखने की कोई गुंजाइश न बची थी. सादिल्ला से अंतिम बातचीत होने तक किसना बेचैन था. अब जमाव कम हो चुका था. सादिल्ला के लोगों ने इशारा किया. दीवानखाने में कई फोटो टंगे थे. सभा-सम्मेलनों में, बड़े आदमियों के साथ, इनाम पाते समय के सादिल्ला के.

—बोलो किसना सेठ! लाल चटख नैपकीन से हाथ पोंछता सादिल्ला बाहर आया. सादिल्ला छह फुट से भी अधिक ऊंचा था. प्रचंड शरीर, पीली-कंजी आंखें. मोटी काली-स्याह बरौनियां. चौड़ी गर्दन. तरबूज जैसा चेहरा. लेकिन आवाज नाजुक थी. उस लंबे-चौड़े शरीर के लिए वह आवाज निसंगत जान पड़ती थी.

सादिल्ला सामने की कुर्सी पर बैठ गया. क्या इसे फिर से सब कुछ बताना पड़ेगा? इस शंका से किसना बेचैन हो उठा. लेकिन सादिल्ला ही बोला—तुम फिक्र मत करो! हमने ऐसे कई काम किये हैं. तुम्हारा काम करूंगा. किसना के जी में जी आया. तीन हजार के नकद नोटों पर सौदा पक्का हुआ. किसना हलके मन से अपने होटल के कमरे में लौटा.

दूसरे दिन जब पैसे चुका कर किसना लौटा तो रात का एक बज चुका था. मिलिंद नगर गाढ़ी नींद में सोया था. झींगुरों का अखंड स्वर एक लय में जारी था. अंधेरा रौंदता हुआ आ कर वह अपने घर में लेट गया.

भोर जब वह एकाएक जागा तो सूरज काफी ऊपर चढ़ आया था. धारियों वाला पजामा सम्हालता वह बाहर आया. बस्ती के उस छोर पर काफी भीड़ इकट्ठी हुई जान पड़ी. उसके कानों पर औरतों और बच्चों के बोलने का कोलाहल छा गया.

—क्या हुआ रे? एक भागते लड़के को रोक कर किसना ने पूछा.

—अरे मांगों के मुहल्ले में दो मांग औरतें मर गयीं. रात को सांप डस गया होगा. दोनों खत्म हो गयीं. बूढ़ी अनशी और उसकी लड़की. लड़का फिर से उस तरफ दौड़ने लगा. किसना सुनता रहा. . .सुनता रहा. . .किसना की छाती एकाएक धड़कने लगी. उसके कानों पर शब्द आ कर गिर रहे थे. वह फिर से भीतर की ओर मुड़ा और अपने को पलंग पर झोंक दिया. शरीर पर कपड़े ओढ़े वह लोट रहा था, उलटा-सीधा हो रहा था. दोनों जांघों के बीच तकिया भींच ली थी. शिती का विवस्त्र शरीर. . .उससे आलिंगन करता भुजंग. . . और. . .और. . . □□□

(अनुवाद : विष्णु निवसरकर)

घटनाकथा

बीस साल से चावल

हमें भर दोपहर में नाश्ता मिलता है. नाश्ते में मिलती है दलिया. दोपहर का भोजन क्या बला है हम नहीं जानते. रात को हमें चावल और इमली का पानी मिलता है.

यह जवाब था श्रीकाकुलम जिले के हरिजन होस्टल के छात्रों का.

रसोइये से पूछा गया—तुम क्या पकाते हो?

—पिछले बीस साल से चावल पका रहा हूं.

—यहां बिजली नहीं है?

अतिथि को कंदील की रोशनी में होस्टल घुमाया जा रहा था.

—नहीं है श्रीमन्.

यह अतिथि थे, एच. सी. सरीन. आंध्र के राज्यपाल के तत्कालीन सलाहकार. वे अचानक इस होस्टल के दौरे पर आ गये थे.

श्री सरीन ने आगे देखा कि एक छोटे से कमरे के गीले फर्श पर दर्जनों हरिजन छात्र सोये हुए थे.

४३,००० हरिजन-आदिवासी छात्रों को होस्टल में बसाने के लिए आंध्र प्रदेश सरकार दो करोड़ रुपये खर्च करती है मगर समिति ने पाया कि ढोरों की तरह छात्रों को होस्टल में भरा गया है.

आंध्र में इस तरह के एक हजार होस्टल हैं जिनका नियंत्रण निजी लोगों के हाथों में है. कुछ होस्टलों के नाम भर सरकारी खातों में है. □□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनादि काल से हमारे समाज के दलित वर्ग पर खुल कर नाना प्रकार के शारीरिक अत्याचार होते रहे हैं, उनका आर्थिक शोषण किया जाता रहा है, उनकी बहू-बेटियों की इज्जत से सरेआम खेला जाता रहा है. आशा तो उन्हें यह थी कि भारत के स्वतंत्र हो जाने पर वे खुली हवा में सांस ले सकेंगे, समाज उन्हें उनके अधिकारों से वंचित नहीं रखेगा. किंतु क्या उनका यह स्वप्न भारत के स्वतंत्र हो चुकने के २८ वर्ष बाद भी पूरा हो पाया ? इसका उत्तर मिलेगा आपको 'सारिका' की खोजपूर्ण और शक्तिशाली एक दर्जन से अधिक मई'७५ के अंक की कहानियों में जिनके अधिकांश लेखक स्वयं समाज के इसी वर्ग से आते हैं.

इस अंक के अन्य आकर्षण होंगे 'कबिरा खड़ा बजार में' (हरिशंकर परसाई), 'मीना कुमारी की डायरी' (गुलजार), 'मेरा पन्ना' आदि जैसे लोकप्रिय स्तंभ.

मई'७५ अंक के कुछ लेखक:

गंगाधर पानतावणे
बंधु माधव
अमृता प्रीतम
प्र. ई. सोनकामले
प्रकाश न. खरात
मधु मंगेश कर्णिक
काजी अब्दुल सत्तार
गुरबचन सिंह भुल्लर

सारिका

मई, १९७५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

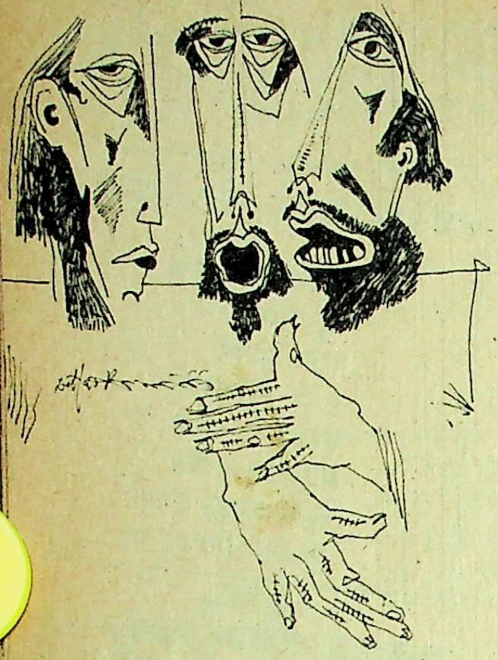

● [illegible] एस. राजे

पाटिल

● प्रल्हाद चेंदवणकर

पाटिल ने बुलवाया तो उसके घर जा पहुंचा
'बैठ' वह बोला पर आंगन तो गीला था.

टाट का टुकड़ा फटा अंग पर फेंक दिया
पर मैं खड़ा रहा मुंह नहीं खोला था.

फूटे प्याले में काला पानी मंगवाया उसने
मैं, चाय नहीं पीता,
उसमें मैल देख बोला था.

सुपारी का टुकड़ा तड़ से तोड़ पूछा—
मैं महारपूत तमाशे में क्यों नहीं जाता था.

चूतड़ खुजाते हुए
पाटिल बड़बड़ाता रहा
जूते भी उतारे बिना मैं सामने खड़ा था.

अब तक नहीं समझ पाया
क्यों यह सब सहन किया
पाटिल के बा' का मैंने क्या खाया था. □

कविता क्रांति

● शशिकांत लोखंडे

कविते,
तेरा स्वर फूट रहा है.
दिशा-दिशा से मुक्ति संग्राम की गूंज उठ रही है.
सूरज की आंखों में तूने ही
विद्रोह के गाने लिखे हैं.
यह धरती ठेकेदारों की नहीं है,
यह चंद्रमा ब्राह्मणों का नहीं है.
यह तारा मुसलमानों का नहीं है,
यह जुगनू कुलीनों का नहीं है.

कविते,
यह विश्व मानवों का है, यह प्रकाश सबका है
तू शब्दों में अर्थ भरती है.
दलितों में विश्व बंधुत्व भरती है
देख,
तेरे समान मुझे भी एक नया संसार दीख रहा है.
जहां दुखियों पर मानवता की छत्रछाया है
जहां हिंदुओं ने अपनी परंपरा को नोंच डाला है
और
ढाई हजार वर्षों के विद्रोह जख्मों को
चूम लिया है.
कविते,
तूने शब्दों की हत्या कर दी थी तब
जब तूने अछूत नगरी के युद्ध की चर्चा की थी
तू तो हमारी उपेक्षा मत कर
तेरे बिना हमारे जख्मों को
स्वर कौन देगा ? □

पूंजी

● ज. वि. पवार

इन हाथों से उलीचे गये कितने दुःख के सागर!
और दुःखी स्वयं बन गया सागर.
सागर की गहराई नापने का कहां है शक्तिशाली
विज्ञान.
पूछो उसे, गिन सकता हूं वो
मेरे दुःख की गहराई ?
जुग जुग से पचन किया है दुःख का,
जो दौड़ रहा मेरी धमनियों में
आया उबाल ! लेता उछाल !
इन आंखों को एक वरदान
नस नस के दुःखों को बाष्पीभूत करने का.
बनते हैं बादल उसके, मेरा नाता उनसे है.
दुख के बादल, बादलों का आकाश.
कैसा आकाश, मेरे अस्तित्व से व्यापी आकाश.
तुम आकाश का अर्थ पूछते हो.
मेरा शरीर है आकाश, आकाश.
वे हैं मेरे ही दुःख से डबडबाये.
इन बादलों को पीना चाहूं
तो भी आकाश बच जाता है.
आकाश को निगलने की सोचूं
तो क्षितिज का पता नहीं.
आकाश को क्षितिज नहीं होता, और क्षितिज
को क्षितिज नहीं होता
मेरा दुःख मेरी पूंजी बन जाता है.
(अनु. प्रा. र. के. सोनग्रा) □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोर्की

● अरुण कांबले

यह अराजक आक्रोश
ये रोज भरी जाने वाली जेल की कोठरियां

कानों पर गूंजती भूख की तड़पड़ाहट,
मेरी जोशीली कलाई में से भी
आज अश्रु बह रहे है.

इच्छा होती है––
इस कलाई को चूर चूर कर डालूं जैसे
मजदूर की छैनी चकनाचूर कर देती है
पत्थर की शिला को.

इच्छा होती है हाथ में उठी कलम को
तोड़ कर बिखेर दूं.

हृदय को चीर देने वाले इस आक्रोश को सुन कर
मेरे स्वप्नों में रोज गोर्की आता है,
तंग लंबा कोट पहने.

अपने बौने, फौलादी, हिम्मती सरदार के साथ
जिसके चेहरे पर कृतृत्व की लाली होती है.
जीभ पर घुमड़ती आवाज में गति होती है—
क्रांति की
और मुट्ठी में गुलाल होता है––
उत्साह का
टेबल पर मारे तो चरमरा उठे.

आज क्षितिज पर वही सरदार आया है
उसके कदम खड़ाक्-खड़ाक् चल रहे हैं
जंजीर का लाल कड़ा
उसका स्वागत कर रहा है.

मैं उसांस लेता हूं––गोर्की, गोर्की, गोर्की.

मेरा गोर्की कहां है? □

बाराखड़ी

● त्र्यंबक सपकाले

पाठशाला ले गया दुर्भाग्य,
वहां सीखी—
अ आ इ ई—
यानी कि बाराखड़ी,
भूल हुई तो—
मास्टर की फेंकी हुई फुटरूल कहीं भी पड़ी.

ओसारी पर हम,
कक्षा में मास्टर,
श्याम पट्ट पर––उ ऊ ए ऐ
और एक तीखी आवाज––
कुछ समझे या नहीं मूर्ख राज !

प्यास लगे तो––
भीख में पानी पियो,
बर्तन को हाथ मत लगाओ !

ओ औ अं अः
मास्टर की झिड़की––
अछूत हो, डंडे खाओ !

बारा खड़ी सीखे,
या जेल से छूटे,
फिर बिना मास्टर के ही पढ़ा––
जेल का संसार––

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः,
क्षितिज के पार !
क्षितिज के पार !! □

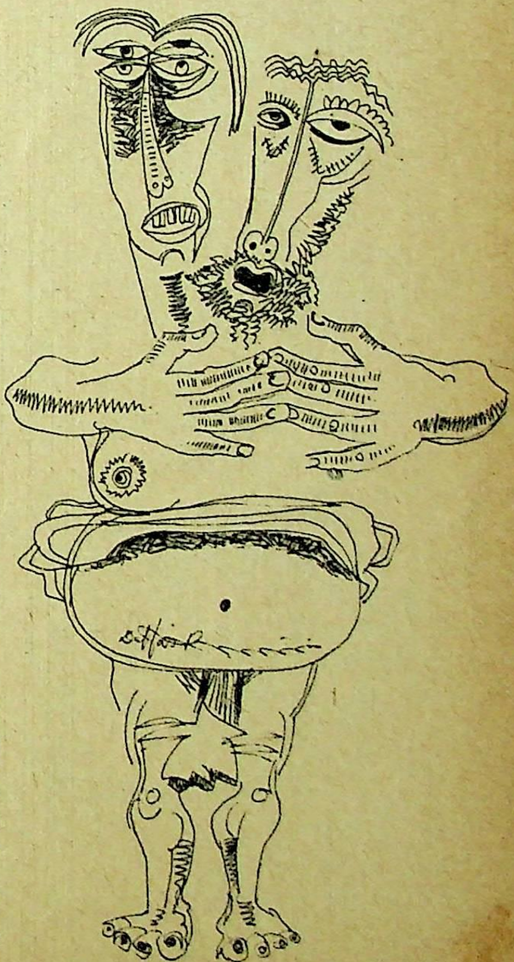

● बलासाम एस. राने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेज़र से त्वचा कटाकर और खूँटे-से बाल उगाकर झेंपते रहिए या...

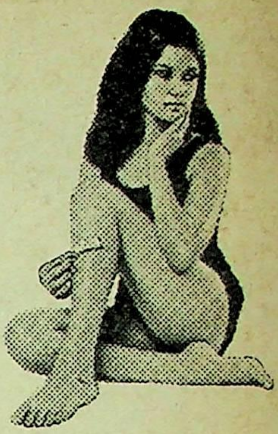

एन् फ्रेंच
हेयर रिमूवर से
रेशम-सी कोमल त्वचा पाइए

शेविंग ? नहीं, यह तो पुरुषों के लिए है। फिर त्वचा कटने और बाल कड़े उगने का भी डर। तो ? इसके लिए एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर लगाइए। कैसे ? बिल्कुल आसान है : अनचाहे बालों पर क्रीम लगाइए; थोड़ी देर ठहरिए, फिर गीली रूई से पोंछ डालिए। यह त्वचा के नीचे जाकर कार्य करता है। देखा बाल ग़ायब! आपकी त्वचा हफ़्तों मुलायम। तो छोड़िए रेज़र, एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर अपनाइए!

एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर

अनचाहे बालों को हटाने का मनचाहा क्रीम

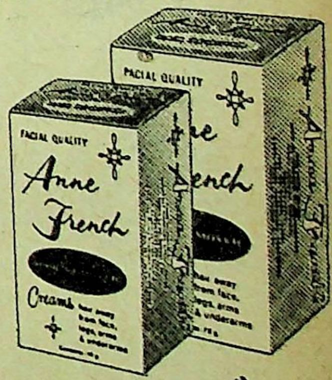

Licensed user of TM : Geoffrey Manners & Co. Ltd.

126 HR-203 Hin

२ साइज़ में सुलभ : ४० ग्रा. और ७५ ग्रा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दलित साहित्य : प्रक्रिया एवं रूपरेखा

● प्र. श्री. नेरूरकर

दलित साहित्य वह साहित्यिक, सामाजिक, क्रांतिगामी विद्रोह है, जो वर्तमान दशक के मराठी साहित्य के क्षेत्र में उठ खड़ा हुआ है. वह एक आक्रोश है, ह. हां, दलित साहित्य का इतिहास के आधार पर विचार करते समय यह ध्यान रखना पड़ेगा कि वह मात्र एक 'खीज' नहीं है. आज मराठी भाषा एवं साहित्य के विशाल प्रासाद में दलित साहित्य का अपना एक अलग दालान बन गया है. इसकी तरफ केवल मराठी आदमी का ही ध्यान गया हो यह बात नहीं है, बल्कि अब इस आंदोलन के भारत भर में फैलने के आसार नजर आ रहे हैं. अन्य भाषाभाषी भारतीय भी अब इस साहित्यिक विद्रोह में दिलचस्पी लेने लगे हैं और गंभीरता से इस पर विचार करने लगे हैं. अन्य भाषाभाषी साहित्यकारों और दलित साहित्यकारों के बीच हुई चर्चाओं से यह दिलचस्पी साफ झलकती है. खासकर हाल में बंबई में दलित युवकों के क्रांतिकारी संगठन 'दलित पैंथर्स' का जो उद्भव हुआ है और उसने यहां की राजनीति में जो उथल-पुथल मचा दी है, उसकी वजह से महाराष्ट्र की दलित युवा पीढ़ी ने सबका ध्यान अपनी तरफ, अपनी विचारधारा एवं साहित्यिक, राजनीतिक आंदोलन की तरफ आकर्षित कर लिया है. नवंबर १९७३ में 'टाइम्स आफ इंडिया' ने दलित साहित्य पर विशेष परिशिष्ट प्रकाशित किया था. इस परिशिष्ट द्वारा भारत के अंग्रेजी जानने वाले विविध भाषाभाषी विचारकों-लेखकों की विभिन्न पीढ़ियों को मराठी के दलित साहित्य का, दलित साहित्यकारों का और उनके साहित्यिक, सामाजिक विद्रोह का छोटा-सा ही सही, परिचय दिया जा सका. इस परिशिष्ट की प्रतिक्रिया के रूप में पाठकों के जो पत्र 'टाइम्स' के पास पहुंचे, उनसे दलित साहित्य की भारत भर में गूंजती आवाज का अंदाजा लगाया जा सकता है.

'दलित साहित्य' के माने क्या है? क्या 'दलित साहित्य' 'ललित साहित्य' है? या कि नहीं है? सही मानों में वह कौन-सा वर्ग है, जिसके लिए 'दलित' शब्द इस्तेमाल किया जाता है? मार्क्सवादी विचार प्रणाली के 'प्रोलेटेरिएट' शब्द से इसका क्या नाता है? क्या किसी एक जाति को घोषित करने वाला यह बस एक संकुचित जातिवाचक शब्द है? न जाने कितने सारे सवाल इस एक शब्द को ले कर पूछे जा रहे हैं और पूछे जा सकते हैं.

दलित साहित्य के आंदोलन में, दलित साहित्यकारों की नयी पीढ़ी के नेता एवं अग्रणी कहानीकार, उपन्यासकार तथा दलित आंदोलन एवं दलित साहित्य को समर्पित मासिक पत्रिका 'आम्ही' के संपादक बाबूराव बागूल ने अपने लेख 'दलित साहित्य' में 'दलित' शब्द एवं साहित्य की चर्चा की है. वह लिखते हैं, "दलित साहित्य वह विचार है, जो 'मानव' को प्रतिष्ठित करता है, मानव को देव-धर्म-देश से भी उच्च स्थान पर प्रस्थापित करता है. यही वह विचार है जो आज के युग के साथ मेल खा सकता है...." आगे वह लिखते हैं. "अर्थात 'दलित साहित्य' के पीछे जाति-भावना की परंपरागत प्रेरणा नहीं काम कर रही. वह निरा साहित्य भी नहीं. वह वर्तमान युग एवं वर्तमान समाज की पृष्ठभूमि पर स्थित है. दलित साहित्य निर्माणक्षम कलाकार का विचार है."

महाड़ में संपन्न हुए द्वितीय 'महाराष्ट्र बौद्ध साहित्य सम्मेलन' की अध्यक्षता करते हुए बाबूराव बागूल ने दलित साहित्य की प्रेरणा एवं धारणा की विवेचना की थी. उन्होंने कहा था, "दलित साहित्य का केंद्र बिंदु है मानव-मानव के इर्द-गिर्द वह घूमता है. उसकी राय में मानव महान है. इसीलिए मानव की स्वतंत्रता की घोषणा वह हर दम करता रहता है...मानव प्रकृति की छोटी प्रतिमा है. और गतिशील रहना, सृजनशील रहना प्रकृति का धर्म है."

१९६०-६१ में संपन्न हुए प्रथम 'महाराष्ट्र बौद्ध साहित्य सम्मेलन' के अध्यक्ष की हैसियत से बोलते हुए प्रगतिशील दलित साहित्यकार अण्णाभाऊ साठे ने कहा था, "मैं दावे के साथ कहता हूं कि दुनिया दलित की हथेली पर तोली गयी है. न कि शेष नाग के मस्तक पर. इसलिए इन दलितों के जीवन का चित्रण मैं ईमानदारी एवं आस्था के साथ करता आ रहा हूं और करता रहूंगा."

हाल ही में 'दलित पैंथर्स' ने जो घोषणापत्र प्रकाशित किया है, उसमें भी 'दलित कौन?' उपशीर्षक में 'दलित' शब्द की परिभाषा की गयी है. इसी घोषणा पत्र में 'दुनिया के दलितों से हमारा रिश्ता' शीर्षक में 'दलित पैंथर्स' लिखते हैं, "अमरीकी साम्राज्यवाद के षडयंत्र में आज सारी दलित दुनिया —उत्पीड़ित देश एवं दलित जनता पिसती जा रही है. अमरीका के मुट्ठी भर 'प्रतिक्रियावादी गोरे लोग नीग्रो लोगों पर जुल्म ढा रहे हैं. इन्हीं अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए 'ब्लैक पैंथर' आंदोलन का सूत्रपात हुआ. ब्लैक पैंथर आंदोलन ही से ब्लैक पॉवर (काले लोगों की सत्ता) का निर्माण हुआ. संघर्ष की चिनगारी सुलगी. इन्हीं सुलगती चिनगारियों से, इसी भड़कते आंदोलन से हमारा रिश्ता है. वियतनाम, कंबोदिया, अफ्रीका के आदर्श हमारे सामने हैं. दलित का मतलब है अनुसूचित जाति, बौद्ध कामगार, भूमिहीन मजदूर, कृषि-मजदूर, गरीब किसान, खानाबदोश जातियां, आदिवासी और नारी समाज." इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

दलित साहित्य की विचा[illegible] वादी मनोवृत्ति में अपनी परंपरागत, सांप्रदायिक, किताबी विचारप्राणाली न हो कर वर्तमान युग की मांगों से उत्पन्न मानव के प्रति आस्था रखने वाली विश्व-जनीन विचारप्रणाली है.

मराठी साहित्य के प्रगतिशील समीक्षक प्रा. शरच्चंद्र मुक्तिबोध अपने लेख 'दखित वाङ्मय : एक विचार' में इसी दृष्टिकोण की व्याख्या करते हैं, "इस प्रकार दलित साहित्य की अनुभूति ऐसी मूल्यगर्भ अनुभूति है. इस अनुभूति की मूल प्रेरणा है 'स्वतंत्रता'. अतः दलित साहित्य की अनुभूति में और प्रगतिशील लेखकों की अनुभूति में कोई मौलिक अंतर नहीं है, विरोध नहीं है — दलित लेखकों की अनुभूति अन्य (साधारण) लेखकों से भिन्न और इसीलिए विशेषतापूर्ण है, उसी तरह वह संकीर्ण न हो कर मौलिक (मूल्यगर्भ) है." इसी अनुभूति के संदर्भ में विद्यमान 'अतिव्यक्तिवादी कला की अनुभूति' के संबंध में प्रा. मुक्तिबोध लिखते हैं, "असल में अतिव्यक्ति-वाद व्यक्ति के विविध गुणविशेषों के परे पहुंच जाता है. किन्हीं विशेष मनोवस्थाओं, एकाकी, अगतिक मनो-वस्थाओं के रूप में ही वह शेष रह जाता है. अगतिकता की यह अनुभूति होने लगती हैं आदिम प्रेरणा एवं विश्व के यांत्रिक नियमों के कारण. और विश्व की अर्थहीनता, भयाकुल अस्तित्वानुभूति, इस अनुभूति के महत्वपूर्ण अंग होते हैं. दुनिया अपने आप में कोई अर्थ रखती हो या न रखती हो, साहित्य का उद्‌गम तो निस्संदेह जीवन-संबंधों की अर्थहीनता से ही हुआ है. इस प्रकार के साहित्य का उद्‌गम मध्यवर्गीय मराठी जीवन की एक विशेष अवस्था में ही निहित है. . . और ठीक इस प्रकार की विरोधी अनुभूति है दलित साहित्य की अनुभूति. एक अगतिकता लिये हुए है,दूसरी स्वतंत्रता की चेतना लिये हुए. एक अनुभूति उनकी है जो उन्नति की सारी संभावनाओं से हाथ धो बैठे हैं और दूसरी उनकी है, जिन्हें प्रगति की सारी संभावनाएं बाहें उठा-उठा कर अपने पास बुला रही हैं. और इसीलिए दलित साहित्य का आंदोलन इतना अर्थपूर्ण लगने लगता है. दलित लेखकों की यह अनुभूति अगर मानव की स्वतंत्रता को उभार सकी, तो यह मानना पड़ेगा कि यही वह अनुभूति है, जिसके द्वारा श्रेष्ठ साहित्य का निर्माण हो सकेगा."

यह सच है कि मराठी दलित साहित्य-आंदोलन के अधिकतर लेखक, कवि, क्रांतिकारी हिंदूधर्म संहिता के अनुसार शूद्र, अछूत समझे गये हैं. १९५६ में नागपुर में डा. बाबा साहेब आंबेडकर की प्रेरणा से जो धर्मचक्र परिवर्तन संपन्न हुआ, उसके बाद महाराष्ट्र के अधिकतर महार 'महार' नहीं रहे और नये क्रांतिकारी मानों में नवबौद्ध कहलाये. आज का दलित साहित्य आंदोलन मुख्य रूप से नवबौद्ध युवकों के सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, बौद्धिक उद्रेक और अनुभूतियों में से गुजरता हुआ विकास की दिशा में अग्रसर हो रहा है. और ऐसा होते हुए भी हम देख चुके हैं कि वह जाति या धर्म-विशेष से बंध कर नहीं रहा है. इसीलिए सवाल यह उठता है कि साहित्य-निर्माण की दृष्टि से दलित साहित्य का असली रूप क्या है?

वैसे देखा जाये, तो तीस-चालीस साल पहले मराठी साहित्य में जन्मे 'प्रगतिशील साहित्य'-आंदोलन से इसका नजदीकी रिश्ता है. उस समय अखिल भारतीय स्तर पर इस प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन का जन्म हुआ था. एक नये निर्माणक्षम, क्रांतिकारी साहित्य का जन्म हुआ था. ऐसे आंदोलन की शुरुआत हुई थी जिसका प्रेरणा-स्रोत आज भी मराठी के प्रगतिशील विचारकों, सर्जन-शील लेखकों, कवियों के जीवन एवं साहित्य का पोषण करता आ रहा है. इस आंदोलन के नेताओं ने हमेशा 'दलित साहित्य' के नये ऐतिहासिक, सामाजिक नारे को बुलंद किया है. और दलित साहित्यकारों ने भी क्रांतिकारी वैचारिक, भावनात्मक प्रेरणा के लिए प्रगति-, शील साहित्यिक आंदोलन के ज्येष्ठ विचारकों, लेखकों की तरफ देखा है. प्रा. अनंत काणेकर, स्व. लालजी पेंडसे, स्व. दि. के. बेडेकर, प्रा. शरच्चंद्र मुक्तिबोध, स्व. अण्णा. भाऊ साठे, स्व. शाहीर अमर शेख, नारायण सुर्वे, प्र. श्री. नेरुरकर, सबसे दलित साहित्य और साहित्यकारों के स्नेह और अपनापे के संबंध हैं, यही नहीं वे एक-दूसरे के पूरक, प्रेरक एवं प्रगतिशील सिद्ध हुए हैं.

आगे चल कर प्रगतिशील साहित्य भी अगतिकता, विवशता से ग्रस्त हो गया.मराठी में यह आंदोलन बीजा-वस्था में ही सड़-गल गया. परिणामतः वह सर्वव्यापी नहीं बन सका. इसकी वजहें कुछ वर्गीय, राजनीतिक और असाहित्यिक हैं .

कुछ अरसे बाद इस साहित्य का नामोनिशान तक नहीं बचा और प्रगतिशील आंदोलन को युगप्रवर्तनकारी प्रेरणा एवं गति देने की क्षमता उसमें जरा भी न रही. सौभाग्य से दलित साहित्य का जो आंदोलन मराठी में कदम बढ़ा रहा है, उसकी सृजनप्रक्रिया प्रगति के पथ पर बढ़ती नजर आती है. थोड़े साहस के साथ यह कहा जा सकता है कि दलित वर्ग के प्रस्थापित राजनीतिक वर्चस्व को नकारते हुए दलित साहित्य का यह आंदोलन एक

बायें से दायें : जितेंद्र भाटिया, कमलेश्वर, बाबूराव बागूल, दया पवार आदि.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयंभू साहित्यिक एवं सामूहिक प्रेरणा से उत्पन्न है. इसी लिए अण्णाभाऊ साठे से ले कर बाबूराव बागूल तक इसके निर्माण में आभिजात्य का एक अपना अलग दलित वर्गीय अंग जुड़ा हुआ है.

यह सारा साहित्य दलित वर्ग के रक्त-मांस से उत्पन्न है. यह दलितों का, दलितों द्वारा, दलितों की भाषा में लिखा गया जीवंत साहित्य है. जैसा कि बाबूराव बागूल कहते हैं, यह दलित साहित्य सीधे मानव हृदय से जा कर टकराता है. मानव इसका केंद्र बिंदु बन जाता है. यह वह इनसान नहीं है, जो आरामदेह चार दीवारी के अंदर बंद किसी- न-किसी धार्मिक करुणा में से साहित्य में उभरने वाला दयनीय मध्यवर्गीय होता है. यह वह इनसान है, जो दीवारों का, घर का, मानवता का, जीने के अधिकार का मोहताज है, जो आज तक पैरों तले कुचला जाता रहा है. सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, हर क्षेत्र में वह नकारा गया है. अमानुष आर्थिक अत्याचारों का शिकार तो वह है ही है. हिंदू धर्म की जातिप्रधान समाज-व्यवस्था में वह शारीरिक रूप से घुट कर रह गया है और मानसिक रूप से कब का दम तोड़ चुका है. बागूल की एक कहानी है — 'जब मैंने जान छिपायी थी.' यह इनसान इस कहानी के नायक जैसा है. मनु ने उसे ऐसा ही मानव बनाया है. धर्म ने उसका गला घोंटा है. महर्षि व्यास द्वारा कथित मोक्ष प्राप्ति के तीनों सूत्र 'धर्मेण, अर्थेन, कामेन' उसके लिए नहीं हैं. इसी पद-दलित वर्ग से उत्पन्न मराठी के दलित साहित्यकारों ने मराठी में प्रतिष्ठित मध्यवर्गीय सांस्कृतिक, साहित्यिक, धार्मिक व्यवस्था को नकारकर दलित साहित्य का झंडा उठा लिया है. दलित साहित्य का आंदोलन एक ठोस, सक्रिय एवं सृजनात्मक नकारवाद से उत्पन्न है. व्यवस्था की लीक पर चलने वाले स्वीकारात्मक वर्ग के संकीर्ण, संकेतों से बंधे-बंधाये साहित्य-सृजन पर व्यवस्थाहीन नकारात्मक वर्ग द्वारा बोला गया यह पहला-पहला हमला है.और यह वह हमला है जो विध्वंस के लिए उत्सुक नहीं, बल्कि विधायक सर्जनक्षमता एवं नवनिर्माणक्षम नयी साहित्यिक व्यवस्था की तरफ ले जाने वाला क्रांति का विस्फोट है. यह एक आक्रोश है, इतिहास-सापेक्ष आक्रमण भी है. लेकिन अंधा आक्रमण नहीं, विज्ञानाधिष्ठित, हजारों आंखों से सारे विश्व के यथार्थ को पचाने वाला सतर्क साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संक्रमण भी है.

बाबूराव बागूल के उपन्यास 'सूड' (बदला) की प्रस्तावना लिखते समय दलित साहित्य के वरिष्ठ और श्रेष्ठ भाष्यकार डा. म. ना. वानखेड़े कहते हैं, "नीग्रो समाज एवं लेखक की ही तरह दलित लेखक भी भलीभांति समझ चुका है कि दया की भीख मांग कर जिया नहीं जा सकता; कि विद्रोह किये बगैर यह दायरा नहीं टूटेगा और इसीलिए अब उसने अपनी आजाद कलम उठायी है; वह अपने क्रोध को अभिव्यक्ति देने लगा है. कोड़ों का प्रयोग किये बगैर, विद्रोह का झंडा फहराये बगैर ये सीमाएं नहीं टूटने वाली. अर्थात सीमाओं को तोड़ने का मतलब यह भी नहीं कि उसे समाज से अलग हो जाना है. उसे तो समाज में रहते हुए विद्रोह का नारा लगाना है. अंतर है तो बस इतना कि दया मांगने की जगह वह अब आग उगलने लगा है."

डा. वानखेड़े ने अमरीका में रहते हुए वहां के नीग्रो-जीवन को नजदीक से देखा-परखा है. उनके लेख में (अस्मितादर्श : 'नीग्रो वाङ्मय') मराठी में पहली बार नीग्रो और दलित साहित्य पर तुलनात्मक विचार किया गया है. 'काला साहित्य', 'काळी कविता', 'काला नाटक' नाम से आये नीग्रो समाज के साहित्यिक विद्रोह के संदर्भ में उन्होंने मराठी के दलित साहित्य की चर्चा करते हुए उसकी ऐतिहासिकता एवं विश्वजनीनता प्रमाणित की है. 'दलित साहित्य' की परिभाषा वह इस प्रकार करते हैं, "दलित लेखकों द्वारा दलितों के विषय में लिखा गया क्षोभकारी, विद्रोहकारी साहित्य है 'दलित साहित्य'. मराठी साहित्य के विशाल सागर से जा मिलने वाली यह नदिया है. आंचलिक साहित्य की ही तरह यह भी साहित्य के प्रासाद में एक दालान है. एक तरफ श्रेष्ठ साहित्य की कसौटी पर यह खरा उतरा है, दूसरी तरफ दलितों पर हो रहे अन्याय का, विषमता का चुभता हुआ एहसास भी इसमें है. यह मात्र 'मानवता' की बेहूदा, लिजलिजी भावना नहीं है; इसमें दलितों, पीड़ितों की वर्त्तमान अवस्था के मूल में पल रही परंपरा पर किये गये करारे वार हैं."

महाड़ में संपन्न द्वितीय दलित साहित्य संमेलन के अध्यक्ष की हैसियत से बाबूराव बागूल कहते हैं, "दलित साहित्य उनका साहित्य नहीं है' जो बदला लेने पर उतारू हो गये हैं. न ही वह द्वेषभावना का प्रसार करता है. बल्कि वह मानव की महानता एवं मुक्ति की घोषणा करता है. वह एक ऐतिहासिक आवश्यकता है और इसी लिए वह हट कर एक अलग नाम वहन करता है. जब दलित की लिखी हुई भी 'कविता' हो ही सकती है, अमरीका में किसीकी लिखी हुई भी 'कविता' हो ही सकती है, तो फिर साहित्य के लिए यह हटकर दिया हुआ अलग अभिधान क्यों? इसका एक कारण आप स्वयं हैं और दूसरा आज तक का भारतीय साहित्य एवं हमारा देश" सही मानों में इसे दलित साहित्य का घोषणापत्र कहा जा सकता है.

मराठी दलित साहित्य की रूपरेखाओं का ध्यान रखते हुए उसकी उन प्रक्रियाओं को दो तरह के विचार-स्तरों पर समझना जरूरी है. एक तो दलित साहित्य-आंदोलन में डा. बाबासाहेब आंबेडकर को प्राप्त हुआ अग्रस्थान. वह स्वयं ललित लेखक नहीं थे, लेकिन साहित्य के प्रेमी अवश्य थे. एक भेंटवार्त्ता में उन्होंने कहा था, "मैंने मनोविनोद के लिए न कभी कुछ पढ़ा है. न पढ़ता हूं. कथा-साहित्य की अपेक्षा मैंने ठोस विचार प्रधान साहित्य अधिक पढ़ा है. सीखने के लिए मैं साहित्य पढ़ता हूं. न कि मनोरंजन की खातिर. जिससे मुझे कुछ सीख मिलती है, उसीसे मेरा मनोरंजन हो जाता है." और आगे उन्होंने कहा था, "राजनीति के बाद साहित्यिक लेखन करना मैं पसंद करूंगा और एक स्वतंत्र उपन्यास लिखूंगा." ('दलित साहित्य व नव समाजनिर्मिति' :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

म. ना. वानखेड़े : अस्मितादर्श : दलित साहित्य विशेषांक, १९७३) दुर्भाग्यवश उनका [illegible] हो सका. वह कुछ साल और जीते रहते तो शायद मराठी साहित्य के अध्येताओं के हाथ में आज केलकर के उपन्यास ही की तरह आंबेडकर का उपन्यास भी होता. और वही शायद मराठी साहित्य में दलित साहित्य का अपने ढंग का एक रूप होता.

डा. आंबेडकर ने भारत की समाजनीति एवं राजनीति के क्षेत्र में पैर रखते ही हिंदू धर्म-व्यवस्था के खिलाफ बगावत का झंडा उठाया था. उनका ऐलान था, "हिंदू बन कर जन्मा हूं, मगर हिंदू बन कर मरूंगा नहीं!" इस बारे में उन्होंने गांधीजी तक से समझौता करना पसंद नहीं किया. बड़ी बेबाकी से गांधीजी से उन्होंने पूछा था, "मेरी मातृभूमि कहां है?" यूरोप के मार्टिन लूथर ही की तरह बीसवीं सदी में हिंदू धर्म का विरोध करते हुए उन्होंने बौद्ध धर्म की पताका फहरायी और फिर अक्तूबर १९५६ में भारत के धार्मिक, राजनीतिक जीवन में 'धर्मचक्र परिवर्तन' की अभूतपूर्व क्रांतिकारी घटना घटी. लेकिन इसके बाद वह अधिक समय तक जीवित नहीं रह पाये. आंबेडकर के इस महान विद्रोह में जहां अतीत की मान्यताओं को तहस-नहस कर देने वाला नकारात्मक दृष्टिकोण था, वहीं भौतिकतावादी बौद्ध दर्शन की तरफ ले जाने वाला स्वीकारात्मक दृष्टिकोण भी था. वह कहा करते थे, "मुझे कुंडली मार कर बैठा हुआ ध्यानस्थ बुद्ध नहीं चाहिए, अपने पैरों पर चलने वाला बुद्ध चाहिए." महाड़ के अध्यक्षीय भाषण में आंबेडकर की इस विरासत को दलित साहित्य के आंदोलन से जोड़ते हुए बागूल कहते हैं, (दलित साहित्यकारों को संबोधित करते हुए कहते हैं) 'पहले हमें यह सोचना चाहिए कि आप हैं कैसे? आप आंबेडकर के आंदोलन की आग पी कर अग्निमय बन गये हैं. इसी गांव में (महाड़ १९२७) जो तालाब वाला सत्याग्रह हुआ था, उस समय उस सभा की तुलना बाबासाहेब ने फ्रेंच राज्यक्रांति की राष्ट्रीय सभा के साथ की थी. और समता, स्वतंत्रता, बंधुता के प्रस्ताव आप लोगों ने मंजूर किये थे. इसी प्रकार के सत्रह प्रस्ताव फ्रेंच क्रांतिकारी राष्ट्रीय सभा ने मंजूर किये थे. महाड़ की इस सभा में बाबासाहेब ने कहा था, "यूरोप के इतिहासकारों ने इस (फ्रेंच) क्रांति की भर्त्सना की थी. मैं इसकी भर्त्सना नहीं करूंगा, क्योंकि इसी क्रांति में जन्मे विचारों की वजह से यूरोप के भाग जगे थे."

एक और सवाल पूछा जा सकता है. दलित साहित्य ने सब कुछ नकारा है, तब फिर क्या स्वीकारा, कुछ भी नहीं? इस आंदोलन ने विश्वजनीन एवं मानववंशीय स्तर पर 'मानव को मानव का ही गीत गाना चाहिए' वाला अस्तित्ववादी मानवधर्म स्वीकारा है. इसीलिए जब हम दलित साहित्य की प्रक्रियाओं का विचार करते हैं तब इसका दूसरा छोर सीधे मार्क्सवाद से जुड़ा हुआ पाते हैं. मार्क्सवाद जितना मानवकेंद्रित है, सताये गये मानव-समाज द्वारा निर्मित आधिभौतिक मानवेतिहास से संबंधित है, उतनी ही दलित साहित्य की क्रांति भी मार्क्स के भौतिकतावादी, क्रांतिकारी दर्शन से संबंधित है. हिंदू [illegible] विरोध करने वाले भगवान बुद्ध से दलित साहित्य का जो रिश्ता है, वही रिश्ता उसका मार्क्स के क्रांतिवाद से है. इसीलिए सच्चा प्रगतिशील दलित साहित्यकार किसी भी नये-पुराने धर्माधिष्ठित संप्रदाय के संकुचित दायरे में अपने-आपको बंद रखना नहीं चाहता. जब वह अपना रिश्ता अमरीका और अफ्रीका के नीग्रो समाज से जोड़ता है, तब उस पर मार्क्सवाद का वस्तुवादी क्रांतिकारी दर्शन हावी रहता है. क्रांति की यही अनुभूति उसके साहित्यनिर्माण का मूलस्रोत बन जाती है. साहित्यिक क्षेत्र में उतरे हुए दलित साहित्यकार के साहित्य-निर्माण में यह साफ-साफ झलक रहा है कि वह अपने निर्माण के दौरान द्वंद्वात्मक जड़वाद के भौतिक मूल्यों को सिर-आंखों पर लेते हुए आगे बढ़ रहा है. इतिहास के कुछ अपने उसूल होते हैं, जिनका पालन करते हुए इतिहास के प्रभाव को अनिष्ट से इष्ट की तरफ मोड़ा जा सकता है. —मार्क्स और लेनिन की इस नयी विचारप्रणाली का वरदान दलित साहित्य ने श्रद्धा एवं आस्थापूर्वक शिरोधार्य माना है. इसीलिए मराठी के कलावाद, सौंदर्यवाद एवं केवलवाद के संप्रदाय में अधिष्ठित मध्यवर्गीय ललित साहित्यकारों के परंपरावादी और नियतिवादी मनोविज्ञान से परंपरा का विद्रोह करने वाले दलित साहित्यकारों का सामूहिक, सामाजिक तथा साहित्यिक मनोविज्ञान नितांत रूप से भिन्न एवं प्रभावपूर्ण है. समाजनीति एवं साहित्य के क्षेत्र में बुद्धिवादी आक्रामकता का कदम उठा कर और धर्माधिष्ठित अंधे नियतिवाद को निर्ममता से ठुकरा कर दलित साहित्यकार अपनी नियति का शिल्पकार खुद बनना चाहता है. अनैतिहासिक पराभव की भावना और निराशावाद के स्थान पर ऐतिहासिक आशावाद की अनुभूति से प्रेरित हो कर वह एक नये इतिहास का निर्माण करना चाहता है. मैक्सिम गोर्की के शब्दों में वह 'मानव समाज के इस सुंदर-से घोंसले को एक परिवार का रूप' देना चाहता है. सौंदर्यवाद के पुराने, संकीर्ण, जीर्ण-शीर्ण

नारायण सुर्वे, अर्जुन डांगले, सुदीप, राम अरोड़ा, प्र. श्री. नेरूरकर

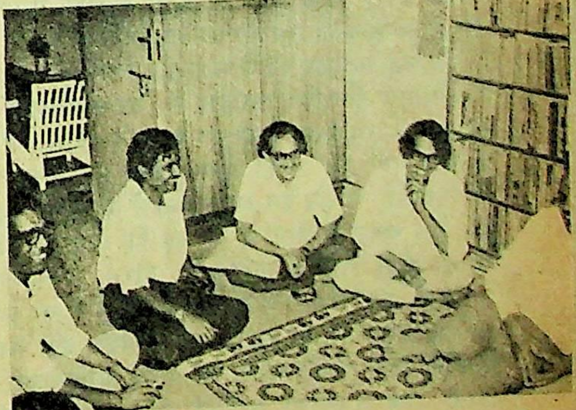

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दायरों को वह तोड़ फेंक रहा है और नये जीवन मूल्यों के व्यापक, विशाल सौंदर्यवाद और दर्शन के निर्माण का उत्तरदायित्व अपने कंधों पर उठा ले जाना चाहता है.

वस्तुतः दलित साहित्य का यह आंदोलन भारत एवं विश्व के भाषाई क्षेत्रों में चल रहे उन आंदोलनों के समांतर और उनसे संबद्ध है जो विद्रोही हैं, क्रांतिकारी हैं, नवनिर्माण के इच्छुक हैं और मानव-हित से बंधे हुए हैं. यह एक युगव्यापी आंदोलन है. युग-भावना, युग-प्रेरणा एवं युग-मानव में घुल जाने वाली यह साहित्य-धारा है. यह एक इन्वाल्वमेंट है, इसीलिए वामपंथीय है. वामपंथीय क्रांतिकारी विश्व-दर्शन की तरफ झुकने वाला प्रगतिशील आंदोलन है. हाल में ही हिंदी साहित्य में आरंभ हुए 'समांतर' आंदोलन से मेल खाने वाला यह भी एक साहित्यक आंदोलन है.

१९७२ में 'समांतर लेखक समूह' द्वारा संपादित किये गये 'समांतर' ग्रंथ में हिंदी के श्रेष्ठ युवा कहानीकार, उपन्यासकार, समीक्षक, 'सारिका' के संपादक श्री कमलेश्वर एक साहित्य-चर्चा में कहते हैं, "हम स्वयं सामान्य आदमी हैं. उसी सामान्य जन में शामिल. हमारी संबद्धता उसी के प्रति हो सकती है. यह संबद्धता हर स्तर पर है. क्योंकि मामूली आदमी हर स्तर पर भय, छल, शोषण, अपमान, दमन से आहत है. मूर्त्त व अमूर्त्त तकलीफों से ग्रस्त है. हम इसी वर्ग से, इसी वर्ग के प्रति और इसी वर्ग से संबद्ध हैं. हमारी यह संबद्धता ही हमें वाम बनाती है. और यह वाम, यानी हमारी जिंदगी, हमारा यथार्थ, हमारा संपूर्ण संघर्ष और हमारा लेखन हमें वैज्ञानिक मार्क्सवाद के स्रोत से जोड़ता है. कोई वामपंथी है, इसीलिए वह सामान्यजन के साथ है, यह आरोपित स्थिति है और यह कभी-कभी नितांत झूठ भी होती है. हमारी आस्था जीवन में है और उस जीवन को वहन करने वाला केंद्र है— मामूली आदमी. और उसीसे संबद्ध हैं हमारे लेखन और जीवन की आकांक्षाएं.इसलिए वाम निरंतर जीवित रहने वाली एक सहज और अनिवार्य सच्चाई है. वाम चिरंतन है." श्री कमलेश्वर की यह विचार प्रणाली दलित साहित्य की विचार प्रणाली से मेल खाती है और 'समांतर' साहित्य-आंदोलन को दलित साहित्य-आंदोलन के क्षेत्र में या यों कहिए कि दलित साहित्य को समांतर साहित्य आंदोलन के विशाल विश्व में ले आती है. दोनों के लक्ष्य समान हैं और वे साहित्य-निर्माण को सशक्त बनाते हैं.

दलित साहित्य की प्रक्रिया को जानने की कोशिश में अनायास ही दलित साहित्य की उन रूपरेखाओं का अंदाजा भी लग जाता है जो गत दशक के मराठी साहित्य में खिंच गयी थीं. उनकी विस्तृत चर्चा एक अलग लेख का विषय है. लेकिन इन रूपरेखाओं में जो सबसे महत्वपूर्ण बात ध्यान में आती है वह यह कि आज का दलित लेखक अपने साहित्य-निर्माण के दौरान आत्मान्वेषण में रत है. और लगता है इस आत्मान्वेषण में वह काफी हद तक सफल भी हो रहा है. आत्मान्वेषण और आत्मबोध की यही प्रेरणा ग्रहण कर दलित साहित्यकारों ने अपनी पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशन संस्थाओं और दलित मंचों की नींव डाली है. प्रा. गंगाधर पानतावणे द्वारा संपादित 'अस्मितादर्श' इस प्रकार की एक प्रमुख त्रैमासिक पत्रिका है. पिछले सात वर्षों के 'अस्मितादर्श' के अंक देखने से मराठी में दलित साहित्य द्वारा तय किये गये सफर का पता चल सकता है. दलितों के कंधे से कंधा मिला कर दलितेतर प्रगतिशील साहित्यकारों व विचारकों ने भी दलित साहित्य के प्रचारकार्य के लिए 'अस्मितादर्श' में अपना योगदान दिया है. दलित साहित्य का प्रतिनिधित्व करने वाली दो अन्य प्रमुख पत्रिकाएं नामदेव ढसाल द्वारा संपादित 'विद्रोह' और बाबूराव बागूल द्वारा संपादित 'आम्ही' भी गिनायी जा सकती हैं जो दुर्भाग्य से अल्पायु सिद्ध हुईं. फिर भी थोड़े समय में भी इन पत्रिकाओं ने अपनी एक वैचारिक, साहित्यिक प्रतिमा मराठी में कायम की, जो लंबे अरसे तक बनी रहेगी.

इसी संदर्भ में, मेरा खयाल है, बाबूराव बागूल की लंबी कहानी 'सूड' (बदला) विचारणीय होगी. लंबी कहानी— या इसे छोटा उपन्यास ही कह लीजिए. पर समीक्षकों ने अभी उतना ध्यान नहीं दिया है, जितना देना चाहिए. बाबूराव बागूल की यह साहित्यकृति वास्तव में मराठी भाषा की एक महान कलाकृति है. इसने यह प्रमाणित कर दिखाया है कि दलित साहित्यकार महान कलाकार भी होता है. यह एक पतिता, अभागिन देवदासी जानकी की कहानी है. बेजोड़ और अमर तथागत भगवान बुद्ध की करुणा और मानव के शोषण के विरुद्ध मार्क्स और लेनिन की खीज— दोनों भावनाओं का संगम. दलित साहित्य के प्रवर्तक एवं भाष्यकार डा. म. ना. वानखेड़े ने कहा था कि पुराने हिंदू 'मिथ्स' को नकारते समय, उनका स्थान लेने के लिए नये 'मिथ्स' का निर्माण करना पड़ेगा. इस दृष्टि से 'सूड' दलित साहित्य में बाबूराव बागूल द्वारा निर्मित पहला 'मिथ' है. जानकी दलित समाज में जन्मी एक मासूम लड़की. बला की खूबसूरत, जवानी से भरपूर. बचपन से ही भोग का शिकार बनी हुई. वह कोठे से भाग खड़ी होती है. वह बदला लेने पर तुली हुई है— नारी जाति से बदला! पुरुष वेश में निकल पड़ती है. 'जोगी' बन कर हिमालय की तरफ निकले हुए जोगियों के झुंड में शामिल हो जाती है. इसके बाद की उसकी अनोखी जीवन-यात्रा को विचित्र करने में बाबूराव बागूल की कलम ने जिस मृदुता और संयम से काम लिया है, वह मराठी साहित्य में बेजोड़ है. यह कलाकृति दलित साहित्य का चिरंतन उद्‌गार, उद्‌घोष है. जानकी के अलावा 'सूड' में स्वामीजी का चरित्र भी एक ऐसा चरित्र है जो मराठी साहित्य में सदा के लिए अपना अलग स्थान बना लेगा. इस कहानीकार की प्रतिमा में हमें भविष्य में झांक सकने वाले महाकवि की दिव्य प्रतिमा का मानवी रूप नजर आता है. क्रुद्ध जानकी को पुरुष वेष में 'जोगी' जानवरों के झुंड' में ला छोड़ने वाली यह 'सिचुएशन' लेकिन वह कल्पनापूर्ण सिचुएशन है जो विश्व के समूचे साहित्य में शायद ही कभी मिल सके. स्वामीजी जानकी को नया नाम देते हैं— 'ज्वाला.' बुद्ध-जीवन पर आधा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रित स्वामीजी का प्रतीक दार्शनिक है, कलात्मक है, अर्थपूर्ण है. हिमालय-यात्रा के दौरान स्वामीजी और ज्वाला का एक संवाद यहां उद्धृत कर रहा हूं :

"एक बार अपने अपरिवर्तनीय नारीत्व से निराश और हताश ज्वाला ने (स्वामीजी से) पूछा, मुझे क्या करना होगा?"

"जीवन को जीवन मानना होगा और अपना अतीत मुझे बता देना होगा."

"जीवन को जीवन मानते नहीं बनता. स्वामीजी, जीवन के दुख-दर्दों को आपने नहीं जाना है. इसलिए मुझसे आपसे कुछ नहीं कहते बनता. फिर भी एक बात कहे देती हूं : उस दिन आप नहीं मिलते, तो मेरे हाथों कई खून हो गये होते. पाप हो गये होते. मैं अपना नारीत्व नहीं चाहती. वही तो मेरे दुख का, क्रोध का कारण है."

"लेकिन क्यों ?"

"इसकी वजह से मैंने न जाने क्या - क्या भुगता है. मुझे इस गुनाह की सजा मिल रही है जो मैंने 'वह' हीन जन्म पा कर किया है."

"कौन-सा हीन जन्म ?"

"गंगू की कोख से मिला हुआ."

"तुम अपनी देह से नाराज हो या समाज से ?"

"देव, देश, देह और समाज—"

कहानी के अंत में बागूल एक तरफ नारीत्व से उकतायी हुई और पुरुषत्व की प्यासी जानकी अथवा ज्वाला का उदात्तीकरण कर देते हैं और दूसरी तरफ पुरुषत्व से नारीत्व की तरफ (जानकी की तरफ) जाने के इच्छुक स्वामीजी के जीवन का भौतिकीकरण कर देते हैं. परंपरा से चली आ रही वेदांती आध्यात्मिकता को नकारते हुए अपनी इस कहानी में बाबूराव एक नयी, सुंदर, मानवता की तरफ ले जाने वाली, पार्थिव आध्यात्मिकता का बीजारोपण करते हैं. एक नये 'भौतिक वेदांत' का निर्माण करते हैं. यह वेदांत जहां 'बुद्धि' के प्रति आस्थावान है,वहीं 'बुद्ध' के प्रति भी आस्था से पूर्ण है.

इसीलिए आज का मराठी दलित साहित्य समय के अनुकूल है आज का दलित साहित्य साहित्य की विभिन्न विधाओं का रूप ले कर प्रस्तुत हो गया है. कहानी, उपन्यास, कविता, समीक्षा, नाटक, शाहीरी (पोवाड़ा), प्रबंध, भाष्य, ललित लेख, निबंध, दर्शन, रूपकथा आदि में उसे अभिव्यक्ति मिल रही है. कई दलित साहित्यकार साहित्यनिर्माण के साथ-साथ दलितों, श्रमजीवियों के इस आंदोलन में सक्रिय भाग भी ले रहे हैं. हर रोज दस गुनी, सौ गुनी बढ़ती जाने वाली दलित जीवन की समस्याएं उनके सामने खड़ी हैं. उनको विषय बना कर अभी ढेर सारा साहित्य उन्हें लिखना है. 'सूड' जैसी कलाकृतियों के साथ सामयिकता का मूल्य वहन करने वाला दलित साहित्य कालातीत भी बनता जा रहा है. साहित्य में किसी खास वर्ग और अभिरुचि से बंधे हुए कलावाद और सौंदर्यवाद को ठुकराने वाले दलित साहित्य में नये स्वतंत्र कलामूल्यों एवं सौंदर्यमूल्यों—जीवन की चेतना से युक्त कलामूल्यों, सौंदर्यमूल्यों की आहट अब आ रही है.एक तरह से दलित साहित्य विशाल मराठी साहित्य की ही एक अलग, नयी, निराली साहित्यावस्था है. लेकिन साथ ही साथ वह प्रतिष्ठा मराठी साहित्य की गतिहीनता को झकझोर देने वाली, दिशाहीनता से नयी दिशा की तरफ ले जाने वाली विद्रोही साहित्यिक वास्तविकता भी है. □□□

(अनुवाद : रेखा देशपांडे.)

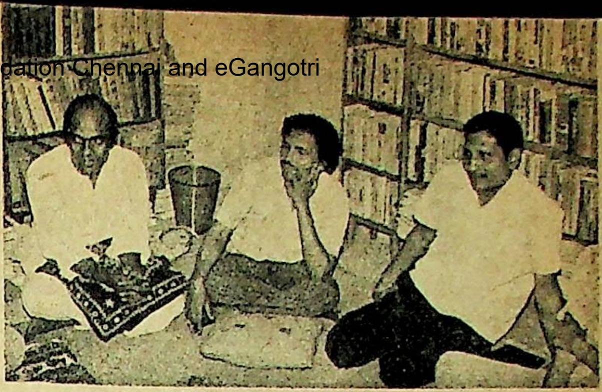

बायें से दायें : बागूल, पवार, मेश्राम

कमलेश्वर, राम अरोड़ा, नेरूरकर, सुर्वे, पवार, डांगले

भाटिया, कमलेश्वर, सुदीप, अरोड़ा, नेरूरकर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राकेश के पहले/राकेश के साथ
राकेश के बाद
यादों का एक लंबा सिलसिला

चंद सतरें और (२०

• अनीता औलक

पिछले अंक में आपने पढ़ा है कि देश-विभाजन ने अनीता औलक के परिवार को भी विभाजित कर दिया था. वह जगह-जगह स्थापित हो रहा था और उखड़ भी रहा था. इस बीच राकेशजी का अनीताजी के घर से भी परिचय बढ़ रहा था. राकेशजी के पत्र आने लगे. अनीताजी ने घर में कह दिया कि वह राकेशजी से शादी करना चाहती हैं. घर में हंगामा हो गया और कुछ फैसले किये गये. राजेशजी से उनका मिलना-जुलना बंद कर दिया गया लेकिन फिर भी कालेज के बहाने वे मिलते रहे. एक दिन उन्होंने चुपके से शादी की और बंबई चले आये. उन्हें फिर दिल्ली वापस जाना पड़ा. राकेशजी के मित्रों की महफिलें जुड़ती रहीं. अब आगे पढ़िए...

बाहर से राकेशजी जितने सीधे और सरल दीखते थे उतने वास्तव में नहीं थे. उन्हें अंदर तक ठीक से समझना एक बहुत बड़ी तपस्या थी. बाहर से जितने इन्फॉर्मल उतने ही ज्यादा मन से फॉर्मल. जिन मित्रों के साथ वह अत्यंत इन्फॉर्मल रहे वह उन्हें इससे अधिक नहीं जान सके. और जिनके साथ फॉर्मल थे वह भी उससे अधिक उन्हें नहीं जान सके. . .क्योंकि राकेशजी केवल अपने लिए ही कहीं पूर्ण थे.

मैं कभी-कभी उनके भिन्न प्रकार के व्यवहारों के बारे में पूछती तो कहते—हर आदमी की एक निजी 'भूख' होती है. मैं अपने प्रत्येक मित्र के साथ अलग-अलग तरह से पेश आता हूं. . . हर आदमी को एक ही लेवल पर नहीं लिया जा सकता . यह बात सही भी थी.

वह अपने प्रत्येक मित्र के अच्छे और कमजोर पक्षों के बारे में अच्छी तरह जानते थे. उनका कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने अच्छे फलों के साथ केवल अपनी कमजोरियों के साथ ही पूर्ण होता है. . .क्योंकि वह किसी भी व्यक्ति को केवल उसकी अच्छाइयों के साथ ही नहीं स्वीकार कर सकते. . . कहीं उस व्यक्ति के अंदर की कमजोरियों के साथ ही उसे प्यारा दोस्त कहते हैं. . .उससे प्यार करते हैं. अंदाजा लगाओ कि यदि कोई व्यक्ति केवल अच्छाइयों का ही भरा हो तो वो कितना बोरिंग हो सकता है.

यह बात सच भी थी. वह अपने भिन्न-भिन्न मित्रों के साथ भिन्न-भिन्न तरह से पेश आते थे. यद्यपि असली राकेश वह नहीं था. अपने में राकेश एक बहुत ही अलग व्यक्ति था. उस तरह से वह सिर्फ अपने आप को आईने में देखता था और खुश होता था. उसे अच्छा लगता था अपने को वैसा देखने में. . .क्योंकि वह यही था.

कितनी बार मैंने राकेश जी के साथ उनके व्यवहार में लाये तौर तरीकों से उनसे बात करने की कोशिश की लेकिन वह मुझसे कहते—काहे को भटकती फिरती है. . .मैं न यह हूं न वो हूं. . . और वो मेरे हाथों को अपने नंगे जिस्म छुआते और कहते. . .मैं सि यह हूं.

और वो सब ?

—वो और लोगों की न होती है, जिसे निभाना होता है. क्योंकि उसके बिना भी गुज नहीं है. . .तुम्हें भी वो सब सीं चाहिए. . .

बात भी ठीक थी. . .उन्हें प्रत्येक मित्र को कोई न कोई र या स्थान अपने जीवन में दि हुआ था और उन्हीं की तरह उ पेश आते थे. यद्यपि कई बार उ अपने बनायी हुई भिन्न-भिन्न इ को ले कर तकलीफ भी उठा पड़ती थी.. . .जैसे जब कुछ भि भिन्न प्रकार के मित्र एक स बैठते थे तो राकेशजी की एक त की इमेज को लेकर अन्य मित्र का तकलीफ पाते थे. . .उनमें एक मैं भी थी.

घर से बाहर राकेशजी व्यवहार कुछ और होता और घर में एकदम और. अरसा लगा मुझे इस ताल को बैठाते, यद्यपि बाद में आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राकेशजी ने मेरे साथ जबरदस्ती करती छोड़ दी थी. बाहर जा कर मैं एकदम भटक जाती थी. लगता था कि मेरा घर और मेरा राकेश मुझसे छिन गया है. हो सकता है कि यह मेरे प्रारंभिक जीवन में मिली असुरक्षा की भावना की ही देन थी. . .लेकिन मेरे जीवन का एक अंग तो बन ही चुकी थी.

—मैंने भी जीवन में असुरक्षा इतनी भोगी है अन्ना, लेकिन क्योंकि जिंदगी में अकेला इतना जूझा और लड़ा हूं कि अब स्थिति को निभाये जाना मेरे व्यक्तित्व का एक आवश्यक अंग बन चुका है. यद्यपि निभाना राकेश की प्रकृति के विरुद्ध बात थी. लेकिन उनका कहना था, कि जब किसी व्यक्ति के कान्फीडेंस में संदेह न हो तब बात और होती है.

इसके अतिरिक्त कहीं बहुत संस्कार भी थे. . .अर्थात अपने से बड़ों का मान रखना, इज्जत करना उनकी इच्छानुकूल प्रवृत्ति थी—इसके विपरीत कहीं प्रोगेसिव. जैसे वो चाहते थे कि उनके मित्रों के साथ मेरी एक अपनी अलग ही अंडरस्टेंडिंग हो. उनकी इसी प्रवृत्ति ने शायद मेरे अंदर खोया विश्वास फिर से पैदा किया.

हालांकि शुरू-शुरू में राकेश जी नें जबरदस्ती मुझ पर अपनी आदतें मनवाने की कोशिश की. . .कि जिसके दौरान उन्होंने महसूस किया कि मुझे सबसे पहले विश्वास -प्यार और सुरक्षा की कितनी आवश्यकता थी——उसके बिना शायद में कभी भी, कुछ भी नहीं सीख सकती. थी. हम साथ रहते तो लड़ते रहते. अलग होते तो रोते-रहते. . .एक अजीब विडम्बना थी.

—मैंने तुम्हें क्या नहीं दिया? राकेशजी झुंझलाते.

—वो सब जो मुझे पहले भी मिलता था—और जो तब नहीं मिला था वो अब भी नहीं मिलता.

—क्या?

—प्यार!

—और अगर यही बात मैं कहूं.

—कहो नहीं. . .करो. और एक सारी रात मैं उनके सीने पर सिर रख कर रोती रही थी और उन्होंने अपनी विशाल छाती में मुझे समा लिया था.

फिर एक दिन दूसरे ही मूड में होते.

—अब तू मेरा घर छोड़ कर जायेगी कि नहीं? मैं हेरान हो कर उनकी तरफ देखती—क्यों?

—तूने मेरा रिकार्ड खराब कर दिया है. दो साल से ज्यादा मैं किसी औरत के साथ नहीं रहा. पहले मैंने सोचा कि दो-तीन साल के बाद चली जायेगी. लेकिन छह

राकेशजी गिरधारीलाल वैद और उर्मिला भाभी के साथ

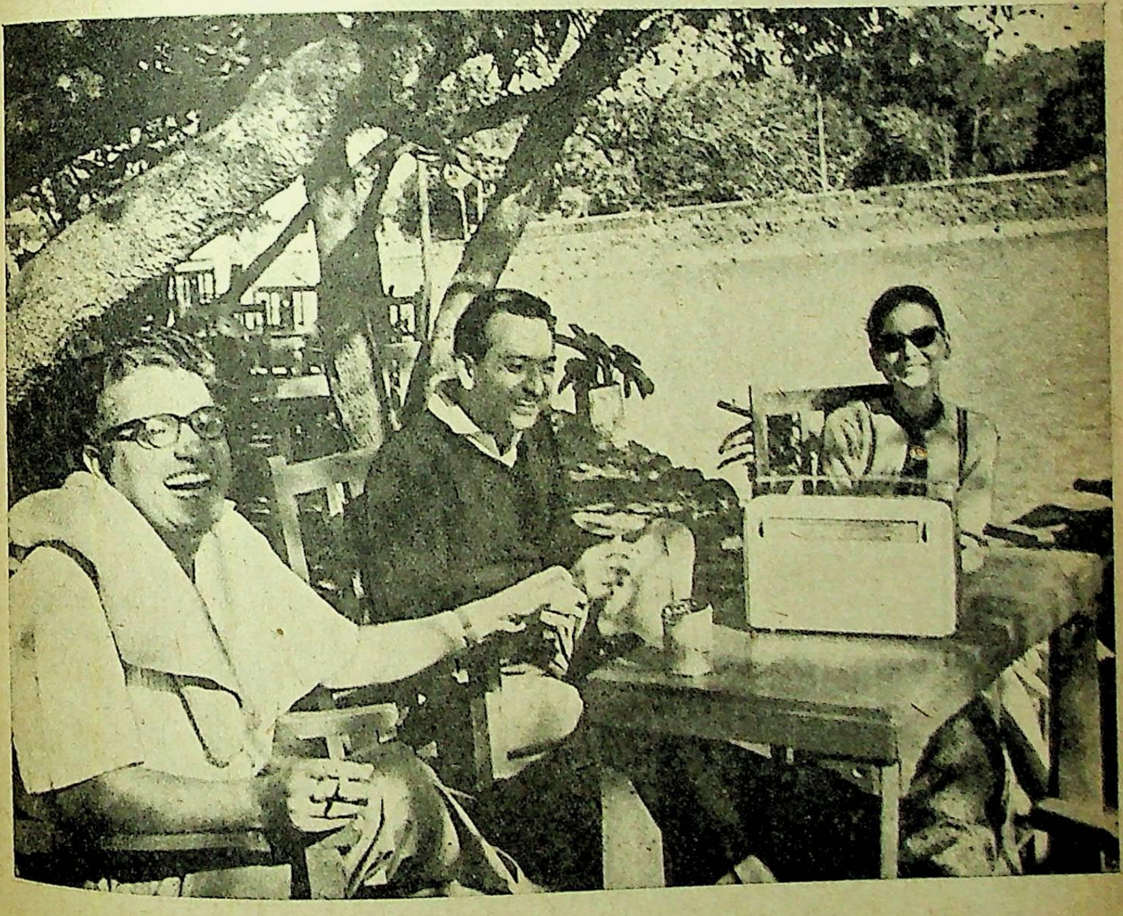

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साल हो गये तेरे जाने के कोई आसार ही नजर नहीं आ रहे. पहले एक बच्चा. . .फिर दूसरा . . .अब तीसरे का इरादा तो नहीं. . .अच्छा यह सोच के बताना कि कब जा रही है लेकिन यह बता दे कि बच्चों को ले कर जायेगी या छोड़ कर,

एक ऐसे ही दिन दोपहर में कमलेश्वरजी अचानक घर पहुंचे तो देखा कि दोनों बच्चे और हम दोनों पलंग पर फैले बैठे हैं. कमलेश्वरजी छूटते ही बोले—अरे यार तेरा यह हाल हो गया क्या ?

दोनों जोर से हंसे. फिर राकेश जी बोले—अरे यह कहती है कि इस एनीवर्सरी पर हम सब उसी हलवाई की दूकान पर जायें. मैंने समझाया कि उस भले हलवाई ने हमारा क्या बिगाड़ा कि उसे जा कर अपने आगे का हाल सुनायें. . . अपना दुःख दर्द मैं उस हलवाई के साथ नहीं बांटना चाहता.

फिर एक दिन लगता कि जैसे वह जिंदगी से बहुत ऊबा हुआ व्यक्ति है. . .एक्स्ट्रीमली इंटलेक्चुअल और कभी-कभी एक्स्ट्रीमली इमोशनल मानो ब्रेस्ट फीड करके बड़ा करना होगा.

किसी भी व्यक्ति में एक साथ यह दोनों बातें एक अजब द्वंद्व पैदा कर सकती हैं, लेकिन राकेश में दोनों ही बातें सहजता से विद्यमान थीं. अगर किसी पर प्यार आया तो उस पर फना हो गये और अगर किसी पर गुस्सा आया तो उसे फना कर गये.

बौद्धिक गुण उन्होंने अपने पिता से पाया और असीम स्नेह की भावना मां से ली.

इन दोनों प्रवृत्तियों का द्वंद्व कुछ-कुछ ऐसा था कि जिस दिन देखा मैं फ्रिज में दनादन फल-सब्जी की भर्ती कर रही हूं, तुरंत अपनी स्टडी में कान पकड़ कर ले जाते, फिर अपनी कापी निकाल कर कहते—यह, यह, यह पैसा अभी नहीं आने वाला, इसलिए थोड़ा संभलो देवी. मुझ पर नहीं तो कम-से-कम फ्रिज पर तो रहम खाओ. उसी पर कम बोझ लादो.

फिर जब मुझे सब्जी वाले से उलझते देख लेते, तो फिर कान पकड़ कर अपनी स्टडी में ले जाते—क्या पाई-पाई के लिए झगड़ती रहती है. ऊपर से कितनी सब्जियां खरीदती है. . .मेरी भुजाओं में विश्वास नहीं है क्या?

लेकिन इन सबसे हट कर राकेशजी के व्यक्ति का सबसे प्रबल पक्ष था वह था उनका ईगो, जिसको किसी भी स्थिति में राकेशजी ने कंप्रोमाइज नहीं होने दिया और नहीं कभी किसी मित्र ने उन्हें इस बात पर चैलेंज ही किया.

मुझे याद है कि एक दिन राकेशजी का और मेरा झगड़ा हुआ-नतीजा यह कि मैंने शिमला जा कर ट्रनिंग करने का निश्चय ले लिया था. राकेशजी समझ गये थे कि यह मेरी हुज्जत है और कुछ नहीं. लेकिन यह सच भी था . मैं जानती थी कि मेरे चले जाने से राकेशजी का क्या हाल होगा. लेकिन फिर भी मैं आडिग थी.

राकेशजी ने टिकट भी बुक करवा दी और फिर जाने का भी दिन आ गया.

स्टेशन पर हम लोग आसपास के लोगों को आते-जाते देखते रहे और कभी-कभी चोरों की तरह नजरें मिला लेते.

राकेश जी. . .जानते थे कि वह एक बार भी मुझे रुकने को कह देते तो मैं निश्चय ही रुक जाती, लेकिन उनके ईगो को यह गवारा नहीं था. इसलिए गार्ड की सीटी के साथ ही मैं गाड़ी में सवार हो गयी थी.

यह अलग बात है कि तीन-चार दिन में ही मैं घर वापस आयी थी.

राकेश जी मेरे जाने के बाद कलकत्ता चले गये थे. श्याम **लहरों के राजहंसों** की रिहर्सल ले रहे थे.

अपने लौट आने की सूचना देने की हिम्मत मुझ में नहीं थी इसलिए जब तक वह लौटे नहीं मैंने एक-एक दिन रो-रो के काटा.

जब वह लौटे तो मुझे देख कर खुशी की जगह उन्हें क्रोध आया जो कि बहुत स्वाभाविक था.

वह सारा दिन मुझसे नहीं बोले, लेकिन रात में जब मैं अपने पलंग पर लेटी सुबक -सुबक कर रो रही थी कि राकेश जी ने मेरा सिर अपनी गोद में ले लिया, जिससे मैं फूट-फूट कर फिर रो पड़ी.

—अब कभी नहीं जाऊंगी... राजे, प्रामिस, कभी घर छोड़ कर नहीं जाऊंगी. . .मुझे संभाल लो राजे. . .मैं बहुत कमजोर लड़की हूं. . .मुझे ऐसे मत छोड़ दिया करो.

—क्यों मुझे तंग करती रहती है. . .याद है तूने मुझे कहा था कि तू मुझे संभालेगी. . .उसपर मुझ से शिकायतें करती रहती है. . .अब मेरा और कितना वक्त लेगी अन्ना. . .मुझे कितना काम करना है.

—अब कभी गलती नहीं करूंगी. . .राजे. . .इस बार और माफ कर दो. .

—गलतियां नहीं करेगी. . . यह मैं नहीं मान सकता. . .क्योंकि इसके बिना तू अपनी नहीं बहुत बेगानी लगेगी. . .

इसके पहले कि मैं कुछ कहती वह बोले—औरतें बहुत बोलती हैं—उन्हें चुप कराने का एक ही तरीका है और वो है. . .

—अगले अंक में :—

अम्माजी नहीं रहीं. . . यह राकेशजी की जिंदगी का बहुत बड़ा आघात था, जो उन्हें किसी तीव्र आवेग के साथ, कहीं बहुत गहराई तक तोड़ गया था. . . .

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानी क्यों पिया ?

यह घटना पिछले साल २२ जून की है. सुरेंद्रनगर (गुजरात) जिले के हलवाड़ तालुका के गांव रानमलपुर में दो कुएं थे. एक था सवर्णों का—गाम कुआं. दूसरा था हरिजनों का.

प्रकृति ने सवर्णों का साथ दिया. गर्मियों में हरिजनों का कुआं सूख गया. उन्होंने सवर्णों के कुएं से पानी लेने का इरादा किया. इसी बात पर कण्बी और हरिजन स्त्रियों के बीच ठन गयी. हरिजनों का प्रतिनिधि मंडल तहसील के अधिकारियों से मिला. परिणामस्वरूप पुलिस का एक सब-इंस्पेक्टर हलवाड़ से रानमलपुर आया और उसने सात कण्बी पटेलों को गिरफ्तार कर लिया. बाद में वे जमानत पर रिहा कर दिये गये. फिर एक समझौता हुआ जिसके अनुसार हरिजन गाम कुआं से दोपहर में पानी भर सकते थे.

समझौता हुए कुछ ही दिन हुए थे. एक दिन शाम को पांच बजे दो हरिजन महिलाएं कुएं पर पानी भरने गयीं. वहां उनकी मुठभेड़ गांव के पटेल पीतांबर जेठा की पत्नी तिड़ि बाई से हो गयी. वहां उनमें कुछ नोंक-झोंक हुई. नतीजा यह हुआ कि हरिजन महिलाएं चुपचाप घर लौट आयीं.

इस घटना के कुछ समय बाद कोई डेढ़ सौ कण्बी पटेल लाठी-भाले से लैस हो कर 'हरिजन वास' आये और पुलिस वालों को पकड़ लिया. तिड़ि बाई ने पुलिस के एक जवान से बंदूक छीन ली. फिर हरिजनों पर जो हमला शुरू हुआ तो उनके घर तहस-नहस कर डाले गये. दो हरिजनों की जान ले ली गयीं. तेरह हरिजनों को घायल कर दिया गया. □

एक कुआं, जो हरिजनों के लिए निषिद्ध था

मरने की छूट

इस बार आग में झोंकी गयी एक हरिजन बुढ़िया. मुरैना जिले की अंबाह तहसील में ४६ मकानों की एक हरिजन बस्ती है—मड़ोली का पुरा. इससे चार मील दूर है बरवाई का पुरा—ठाकुरों का गांव.

पिछले साल ११ जून की रात थी. डाकू माधोसिंह के पुत्र की साली अपने गांव बरवाई का पुरा जा रही थी. रास्ते में उसे लूट लिया गया.

ठाकुरों को संदेह हुआ कि उसे लूटने वाले मड़ौली का पुरा के लोग हैं. फिर तो उनका खून खौल गया. ठाकुर की औरत को हरिजन लूटने की हिमाकत करें?

१२ जून को बरवाई का पुरा में ठाकुरों का सम्मेलन हुआ जिसमें निर्णय लिया गया कि मड़ौली का पुरा को लूट कर उसमें आग लगा दी जाये.

ठाकुरों के इस निर्णय से भयभीत हरिजनों के मुखिया ने माफी मांगी.

उसने ठाकुरों से आग्रह किया कि वे जिस आदमी को दोषी समझें, पकड़ लायें. यदि इससे भी संतोष न हो तो वे जितने रुपये के जेवर लूटे गये हैं उतने का चंदा इकट्ठा करके दे देंगे. ठाकुरों ने उनकी एक न सुनी.

भय के मारे हरिजन गांव छोड़ कर भाग गये. और उन्होंने अंबाह थाने के सामने रात बितायी

१२ जून की रात को ३-४ हजार ठाकुरों ने गांव घेर लिया.

१३ जून की सुबह हरिजनों की प्रार्थना पर एक पुलिस अधीक्षक की देख-रेख में थानेदार और चार सिपाही उस भारी भीड़ से निबटने के लिए भेजे गये.

पुलिस को देख कर भीड़ और उत्तेजित हो गयी. १० बजे से ले कर एक बजे तक पुलिस की मौजूदगी में कुल्हाड़ियों से घरों के दरवाजे तोड़ दिये गये, खेती का सामान, जेवर, खाद्यान्न, ऊंट, बैलगाड़ियां, सब लूट कर बरवाई का पुरा ले जाया गया.

आखिर में कूड़ा और घास इकट्ठा करके, उस पर मिट्टी का तेल छिड़क कर सभी मकानों में आग लगा दी गयी.

कोई आग बुझा न सके इसलिए कुओं पर लगी गिरियां तोड़ डाली गयीं, नलकूप नष्ट कर दिये गये.

सबसे दर्दनाक हादसा था एक बूढ़ी स्त्री की पोटली छीन कर उसे आग में फेंक देना.

हरिजन आदिवासी युवक संघ के मुताबिक एक नवजात शिशु भी आग में झोंक दिया गया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—अरे लड़के, जा तो जरा बाहर. आठ दिनों से ऐसे ही हाथ पर हाथ रखे हुए बैठा है. बुढ़िया अपने भतीजे को कह रही थी. किंतु उसका ध्यान उस ओर नहीं था. गांजे की चिलम फूंक-फूंक कर नामा खांस रहा था. धुआं पेट में जाकर मुंह से भक्-भक् निकल रहा था. आंखें भी तांबे जैसे रंग की हो गयी थीं. उन आंखों से वह बुढ़िया के पके हुए बालों में धुएं के बादल देख रहा था. बुआ के बोलने के काफी देर बाद उसने कहा—क्यों, क्या कह रही है?

—अरे बाजार जा और भिवरा के लिए साड़ी ले आ! संक्रांति नजदीक आ गयी है, जरा आंखें तो खोल!

पलथी बदल कर नामा ने सचमुच ही आंखें खुजलाईं. उतने में ही कोने में से एक चूहा भाग निकला. नामा ने चप्पल फेंक कर उसे मार डाला.

—च-च् बड़े चूहे हो गये हैं. अरे हां, वह वजीर है न. कहता था कि गांजे की महक से चूहे भाग जाते हैं.

—मैं क्या कह रही हूं. तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है क्या?

—गाली मत दे! बोल क्या कहती है?

—कल संक्रांति का त्यौहार है. गांव में सभी लोग बाल-बच्चों सहित मंदिर जायेंगे. तेरी स्त्री के शरीर पर है क्या कोई गत का कपड़ा? सत्रह जगह पैबंद लगे हुए हैं. कोई गत की साड़ी तो ले आ.

गांजे की चिलम खाली हो गयी थी. उसने उसे हाथ पर उलट दी. राख को चुटकी में भर कर माथे पर लगा[ई] और चेहरा भावविहीन करके हंस पड़ा.

—कहां से लाऊं साड़ी? मेरे पास तो धेला [भी] नहीं. गांजे की पुड़िया के लिए वजीर से पैसा लिया [था]. गांव में कोई पैसा देनेवाला नहीं है. रहने भी दे, अग[ली] संक्रांति में देखेंगे.

—हट मरे! बैरी हो कर जन्मा है तू. खानदान [का] बीज है, तभी रह रहूं तेरे पास. नहीं तो भीख मांग[ने] निकल जाती. मेरी ही किस्मत खराब है. एक बार भग[वान] ने उठा लिया तो तुझे पूरी छूट मिल जायेगी. कहने-सुनने को कोई नहीं रह जायेगा!

बुढ़िया के क्रोध में बोलने से उसे चिढ़ आ गयी. धुएं के कारण आंखों से पानी बहने लगा.

—ऐ बाई, मैं बाहर चल रहा हूं. तू बड़बड़ाती रह! तेरा तो यह नियम ही है.

सिर पर की टोपी को ठीक करता हुआ नामा बाहर निकल गया. बाहर निकल कर वह चबूतरे पर बैठ गया.

★ ★

भिवरा सबेरे ही पाटील के घर गोबर काढ़ने गयी हुई थी. अभी तक उसका पता नहीं था. रात में चूल्हे की राख भी निकाल कर नहीं गयी थी. बुढ़िया ने चूल्हे पर का सिर्फ पानी पी लिया था. आंतें भूख से कुड़बुड़ा रही थीं. थोड़ा समय बीता और भिवरा आ पहुंची.

संक्रांति

★ भीमराव शिरवाळे

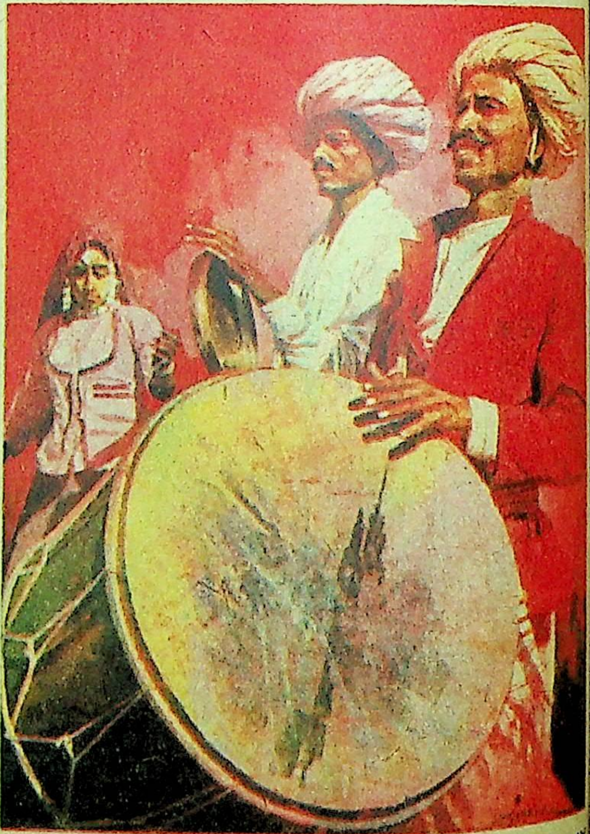

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

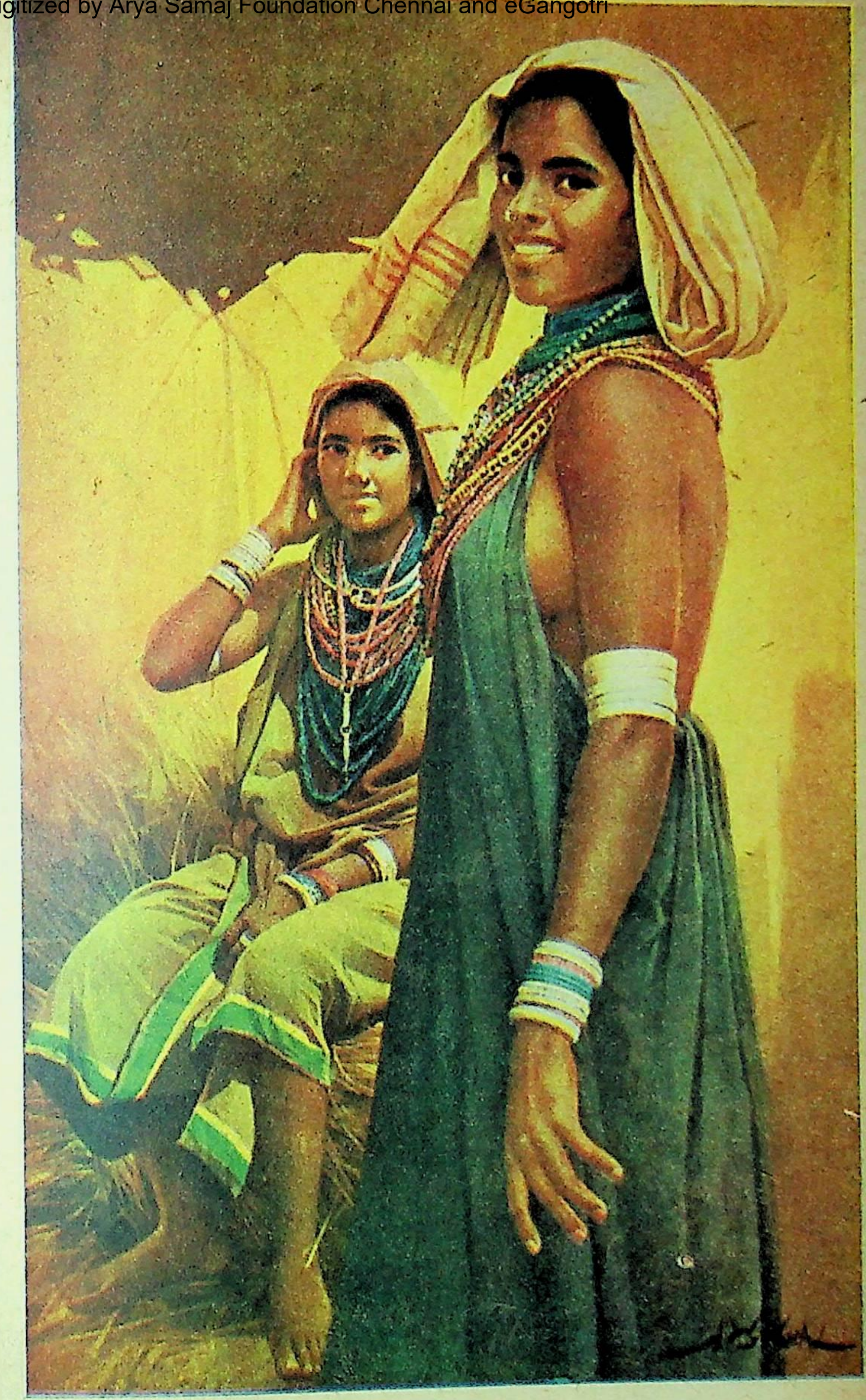

अडवानी आर्लीकान के सौजन्य से

पाटील की बाई ने एक कटोरा भर मट्ठा, गुड़ की मेली, तीन रोटियां दी थीं. भिवरा के घर में जाते ही नामा आंखें मलते हुए उठ खड़ा हुआ.

भिवरा ने दो परातों में नामा और वायजाबाई के लिए भोजन परस दिया. यह देख कर बुढ़िया से न रहा गया, बोल उठी—भिवरा, हमें तो परोस दिया. तू भी खा न?

—नहीं वुआ, मैंने खा लिया है. पाटील बाई को आज खाने-खिलाने में देर हो गयी. मैंने भी वहीं खा लिया.

—सच कह रही है न?

—सचमुच बाई, भगवान की शपथ!

अब कहीं जा कर वायजबाई को विश्वास हुआ. वह खाने को तैयार हुई कि नामा पहले से ही जल्दी-जल्दी हाथ साफ कर रहा था.

रोज का यही हाल था. नयी उमर की भिवरा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

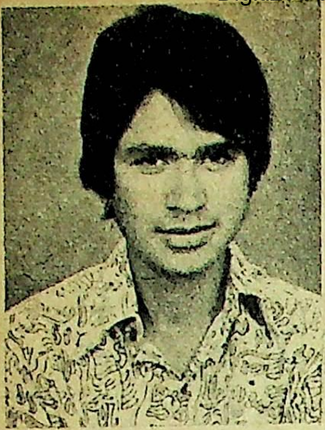

भीमराव शिरवाळे : कथाकार

देखने में सलोनी किंतु उसका सलोनापन न रह पाया. पहले तो वह किसी न किसी के घर मांगने-जांचने पहुंच जाती थी. फिर एक दिन मन मजबूत करके पाटील बाई से ही पूछा. पाटील बाई मन की उदार थी. भिवरा उसके घर रह गयी, गोबर-पानी करने के लिए. साल में एक साड़ी जंपर, रोज छाछ-पानी, बने हुए भोजन के कुछ टुकड़े —यही उसके परिश्रम का फल था.

नामा का काम केवल गांव में घूमना-फिरना था—गांजा पी-पीकर उसका दिमाग खराब हो गया था. खाने के समय वह घर आ जाया करता था. कभी-कभार किसी का दो-चार आने का काम करता किंतु वह भी गांजे की पुड़िया में चला जाता था. जहां गांजा वालों का जमाव, वहीं पर नामा हाजिर!

किन्हीं घटनाओं के परिणामस्वरूप उसका यह हाल हो गया था.

होली के आसपास शिवनी जाना, गांव-गांव से तमाशबीनों को एकत्र करना, दो दिन होहल्ला करना, दारू पी-पीकर धींगामस्ती करना—इन सबमें उसका नाम सबसे आगे रहता था.

शिवणी के घोरपा की बेटी कली ऐसी थी कि उसे देख कर आंखें फट जायें. आत्तारा का वजीर, नामा, मिल्खा का काशा, मुलान्या का नल्या, पवारा का अंजीर—ऐसे चार साथी मिल कर तमाशा-मनोरंजन किया करते. वजीरा गले में ढोल टांग लेता, नल्या हाथ में टुनटुनी ले लेता, अंजीर का कमर पर पूरा हाथ था—और विदूषक का कार्य नामा करता. ढोल बजी कि कली पैर में घुंघरू बांधे एक चक्कर लेती. सारे शिवणी में तमाशबीनों की भीड़ लग जाती. नामा के निम्नस्तर के हंसी-मजाक लोगों की भावनाओं को उभाड़ने में अग्नि में घी का काम करते. पैसे बरसने लगते. कपड़ा-लत्ता तो मिलता ही, कली भी नामा की ही थी.

किंतु नामा के पास क्या था? कुछ भी तो नहीं. देखने को थोड़ा-बहुत था किंतु उससे पेट थोड़े ही भरनेवाला था. और कली जैसी कोमल ककड़ी को कोई भी उठा ले जाने को तैयार था. एक दिन ऐसा ही हुआ भी. तमाशा हो रहा था. उद्धट घाटी का पहलवान गड़ी उठा. उसने कली के गले में सौ के नोटों का हार पहना दिया. उसी दिन से कली नामा को छोड़ गयी. नामा का चार पैसे का आधार जाता रहा. लड़कों में सनकी माना जानेवाला नामा पूरी तरह टूट गया. मेले-ठेले में वह उसे मिलती और आगे निकल जाती.

भिवरा और नामा का विवाह बचपन में ही हो गया था. भिवरा नामा के मामा की बेटी थी. बहन के वचन की रक्षा के लिए बायजाबाई के घर भिवरा का विवाह कर दिया गया. भिवरा के घर में उसके बूढ़े बाप के अलावा अन्य कोई न था. बूढ़ा बाप आठ-दस दिन के लिए आता और दुखी होकर चल देता. बुढ़िया नामा को तरह-तरह की गालियां देती रहती. नामा पर उसका कोई असर न होता, दांत निकाल देता. फिर मामा ही बायजाबाई को कहा करता—ऐ बाई, अब तो कब्र में पांव लटके हैं. ये कैसे भी रहें, कैसे भी खायें-पियें, क्यों बेकार बोलती है!

और सचमुच ही उसके बाद भिवरा के बाप का शिवणी में आना नहीं हो पाया.

जब से कली गयी, तब से नामा पागल हो गया. वैसे कली भिवरा के पासंग नहीं थी किंतु उसके जाते ही चार पैसे की आमदनी जाती रही. बचपन से ही काम से जी चुरानेवाले नामा का काम में जरा भी मन नहीं लगता था. और उसने गांजे की पुड़िया का आसरा लिया. उसे पी-पीकर उसका सिर खोखला हो गया.

★ ★

दो रोटियां पेट में डाल कर नामा ने ऊंची डकार ली और बाहर निकला किंतु बायजाबाई से रहा नहीं गया, बोल उठी—नामा, बाजार जा रहा है न कहीं से मांग-जांच ले कुछ रुपये!

—इस बुढ़िया का तो दिमाग ही खराब हो गया है, कहकर तेजी से नामा बाहर निकल गया.

—क्या कहती हैं लेने को, बुआ, भिवरा ने पूछा.

—अरे, कह तो दिया, तुझे एक बार, तेरे लिए एक साड़ी लानी है. सबेरे से ही उसके पीछे लगी हूं. मेरा तो सिर खाली हो गया! बुढ़िया हताश भाव से गाल पर दनादन तमाचे मारने लगी.

—इसमें रोने-पीटने की क्या बात है? साड़ी के लिए पैसे मैं पाटील बाई से मांग लायी हूं. तुम बेकार हलकान मत होओ. उनकी बात मन पर क्यों लाती हो?

एक क्षण में बुढ़िया खुश हो गयी. तुरंत भिवरा से बोली—जा, बाजार हो आ, फिर जरा देखकर अच्छी-सी ले आना. तुझे भगवान ने सोने का-सा रूप दिया है किंतु हम दरिद्र तुझे कुछ भी तो नहीं दे पाये. भैया कहा करते थे, क्या जोड़ी है नामा-भिवरा की. जैसे विट्ठल-रुक्मिणी की जोड़ी हो! किंतु इसने तेरे रूप-गुण की कोई कदर नहीं की. यह मेरे भाई को कभी खुश न कर सका. वह आता और इसके करम देखकर माथा पीट लेता. अंत में घुल-घुल कर मर गया. बुढ़िया बायजाबाई रोने-धोने लगी. पुरानी बातों को याद करके भिवरा की आंखें भी भर आयीं.

आखिर बुढ़िया बोल उठी-उठ, बाई उठ! पहले ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाजार हो आ.

भिवरा ने छिपा कर रखे हुए पैसे निकाले.

—बुआ, यह देखो, सात रुपये हैं.

—जितना भी हो, जा तो सही.

आते-आते कांदा-मिर्च, दाल-गुड़ लेते आना होगा. सबेरे त्यौहार है. कुछ तो भी बनाना होगा, भिवरा ने सोचा. वह तुरंत बाजार के लिए निकल पड़ी.

दोपहर हो गया था. आकाश में सूरज तप रहा था. कांदा-मिर्ची की दूकानों में कुछ के पास सेर-पाव-सेर का वजन भी नहीं था, इसलिए वाद-विवाद जारी था.

भिवरा बैठ कर बाजार लगने की राह देखने लगी. अपने को काम ही कितना करना है. घड़ी भर का तो काम है! वह यों ही बैठी थी कि नामा आ कर उसकी बगल में बैठ गया.

—कब आये तुम? आना ही था तो मुझे क्यों नहीं कहा. साथ आ गये होते.

—अजी, तुम्हारे पीछे-पीछे ही तो आया था, किंतु रामा बुर्डा ने रोक लिया था, तभी जरा समय लग गया, सिर पर मैली टोपी से हवा करते हुए वह बोला.

—बुर्डा ने क्यों रोका था?

—उसका गांजे का सात रुपया बाकी है न! उसी का तो है. दो तो, गला सूख रहा है. उसकी बात सुन कर भिवरा को क्रोध आ गया.

—अपने पास के सात रुपये तुम्हें दे दूं तो साड़ी कैसे आयेगी? त्यौहार के लिए मेरे पास कोई दूसरा वस्त्र नहीं है. तुम्हीं बोलो.

—साड़ी आज नहीं तो कल आ जायेगी किंतु ऐसा समय फिर कहां आयेगा? कहां हैं पैसे?

कितना हाथ-पैर जोड़ कर उसने पाटील-पत्नी से सात रुपये लिये थे. भले ही, साड़ी के लिए रुपये लिये थे, उसको तो सुख मिलना चाहिए. . .और उसने वे सात रुपये तत्काल नामा के हाथ पर धर दिये.

खाली हाथ भिवरा ने शिवणी की राह पकड़ी. कल की संक्रांति पुराने कपड़ों में ही मना लेगी, पहनने को आज नहीं कल मिलेगा किंतु चार आदमियों ने मेरे आदमी की इज्जत ले ली तो फिर मिलेगी क्या? उसका सद्विवेकी मन बार-बार विचार कर रहा था.

बुढ़िया बायजाबाई. उसने भिवरा को देखा, खाली हाथ आते हुए!

कल ही संक्रांति है. प्रत्येक सधवा अपने सिंदूर के लिए पति की दीर्घायु की कामना कर रही थी.

भिवरा ने शाम को कुछ रूखा-सूखा बनाया. नामा रोटी खा कर घर के सामने चबूतरे पर बैठ गया. चिलम सुलगा कर दम लगाया. इतने में ही भिवरा कूड़ा-कचरा फेंकने बाहर निकली तो उसने भिवरा का हाथ पकड़ लिया.

—जाने भी दो, छोड़ो. बुआजी देख लेंगी, भिवरा आगे-पीछे देखते हुए हौले से बोली. किंतु नामा की आंखों में तो गांजे की सनक चढ़ी हुई थी.

—बुढ़िया को मारो गोली! तुझे एक बात कहनी है.

—क्या काम है, बोलो.

—आजकल का जमाना बड़ा खराब है, पास में पैसा है तो इज्जत है. गांव में एक दाढ़ीवाला साहब आया हुआ है, उसके लिए बोतल का इंतजाम तो हो गया है किंतु औरत का नहीं. अजी वस्त्रों के पीछे सारी दुनिया नंगी है. तू मन पक्का कर ले तो रात में पैसा ही पैसा! बड़ा सुअवसर है.

भिवरा पाटील के घर गोबर काढ़ती थी. उसका शरीर सोने का था किंतु ढंका हुआ था जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों से. सोने से शरीर में मन भी सोने का ही था. नामा को उसने देवता मान लिया था. . .और वही अब उसे दुराचार का मार्ग दिखला रहा था. क्षण भर के लिए उसे लगा कि मानवता का मरण हो गया, धरती कांप उठी और उसके सोने के शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो गये. . .हे भगवान, क्या तेरे घर में न्याय नहीं?. . .बोल, कहां बैठा है तू कुंडली मारे हुए?. . .यह क्या मेरा पति है?. . . उसके नेत्रों के सामने अंधेरा छा गया. क्षण भर के लिए वह अपने आपको भूल गयी और उसने नामा के गाल पर एक करारा तमाचा मारा. इसी समय संयोग से बायजाबाई बाहर आ गयी. उसने अपनी धुंधियाली आंखों से नामा को तमाचा मारे जाते देखा. दो दिन से नामा को गाली देने वाली बुढ़िया को आग लग गयी—भिवरा, गधी तूने उसे तमाचा मार दिया? कौन है तेरा वह खसम? तेरा स्त्रीजन्म वृथा है. तुझे क्रोध है तो जा मर किंतु ऐसा दुष्कर्म तो न कर!

मैंने नामा को, अपने पति को तमाचा मार दिया था. क्यों मारा था, सास को क्या कहूं? मैं ही पापी हूं, सासू. इन हाथों से आज तक गोबर काढ़ा था, किंतु आज वे कहां उठ गये! भगवान ने मुझे सुंदर बना कर न मालूम क्या करना चाहा है. इस रूप को मिट्टी में मिला देना चाहिए. मेरा स्त्री-जन्म अकारथ गया.

'स्त्री-जन्म!' उसके सिर में बुआ के शब्द खलबली मचाने लगे. उसे लगा कि बबूल का वृक्ष भी उसे गाली दे रहा है. बड़ी-बूढ़ी औरतें उसके मुंह पर थूक रही हैं.

रात काफी बीत गयी थी. शिवणी के चारों ओर घना अंधकार छा गया था. वृक्षों पर उल्लू बोलने लगे थे. और उसी समय घर में नीचे के नाले में से भालू रोता हुआ जा रहा था. बायजाबाई जग रही थी. उसके शरीर के रोंये खड़े हो गये. उसने पास में सो रही भिवरा को हिलाया-डुलाया.

—भिवरा, उठ तो! आंख ही नहीं लग रही है. जाग रही है, न? अरे बोल तो, मेरी सौगंध बोल तो!

किंतु भिवरा वहां नहीं थी बोलने को. वहां पड़ा हुआ था उसका अचेतन शरीर!

संक्रांति का दिन उगा. नामा की जेब में कल के सात रुपये अब भी पड़े हुए थे. उससे वह साड़ी लाया अर्थी सजाने को! शिवनी के बड़े-बूढ़े भगवान को याद कर रहे थे और भिवरा चिता पर जल रही थी. नामा की लाल आंखें और भी लाल हो गयी थीं, मानों बिंबाफल हों. उसके सिर पर के बाल बिखरे हुए थे. उसके हाथ-पैरों में जान नहीं थी, पेट में अन्न का दाना नहीं था क्योंकि आज भिवरा पाटील-पत्नी से कुछ भी नहीं लायी थी.

(अनुवाद : आ. प्र. सि.) □□□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिल्में

नवंबर, '७३ अंक से सारिका में मीनाकुमारी की इस काव्यमय डायरी की शुरुआत की गयी थी, जिसे सारिका के लिए विशेष रूप से प्रस्तुत कर रहे हैं मीना-कुमारी के अंतरंग मित्र व प्रसिद्ध शायर गुलजार. उन्हीं के शब्दों में "मीनाजी की डायरियों में उस कबीले का इतिहास भी है, जिसे लोग 'फिल्म वाले' कहते हैं, और साहित्य भी. वे निजी ज्यादा हैं. लेकिन उस वक्त की झलक जरूर देती हैं, जिसमें वह जी रही थीं—या उनके अपने लफ्जों में 'मर रही' थीं." (इस रचना के किसी अंश का उपयोग करने से पहले श्री गुलजार, ९१ए, कोजीहोम, २५१, पाली हिल, बंबई, से अनुमति लेना जरूरी है.)

मीनाकुमारी की डायरी: १५

चालीस मील लंबी मौत

गुलज़ार द्वारा प्रस्तुत

मीनाजी का सफरनामा-ए-हिंद उनकी ससुराल पर खत्म नहीं होता.

सफर जारी रहा, सिर्फ जिक्र रुक गया है कुछ देर को. इसलिए कि इस सफर का जिक्र मैंने इसी बात से शुरू किया था कि मीनाजी की अजदवाजी (घरेलू) जिंदगी जो शुरू हुई थी, वह बहुत खूबसूरत थी. इसकी झलक इस सफर में भरपूर मिलती है. यह आवाज घर में रची-बसी एक बहू की ही हो सकती है :

'मेरा असली और आखिरी घर अमरोहा करीब आ रहा था. यह घर मेरे लिए तो मुकद्दसतरीन जगह है. अपने इस घर को देखने का किस कदर इश्तियाक था मुझे! यहां के घरों, सड़कों और मोहल्लों के नाम मुझे इस तरह याद हैं जैसे कि मैं हमेशा से यहां रहती रही हूं . . .'

अगला जुमला बाकमाल जुमला है :

'अमरोहा स्टेशन को मैं इस तरह देख रही थी. जैसे इससे पहले मैंने कोई स्टेशन नहीं देखा.'

वक्त का तसल्सुल तोड़ दीजिए. कुछ साल आगे बढ़ कर देखिए. यही रूह बहुत-से बेनाम स्टेशनों पर रुकती, चलती, तलाश करती नजर आती है. हर जगह यही लगता है कि जाते-जाते किसी सफर से टूट कर गिर पड़ी है. या कोई 'ठहरो, मैं आता हूं' कह कर छोड़ गया है और फिर नहीं आया.

हर पड़ाव पर लगता है 'जिस सफर पे जा रही थी, वहां नहीं जाना मुझे!' हर पड़ाव पर किसी नये सफर की तलाश में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वक्त पूछती फिर रही हैं :

'रात का कौन-सा पहर है?
कब कोई गुजरेगा यहां से?
मैं चलूं या रुकूं?'

यह सफर कहां से टूटा और क्यों, यह जानने के लिए जवाबों से ज्यादा सवाल तिलमिलाते हैं जेहन में.

★ ★

एक बात जो सवाल की सूरत भी समझ आती ह, जवाब की सूरत भी, वह यह कि मीना जी बहुत महत्वाकांक्षी थीं. शोहरत अपने आप में बहुत बड़ी महत्वाकांक्षा है. महत्वाकांक्षा, कोई गुनाह नहीं, लेकिन महत्वाकांक्षी लोगों की जिंदगी में ऐसे हादसात हमेशा हुए हैं. वे किसी भी हालत म मौजूदा हालात पर मुतमइन (संतुष्ट) नहीं होते. और यही मीना जी के साथ हुआ. लेकिन उनकी जिंदगी इतना बड़ा अलमिया (त्रासदी) इसलिए लगती है कि बेचैनी और नाइतमीनानी (असंतोष) के हादसात उनकी जिंदगी में बहुत ज्यादा हैं. तबीयतन जरूरत से ज्यादा हस्सास थीं. इसलिए एक कैफियत से दूसरी कैफियत में दाखिल होने का वक्फा बहुत कम है.

दूसरी बात जो समझ में आती है, वह यह कि मीनाजी के बदन से कोई औलाद नहीं थी. और यह खला उन्हें अंदर-ही-अंदर घेरे रही.

एक त्रिवेणी

तुमको देखा है जब से आंखों ने
और कोई नजर नहीं आता

मेरी आंखों ने हीरा चाट लिया.

□ **गुलज़ार**

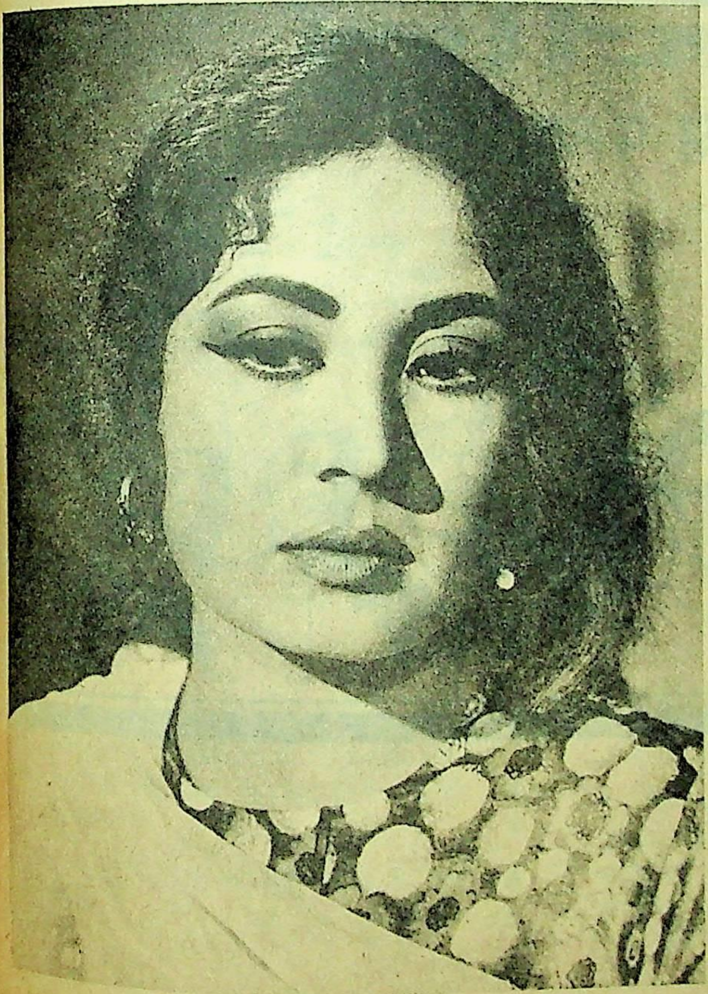

उसे मरने के लिए वह अपने आप में हर तरह की तकमील आजमाती रहीं :

'अंदर-ही-अंदर कुछ घटा जा रहा है, घिसा जा रहा है और मेरी समझ में नहीं आता क्या करूं, किस तरह ऐसा होने से रोकूं? कैसे रुकूं, ठहरूं? कुछ बताओ, कुछ करो, जो मुझे इस तरह न जीना पड़े. हजार बीमारी हो तो भी खुदा ऐसी शामों से बचाये रखे. मुझे डर लगता है. उफ! इनसे बहुत डर लगता है. . .आह, मुझसे नहीं सहा जाता! कहां कैसे भाग जाऊं, निकल जाऊं किसी तरह यहां से.

'चार नहीं बजे थे जब उठ कर घड़ी में चाबी देने लगी. और खयाल हुआ, अभी तो सुबह भी नहीं हुई! आह, मेरा खुदा ही जानता है, मैं कैसी हूं! . . .

'आज फिर दिल-दिमाग ने हड़ताल कर रखी है. किसी तरह नहीं मानते. बात सुनने को तैयार ही नहीं. यह चुप—न कुछ सुनना चाहे, न बोले—वक्त का यह हिस्सा कब खत्म होगा? —आह! मैं उकता गयी, ऊब गयी, पुरानी हो गयी. . .

'—यह दिन से पूछ रही थी कि सच ही तो कहीं मेरा जेहन, मेरा दिमाग सुन्न नहीं होने लगा? एक नुक्ता नन्हा-सा —कायनात-बराबर!

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

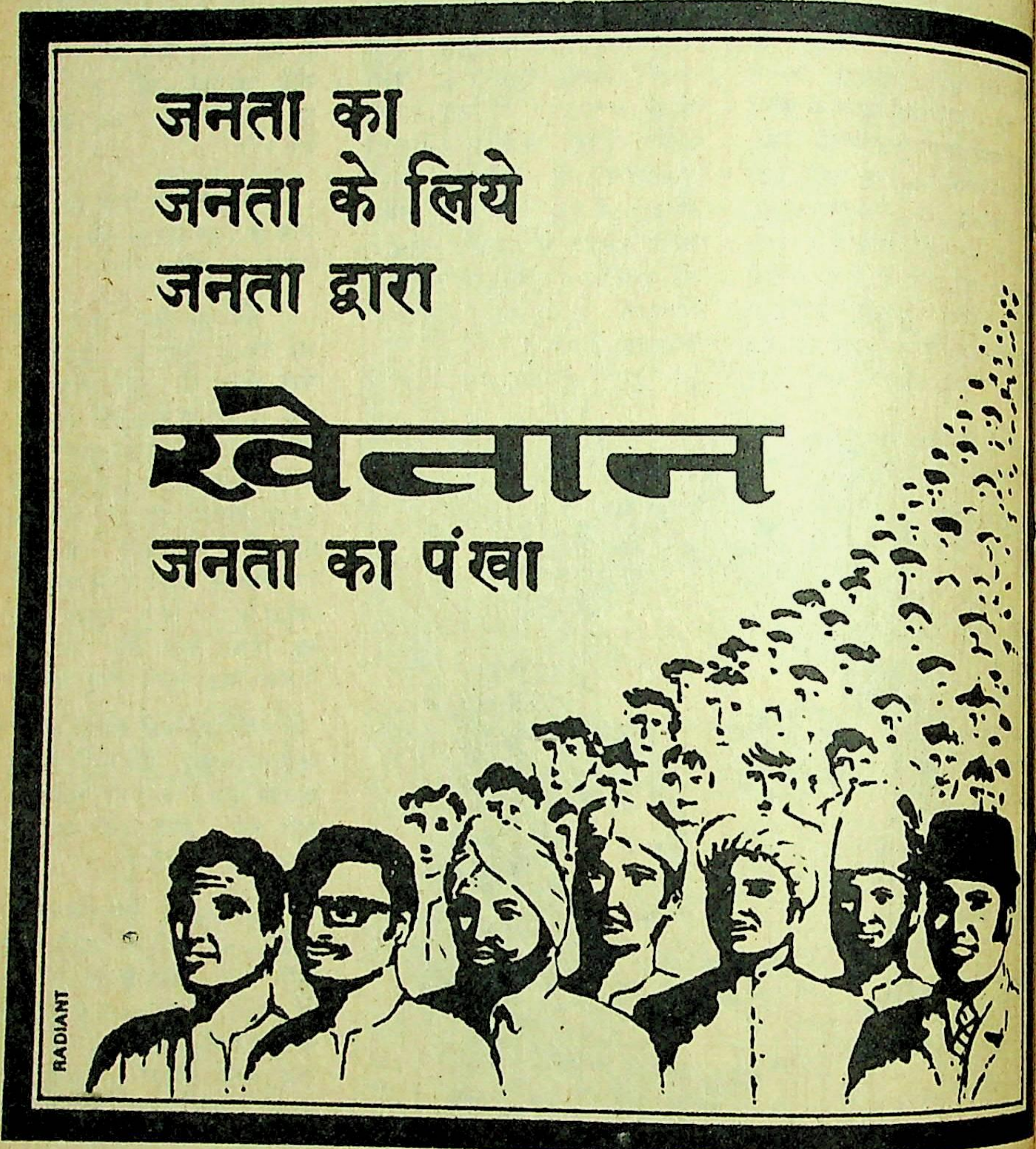

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फल-फूल की तरह इस हिंदुस्तान में आदमी भी देवी-देवताओं को चढ़ा दिये जाते हैं और गजब यह कि भारतीय दंड संहिता में बलि की सजा के लिए अलग से कोई प्रावधान नहीं है.

यह कहने की बात नहीं कि बलि के बकरे अधिकतर हरिजन-आदिवासी परिवारों के लोग ही होते हैं और भारतीय दंड संहिता की कृपा से ये बलियां साधारण हत्याओं में शुमार की जाती रहती हैं.

यह था गुजरात का एक भोला-भाला भील. उसका कोई अपराध नहीं था. यहां तक कि उसने सवर्णों के घिनौने अहम को भी चोट नहीं पहुंचायी थी. लेकिन १५ जनवरी १९७० को उसकी बलि चढ़ गयी. उसकी बलि चढ़ाने वाले दो व्यक्ति थे. उन्हें यह मुगालता था कि वे किसी जंगली जानवर को आदमी का ताजा खून पिला देंगे तो वह जानवर उन्हें गड़े हुए खजाने का रास्ता बता देगा.

और जानवर को भील का खून ही माफिक आ सकता था!

या भील का नहीं तो हरिजन बालक का ही सही!

इस १२ वर्षीय हरिजन बालक झब्बर का भी कोई कसूर नहीं था. उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के लाल गांव का यह लड़का अपने दो साथियों के साथ खेल रहा था. किन्हीं कपिलदेव के भाई रामपति और लड़के विद्यासागर को यह अच्छा खासा शिकार नजर आया. वे उसे खींच कर अपने घर में ले गये.

बाकी दो लड़के खेलते रहे. खेलते-खेलते उन्हें झब्बर की चीख सुनाई दी. लड़के खिड़की से झांकने लगे कि भीतर क्या हो रहा है. थोड़ी देर तो उन्हें यह माजरा समझ में ही नहीं आया. समझ में आया तो वे भागे पुलिस थाने. वहां उन्होंने बताया कि उनके दोस्त झब्बर का कपिलदेव, रामपति और विद्यासागर मिल कर गला काट रहे हैं.

पुलिस ने लोहे की एक पेटी में से झब्बर की लाश बरामद की. कपिलदेव और रामपति तुरंत गिरफ्तार किये गये. बाद में विद्यासागर ने भी आत्मसमर्पण किया.

यह जान भी देवी को खुश करने के लिए ली गयी थी.

□□□

फरवरी में प्रकाशित कथा-पहेली का सर्वशुद्ध हल तथा पुरस्कार-विजेता

इस बार न्यूनतम १ अशुद्धि पर चार प्रतियोगियों में से प्रत्येक को ४० रु. प्रदान किये जा रहे हैं, जो हैं :—

१. भगवान दास रायकवार, शिक्षक पद्माकर न. पा. उच्च. माध्य. शाला, सागर (म. प्र.), २. हरेंद्रकुमार कोटिया २८, पैलेस रोड, रतलाम (म. प्र.), ३. श्रीमती कांता खेतान, फ्लैट ९ 'कविता,' प्लाट नं. ६११, १५ वां रास्ता खार, बंबई–५२, ४. सोमनाथ शर्मा, अध्यापक, द्वारा मिश्रीलाल शर्मा, ४।१९३ शाहपुरा मोहल्ला, ब्यावर (राज.).

और यह रहा इस बार का सर्वशुद्ध हल: १. बड़े दादा. २. (पृ. २४।२५।२७), ३. मास्सा ४. पानीपत, हाजीपुर. ५ वृ. ६. (पृ. ७२-७३). ७. धुन ८. इजारेदारी.

इस अंक से 'सारिका, कथा-पहेली' का प्रकाशन कुछ अंकों के लिए स्थगित किया जा रहा है, ताकि हम अपने पाठकों के लिए उसे और भी रोचक तथा उपादेय बना सकें.

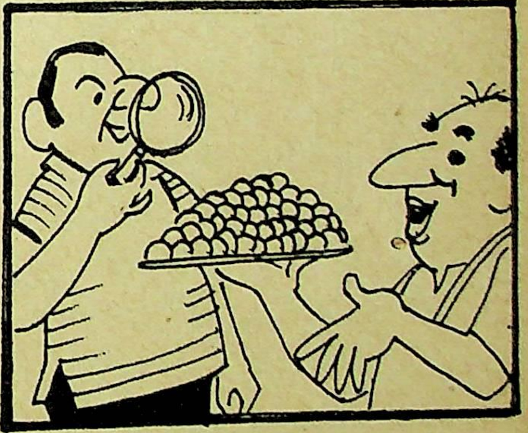

• व्यंग कल्पना : मदन खंडेलवाल

नये आकार की घोषणा

शक्कर की कमी के कारण हम लड्डू का आकार छोटा कर रहे हैं लेकिन इससे लड्डू की संख्या में कोई अंतर नहीं आयेगा.

मूल्य और स्वाद पुराना ही रहेगा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिकट ख़रीदिए और शान से यात्रा कीजिए

बिना टिकट जाकर ... बिना शान-शौकत के ... बिना इज्जत-आबरू के ... बिना आत्म-विश्वास के यात्रा क्यों कीजिए ? हमेशा बेचैन और डरे हुए ? जी हां, आप पकड़े जा सकते हैं, और आप पर भारी जुर्माना हो सकता है और तब सभी ओर आपकी खिल्ली उड़ाई जाएगी! और यदि आप बच भी निकले तो भी धोखेबाजी हुई न । तब तो आप अपने आप को धोखा देते हैं, और साथ ही अपने राष्ट्र को भी धोका देते हैं । कितनी बुरी बात है । अतः अपने स्वयं के हित में तथा राष्ट्र के हित में, कृपया टिकट खरीद लिया करें ।

शान से यात्रा कीजिए, उचित टिकट लेकर यात्रा कीजिए ।

पश्चिम रेलवे

cam/wr/7404

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

the merry world of
Shreelon & Shreester

the yarns that make beautiful fabrics

श्रीलॉन नायलॉन यार्न– जानकार
महिलाओं की मनमोहक साड़ियों और मनोरम ड्रेस मटीरियल्स
(पोशाकों के कपड़े) बनानेवाला यार्न (धागा)
श्रीएस्टर पोलिएस्टर यार्न– तरक़्क़ीपसन्द पुरुषों की
आधुनिकतम सूटिंग और शर्टिंग बनानेवाला यार्न (धागा)
इसलिए जब हो श्रीलॉन और श्रीएस्टर का मिलन,
तो छा जाता है उमंगभरी ख़ुशियों का सावन!

श्री

बनानेवाले : श्री सिन्थेटिक्स लि., नौलखा, उज्जैन
सेल्स ऑफ़िस : श्री निवास हाउस, एच्. एम्. सोमानी मार्ग, बम्बई - ४०० ००१

JAISONS 429 Delhi

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

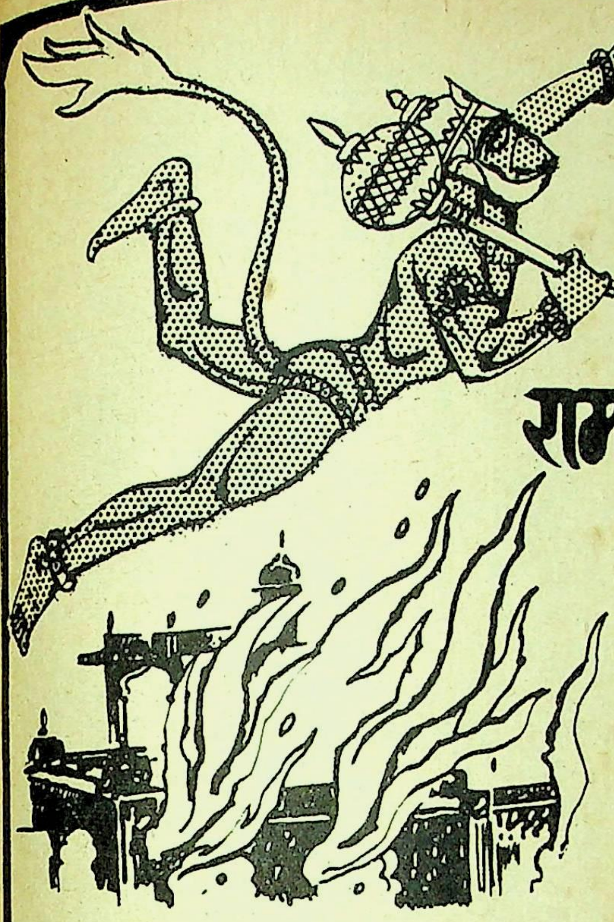

तुलसी-कृत

रामचरितमानस

भाग २: उत्तरार्ध

श्रीराम का वन-गमन, उनके यशस्वी कार्य, हनुमान की निःस्वार्थ भक्ति और लंका में राम-रावण का युद्ध, रावण का पराभव और राम का राज्याभिषेक —तुलसीदास कृत रामचरित मानस के इन प्रसंगों को प्रस्तुत किया गया है इंद्रजाल कामिक्स के ९६ पृष्ठोंवाले इस विशेषांक में—सरल भाषा में वर्णित कथा और सुंदर चित्रों से सजे हुए इस विशेषांक में महाकाव्य की भव्यता उभर आयी है. रामराज्य की महानता का परिचायक यह अद्वितीय विशेषांक अंग्रेजी, हिंदी और बंगला में प्रकाशित किया गया है. यह १ जुलाई १९७४ को प्रकाशित रामचरित मानस के प्रथम भाग के बाद दूसरी व अंतिम कड़ी है.

अपनी प्रति अपने न्यूज एजेंट से तुरंत खरीद लीजिए.

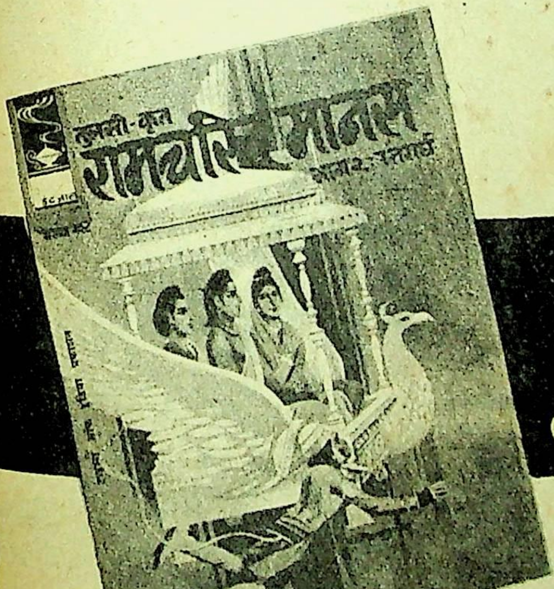

इंद्रजाल कॉमिक्स

१५ अप्रैल, १९७५

मूल्य ३ रुपये

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

बेनेट कोलमन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए [illegible] द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित. पो बाक्स २१३, बंबई-१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-१; कलकत्ता आफिस : १३ ९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

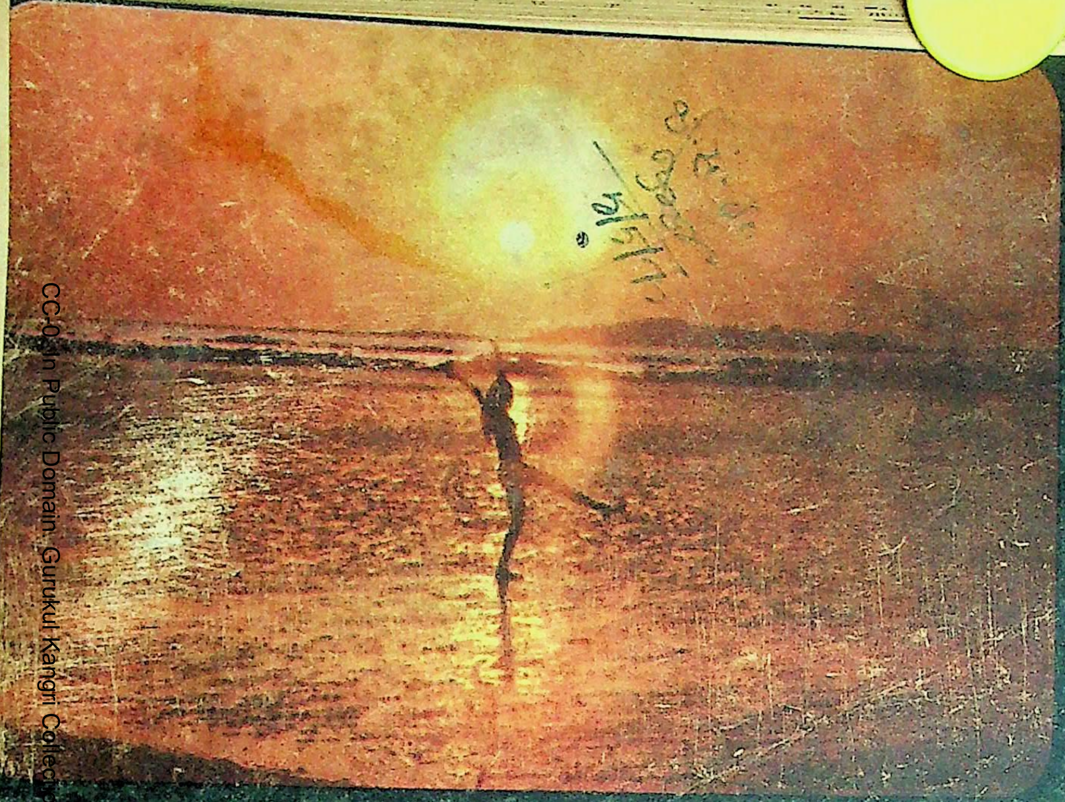

जी में आता है कभी कभी
साहिल हो समन्दर का-
तन्हाई हो
शाख़ों को छेड़ती हुई साँझ की धूप
साहिल पे उतर आई हो
और हम-दुनिया के एंजोफ़िक्र से दूर
कपड़ों की क़ैद से आज़ाद
चले जाएं बहुत दूर जहाँ
मिलते हैं ज़मीनो आसमाँ
-लहरों को छेड़ती हुई बादे शमीम
बदन से खेलती हुई बादे शमीम
लिपट जाए हमसे
उनके ख्यालों की तरह!

नवसारी शर्टिंग्स
अनोखा एहसास

पंजीयत सं. एम. एच.-दक्षिण बंबई-२९९

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar